सरल शरीर विज्ञान

अध्याय १

शरीर

सामान्य परिचय

आदमी का शरीर एक ऊँचे दर्जे की मशीन है। संसार में आदमी की बनाई कोई भी मशीन इसकी बराबरी नहीं कर सकती। इसके कल-पुर्जे की बनावट पक्की है, उनका चुनाव सुन्दर और उपयुक्त है और उनके काम सराहनीय हैं। इन कल-पुर्जों में संगठन है जिसके सहारे शरीर जीवित रहता और अपना काम करता है।

शरीर रूपी मशीन की विचित्रता यह है कि यह खाए हुए पदार्थों से रुधिर तैयार करती है और उसी रुधिर से अपने आपको सुगठित और चालू रखती है। आदमी की बनाई हुई बहुत-सी मशीनें इस संसार में हैं, पर क्या कोई मशीन एक बूंद रुधिर तैयार कर सकती है ?

शरीर और इंजन---शरीर देखने में तो इंजन की तरह नहीं है, पर यह काम इंजन की ही भांति करता है। इंजन का मुख्य काम है कोयला, तेल, पानी इत्यादि से बनी रासायनिक शक्ति को बदल कर यांत्रिक शक्ति (यंत्र-सम्बन्धी) तैयार करना जिससे वह चलता या अपना काम करता है। इसी प्रकार आदमी का शरीर खाए हुए पदार्थों से बनी रासायनिक शक्ति को बदल कर अपनी गति के लिए शक्ति और गर्मी तैयार करता है।

शरीर और मशीन में भेद---शरीर रूपी मशीन आदमियों की बनाई हुई मशीनों की अपेक्षा बहुत कोमल होती है और इसमें कुछ अन्य

विशेषताएँ भी हैं । प्रथम यह कि छोटी-मोटी मरम्मत यह अपने आप ही बिना किसी बाहरी सहायता के कर लेती है । जब शरीर का कोई भाग थोड़ा कट जाता है तो वह कटा हुआ भाग आप-ही-आप जुड़ जाता है । खरोंच, चोट, फोड़े-फुंसी, अनेक छोटे-मोटे घाव प्रायः आप-ही-आप अच्छे हो जाते हैं । परन्तु मनुष्य द्वारा निर्मित मशीन में यह विशेषता नहीं होती है । उसमें यदि कोई साधारण-सी खराबी भी होती है तो वह बाह ी सहायता से ही दूर होती है ।

शरीर की दूसरी विशेषता है कि यह धीरे-धीरे स्वयं बढ़ता है, पर मशीन ज्यों की त्यों रहती है । हम जानते हैं कि बच्चे बढ़कर जवान होते हैं, उनके शरीर का बढ़ना तभी बन्द होता है जब वे अपने बढ़ने के अन्तिम सीमा तक पहुँच जाते हैं ।

शरीर की तीसरी विशेषता यह है कि अगर तुम्हारी मशीन बिगड़ या टूट गई हो तो तुम दूसरी क्रय कर सकते हो, परन्तु शरीर दूसरा नहीं मिलता । इसी की मरम्मत कर-कराकर जितने दिन चल सकता हो चलाना पड़ेगा ।

विचार करने की बात है कि यदि तुम्हारे पास सिलाई की मशीन या साइकिल है और तुम उसके कल-पुर्जों का हाल नहीं जानते, केवल हर समय उससे काम लेना ही जानते हो तो क्या वह अधिक समय तक चलेगी ? आये दिन उसके टूटते रहने पर तुम दूकानदार को या अपने भाग्य को कोसोगे और थोड़े दिन में दूसरी मशीन खरीद लोगे । जो लोग अपने शरीर का कुछ हाल नहीं जानते, केवल उससे मनमाना काम लेना ही जानते हैं, वे अपने शारीरिक विकारों के लिए भगवान को लांछन देते हुए शीघ्र ही इस संसार से पधार जाते हैं । इस लिए प्रत्येक शिक्षित बालक-बालिका का यह कर्त्तव्य है कि वह इस शरीर के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करे ।

हमारा शरीर अनेक पुर्जों से बना है । कुछ, जो शरीर के बाहर हैं, हमें दिखाई पड़ते हैं और अनेक, जो शरीर के अन्दर हैं दिखाई नहीं पड़ते । इन पुर्जों को अंग (Organs) कहते हैं । शरीर की रक्षा करने के लिए इन अङ्गों की

बनावट और उनकी कार्य-प्रणाली से हमें विज्ञ होना आवश्यक है। आधुनिक विज्ञान ने इस सम्बन्ध में काफी अनुसंधान किया है। विज्ञान की उस शाखा को जिसके अन्तर्गत शरीर की आंतरिक संरचना का अध्ययन करते हैं उसे शारीर (Anatomy) कहते हैं और उस शाखा को जिसके द्वारा इन अंगों की कार्य-प्रणाली का ज्ञान होता है उसे **शरीर-क्रिया विज्ञान** (Physiology) कहते हैं। उदाहरणार्थ, आंत्र (Intestine) कहाँ स्थित है, कितनी लम्बी-चौड़ी है, उनमें पाचक रस कौन-कौन से अंग द्वारा निकलते हैं इत्यादि विषय शरीर-सम्बन्वी हैं और आंत्र में गति किस प्रकार होती है, पाचक रस खाए हुए भोजन पर क्या प्रभाव डालते हैं और किस प्रकार पचा हुआ रस रुधिर में मिलता है इत्यादि विषय शरीर-क्रिया विज्ञान सम्बन्धी हैं। पूर्ण स्वास्थ्य, प्राप्त करने के लिए शरीर सम्बन्धी इन दोनों शास्त्रों का अध्ययन इस पुस्तक में किया गया है।

शरीर की रचना

ऊपरी दृष्टि से शरीर की रचना—यदि कोई केवल ऊपरी दृष्टि से शरीर की बनावट समझना चाहे तो उसे शरीर के किसी भाग को अच्छी तरह चीर-फाड़ कर देखना होगा। चीरने के नाम से भी कुछ डर और घृणा-सी मालूम होती है, पर जो डाक्टरी सीखते हैं या वैसे भी शरीर की बनावट को अच्छी तरह समझना चाहते हैं उनके लिए मुर्दे को चीर कर देखना आवश्यक होता है।

यदि हम किसी मुर्दे की टाँग या बाँह चीरें तो हमें शरीर के सबसे ऊपरी आवरण को जिसे त्वचा (Skin) कहते हैं, चीरना होगा। त्वचा को चिमटी के द्वारा छुड़ाने से हमें मालूम हो जायगा कि त्वचा शरीर के अन्य भागों पर खोल या गिलाफ की तरह नहीं रखी हुई है, बल्कि इस तरह अपने नीचे की चीजों से लगी है जिस तरह फल का छिलका गूदे से सटा और जुड़ा रहता है। एक बात और है, त्वचा के कटते ही रुधिर निकलने लगता है, पर हमने तो मुर्दे की त्वचा काटी है, मुर्दे में रुधिर नहीं निकलता।

बहुत से लोग समझते होंगे कि त्वचा (Skin) के नीचे मांस है, पर ऐसा नहीं है। हम देखेंगे कि त्वचा को मांस से चिपकाने के लिए कुछ पीली-पीली चिकनी-सी चीज रहती है। वह चर्बी (वसा, fat) है जो त्वचा के ठीक नीचे मोटे आदमियों में मोटी और दुबलों में पतली तह के रूप में होती है और यह भी त्वचा की तरह अलग उठाई जा सकती है। इस चर्बी को अच्छी तरह से काटने से पता चलेगा कि चर्बी के छोटे-छोटे टुकड़े कुछ डोरों (सूत्रों, Fibre) में अटके रहते हैं। ये सूत्र भी एक-दूसरे से मिलकर एक जाली-सी बुन देते हैं और इसी जाली में चर्बी के टुकड़े फँसे होते हैं। इसी जाली का दूसरा नाम झिल्ली (Membrane) है। चर्बी लगी रहने के कारण इस झिल्ली को चर्बी की झिल्ली या वसामय झिल्ली कहते हैं।

यदि इस चर्बी की झिल्ली की हम पूरी जांच करें तो उसमें कुछ और पतले-पतले डोरे की तरह के सूत्र हमें मिलेंगे। ये सूत्र वे नहीं हैं जिनसे यह झिल्ली (जाली) बनी है, ये उनसे भिन्न हैं। खींचने पर सरलता से नहीं टूटते। ये तन्त्रिकाओं (Nerves) की शाखाएँ हैं। ये मस्तिष्क से निकली मोटी तन्त्रिकाओं से निकल कर त्वचा तक पहुँचती हैं। इन्हीं के द्वारा शरीर के बाहरी भाग के समाचार मस्तिष्क तक पहुँचते हैं और मस्तिष्क के निर्देश सब अंगों को मिलते हैं। इन सूत्रों को तन्त्रिका-सूत्र (Nerve fibre) कहते हैं।

इन सूत्रों के अतिरिक्त कुछ और डोरियाँ भी हैं, जो त्वचा और चर्बी के बीच में हैं या चर्बी के अन्दर हैं। ये डोरियाँ खोखली होती हैं और एक तरह की शिरा (Veins) होती हैं।

चर्बी की झिल्ली की तह को हटाने से उसके नीचे लाल-लाल मांस दिखेगा। ऊपर से मांस को पतली झिल्ली ढके हुए रहती है, जिसमें चर्बी नहीं रहती। इसे मांस को ढकने वाली झिल्ली या मांस आवरण कहते हैं। यह झिल्ली भी पतले सूत्रों से बनी होती है। मांस छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा रहता है। ये टुकड़े सूत्रों के सहारे आपस में जुटे रहते हैं। अलग-अलग

मांस के टुकड़ों को **मांस-पेशी** (पेशी, Muscle) कहते हैं। एक मांस-पेशी दूसरी से कुछ मोटे सूत्र से जुटी रहती है। इस सूत्र को **रेशेदार ऊतक** (Fibrous tissue) कहते हैं।

जिस तरह हमने त्वचा और चर्वी के आस-पास सूत्र देखा था, जिसमें से कुछ तन्त्रिका सूत्र थे और रुधिर की नलियाँ, उसी तरह मांस-पेशियों के बीच में या उनसे निकलते या अन्दर जाते हुए श्वेत-सूत्र मिलेंगे। इनमें कुछ मोटे और कुछ पतले होते हैं। फिर कुछ खोखले और कुछ कड़े होते हैं। खोखले सूत्र रुधिर की नलियाँ हैं और कड़ी **तन्त्रिकाएँ** (Nerves) हैं। त्वचा के पास वाले तन्त्रिका-सूत्र इन्हीं तन्त्रिकाओं से निकल कर गये हैं। इन रुधिर और तन्त्रिकाओं के सूत्र के फैलाव को देखकर पता चलता है कि शरीर के सभी अंगों में रुधिर पहुँचाने का प्रवन्ध है और साथ ही सभी अंगों का लगाव तन्त्रिका-सूत्र और तन्त्रिका द्वारा मस्तिष्क से है।

मांस-पेशी के नीचे हड्डी है और जिस तरह मांस एक झिल्ली से ढका है, उसी तरह हड्डी के ऊपर भी झिल्ली है, जो उसको ढके हुए है। इसे हड्डी को ढकने वाली झिल्ली **परिअस्थिक** (Periosteum) कहते हैं। यदि हड्डी को हम आरी से काटें तो देखेंगे कि वह खोखली है और उसके अन्दर कुछ पीली-गुलावी-सी चिकनी चीज है, जिसे **मज्जा** (Marrow) कहते हैं।

सारांश यह है कि शरीर में सवसे ऊपर त्वचा, त्वचा के नीचे चर्वी की झिल्ली और उसके अन्दर तन्त्रिका-सूत्र और **रुधिर-वाहिका** (Blood Vessels) फिर मांस को ढकने वाली झिल्ली और मांस, साथ ही मांस के अन्दर तन्त्रिकाएँ और रुधिर-वाहिका, तब हड्डी को ढकने वाली झिल्ली और सव से अन्त में हड्डी (अपने अन्दर के गूदा, मज्जा के साथ) है, किन्तु प्रश्न यह है कि वे चीजें किस पदार्थ से वनी हैं। इसको जानने के लिए हमें शरीर की सूक्ष्म रचना को देखना चाहिए।

शरीर की सूक्ष्म रचना

ऊपर शरीर की बनावट के स्थूल भाग हमने देखे, परन्तु शरीर के बनाने वाले इन स्थूल पदार्थों के त्वचा, मांस, हड्डी आदि के छोटे-से-छोटे भाग को काट कर सूक्ष्मदर्शी से देखें तो प्रत्येक के इन भागों की रचना में एक प्रकार की समानता दिखलाई पड़ती है और सारा शरीर इन्हीं छोटे-छोटे भागों के समूह का बना हुआ मालूम होता है। इन्हें कोशिका (Cells) कहते हैं। जैसे ऊपर बतलाया गया है, इनकी बनावट का सिद्धान्त तो एक समान ही मिलता है, परन्तु उनकी बनावट में अंग तथा शरीर के स्थान के अनुसार कुछ भिन्नता होती है। जैसे, हड्डी के कोशिकाओं की बनावट दूसरी, मांस की दूसरी, त्वचा की दूसरी होती है। इसके अतिरिक्त उनका आकार भी शरीर के अंग के अनुसार कुछ भिन्न हो जाता है। यह कहीं गोल हो जाते हैं, कहीं लम्बे और कहीं चिपटे। हम कुछ ऐसा कह सकते हैं कि जैसे घर के बनाने में ईंटें लगती हैं उसी प्रकार शरीर के बनाने में ये कोशिका काम करती हैं। पहले हमें इनकी बनावट को विस्तार से जान लेना उचित होगा।

कोशिकाओं की बनावट——कोशिकाओं की बनावट समझने के लिए सूक्ष्मदर्शी का प्रयोग करना होगा। यदि तुम किसी अंग के छोटे-से-छोटे भाग को लेकर सूक्ष्मदर्शी से देखो तो उसकी बनावट गाढ़े शहद की पानी मे न घुलने वाली बूंद के समान होती है। उसका आकार हर समय बदला करता है। यह चिपटा, गोला, लम्बा, तिकोन, षट्कोण, शाखाओं-प्रतिशाखाओंदार, अनेक रूपों मे पाया जाता है। साधारण रूप में उसे गोल माना जा सकता है।

कोशिका मे निम्नलिखित अंग पाए जाते हैं--कोशिका-भित्ति (Cell Wall), कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm), केन्द्रक (Nucleus), केन्द्रिक (Nucleolus), तारक केन्द्र (Centriole) और रिक्तिका (Vacuole)। सबसे बाहर कोशिका-भित्ति होती है। उसके अन्दर एक गाढ़ा पदार्थ होता है जिसे कोशिका-द्रव्य कहते हैं। कोशिकाद्रव्य के बीच में एक और अधिक गाढ़ा पदार्थ होता

है जिसे केन्द्रक (Nucleus) कहते हैं। केन्द्रक के अन्दर भी एक केन्द्रिक (Nucleolus) होती है। कोशिकाद्रव्य और केन्द्रक के अतिरिक्त एक और गोला दिखाई पड़ता है जिसके चारों ओर पहिये के आरी की तरह का एक मण्डल-सा रहता है। इसे तारक केन्द्र (Centriole) कहते हैं। यह भी कोशिका-द्रव्य का बना होता है। इसके अतिरिक्त कोशिका में एक या कभी-कभी अधिक रिक्तिका (रसधानी, Vacuole) भी मिलते हैं। कोशिका के इन अंगों में कोशिकाद्रव्य और केन्द्रक बड़े महत्त्व के होते हैं।

कोषाणुओं के अवयवों की बनावट तथा महत्त्व के सम्बन्ध में कुछ अधिक कोशिकाद्रव्य का ज्ञान हितकर होगा।

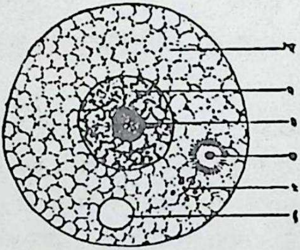

चित्र १--कोशिका के अंग

कोशिका-भित्ति (Cell Wall)--यह कोशिकाद्रव्य ही का ऊपरी भाग है। यह अपेक्षाकृत कुछ कड़ा पड़ जाता है और प्रत्येक कोशिका को एक-दूसरे से पृथक् करता है। मनुष्यों और जन्तुओं की कोशिकाओं में आवरण वनस्पति की कोशिका-भित्ति की अपेक्षा कम स्पष्ट होती है।

कोशिकाद्रव्य (Cytoplasm)--यह कोशिका का वह भाग है जिस पर उसका जीवन निर्भर है। यह इतना कोमल होता है कि रासायनिक परीक्षण के लिए भी जीवित अवस्था में पृथक् नहीं किया जा सकता। कोशिकाद्रव्य में प्रोटीन और जल के अतिरिक्त कई प्रकार के लवण तथा दो-एक दूसरी चीज होती हैं। जल का भाग उसमें ७५% से अधिक होता है।

इसमें अपना आकार बदलने का गुण भी पाया जाता है। कभी वह समांगी (Homogeneous) और रचना-विहीन वस्तु दिखलाई देती है, जिनमें चलने-फिरने की शक्ति होती है। उसमें कभी सूत्रों का-सा एक जाल दिखलाई पड़ता है, जिसके कोष्ठों के अन्दर एक तरल रचना-विहीन पदार्थ भरा रहता है और कभी उसमें उस गाढ़ी वस्तु में फेन के कण जैसे तैरते दिखलाई पड़ते हैं। विद्वानों की राय में कोशिकाद्रव्य के भी दो भाग होते हैं––एक सक्रिय (Active) और दूसरा निष्क्रिय (Inactive)। जो गति, उत्तेजना, संकोच आदि होता है वह सब सक्रिय भाग में होता है।

कोशिकाद्रव्य ही जीवन का आधार है। जब तक वह जीवित दशा में रहता है तभी तक शरीर जीवित रहता है। कोशिकाद्रव्य की मृत्यु से शरीर की मृत्यु हो जाती है।

केन्द्रक (Nucleus)––केन्द्रक प्रायः कोशिका के मध्य में रहता है, परन्तु वनस्पति जगत में वह एक ओर रहता है। प्रत्येक कोशिका में एक केन्द्रक होता है। किसी-किसी में यह एक से अधिक भी होता है। केन्द्रक की उपस्थिति में ही कोशिका जीवित रह सकती है, अन्यथा मर जाती है। अगर कोई कोशिका ऐसी काट दी जाय कि एक भाग में केन्द्रक हो और दूसरे में नहीं तो वह दूसरा भाग मनुष्य-शरीर के कटे अंग के समान मर जायगा।

उत्पत्ति में केन्द्रक को विशेष भाग लेना पड़ता है। प्रौढ़ हो जाने पर कोशिका पहले लम्बी होने लगती है, फिर उसका केन्द्रक विभाजित होकर दो हो जाता है। अब एक केन्द्रक लम्बाई के एक भाग में और दूसरा दूसरे भाग में स्थित हो जाता है और यह लम्बी कोशिका बीच से सिकुड़ कर पतली होने लगती है। अन्त में कोशिका यहाँ से कटकर दो हो जाती है और प्रत्येक स्वतन्त्र कोशिका बन जाती है। इसी प्रकार यह दो से चार, चार से आठ, आठ से सोलह, इसी क्रम में बढ़ा करती है।

उच्च श्रेणी के जीवों में यह विभाजन एक गूढ क्रिया के पश्चात् होता है। पहले केन्द्रक के अन्दर के सूत्रों का पुनः नियंत्रण होकर उसके दो भाग

हो जाते हैं और वह केन्द्रक के ऊपर-नीचे एकत्रित हो जाते हैं। फिर केन्द्रक इस प्रकार दो भागों में विभक्त हो जाते हैं कि प्रत्येक भाग में एक सूत्र-समूह आ जाय। इन समूहों को क्रोमोसोम (गुण सूत्र, Chromosome) कहते हैं। इसके पश्चात् प्रत्येक केन्द्रक के चारों ओर कोशिकाद्रव्य एकत्रित हो जाता है और उस पर आवरण चढ़ जाता है। इन क्रोमोसोमों में ही माता-पिता के रंग, रूप, गठन, आकृति, प्रकृति आदि का गुण रहता है जो सन्तान में आ जाता है।

अमीबा के, जो एक ही कोशिका का वना हुआ छोटा-से-छोटा जीव है, व्यवहार को देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि वह एक जीवित वस्तु है। क्योंकि जीवन के नीचे दिए हुए पाँच लक्षण मुख्य हैं और वे सब अमीबा में पाये जाते हैं।

१—उत्तेजिता—बाहरी प्रभावों से उत्तेजित होकर अपने-अपने शरीर में किसी प्रकार का परिवर्तन करने की शक्ति प्रत्येक जीवधारी में पाई जाती है। किसी जीवित कीड़े के शरीर में सुई चुभा दो तो वह तुरन्त सिकुड़ जायगा। मृत कीड़ा ऐसा नहीं करेगा। अमीबा के शरीर पर यदि बिजली की धारा लगा दें तो तुरन्त उसके शरीर की गति दूसरी ओर को हो जायगी अथवा जिस ओर उसके शरीर में गति हो रही हो उधर पानी में अम्ल की एक बूंद डाल दें तो उसके अम्ल के सम्पर्क में आते ही उसकी गति दूसरी ओर को हो जायगी। इससे ज्ञात होता है कि अपने हित-अनहित का ज्ञान अमीबा को भी होता है और अपने हित की ओर आकर्षित होने और अनहित से बचने की उत्तेजना उसके शरीर में उत्पन्न हो जाती है।

२—आत्मीकरण—जीव बाहर से अपनी भोजन-सामग्री ग्रहण करता है और उसे खा-पचा कर उसके रस को अपने रुधिर में पहुँचा देता है। रुधिर में पहुँचकर वह शरीर के अनुकूल रूप में बदलकर जीव को पोषण और शक्ति प्रदान करता है। अमीबा भी जीव के समान बाहर से भोजन प्राप्त करता है

श्रौर उसका आत्मीकरण करता है। जीवित पशु, मनुष्य सबके साथ यही होता है।

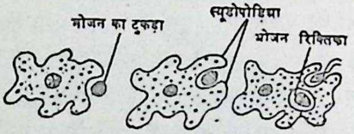

चित्र २--अमीबा का खाद्य पदार्थ ग्रहण करना

३--वर्धन--जीव अपने भोजन को पचाने श्रौर उसका आत्मीकरण करने से जो शक्ति प्राप्त करता है उससे उसकी कार्य करने की शक्ति में श्रौर उसके शरीर में वृद्धि होती है। जैसे--वृक्ष बढ़ता है, पशु बढ़ता है, वैसे ही बालक बढ़ता है, जब तक कि इस वृद्धि की अन्तिम सीमा नहीं प्राप्त हो जाती है। पत्थर, मिट्टी तथा कोई अन्य निर्जीव पदार्थ नहीं बढ़ते।

४--संतानोत्पादन--प्रत्येक जीवधारी का यह प्राकृतिक गुण है कि वह अपनी वंश-परम्परा को सुरक्षित रखने के लिए सन्तान उत्पन्न करे। वृक्ष के फल के बीज से उसी वनस्पति का दूसरा वृक्ष पैदा होता है। कीड़े, पक्षी, पशु भी बच्चे पैदा करते हैं। इनमें ऊँची श्रेणी के जीवों में लिंग-भेद होता है। वृक्षों में भी नर-मादा पाए जाते हैं। जीवाणुश्रों में यह गुण होता है कि वे एक से विभक्त होकर दो, दो से चार, चार से आठ इसी प्रकार बराबर बढ़ा करते हैं, जैसा अमीबा के सम्बन्ध में ऊपर बतलाया गया है।

५--मलोत्सर्जन--जीवधारी का यह पांचवां गुण है। अमीबा भोजन करता है श्रौर मल-त्याग करता है। उसके शरीर का मल श्रौर कार्बोनिक एसिड गैस रिक्तिका (Vacuole) में एकत्रित हो जाती है श्रौर जब वह स्थान भर जाता है तब अमीबा का शरीर कुछ सिकुड़ता है श्रौर उसमें ऐसी दरार हो जाती है जिससे निकल कर दूषित पदार्थ बाहर पानी में मिल जाता

है। तत्पश्चात् अमीबा का शरीर पुनः पूर्ववत् हो जाता है और कोई चिह्न नहीं रह जाता है।

अमीबा इस सृष्टि पर जीव की प्रारम्भिक अवस्था है। उसका शरीर केवल एक ही कोशिका का होता है और यही एक कोशिका जीवन के सभी कार्यों का सम्पादन करती है। वनस्पतियों में भी ऐसे जीव हैं जिनका सम्पूर्ण शरीर एक ही कोशिका का होता है; जैसे—एल्गी या शैवाल (Algae) और फंगाई या कवक (Fungi), परन्तु संसार में जीव की यात्रा वहीं पर स्थगित नहीं हुई। जीव में विकास होता गया और उसके शरीर की बनावट में एक से अधिक कोशिकाओं का सहयोग हुआ।

विकास के क्रम में ज्यों-ज्यों शरीर के बनाने में कोशिकाओं की संख्या बढ़ती गई त्यों-त्यों उनमें कार्य-विभाजन भी होने लगा तथा इस प्रकार जीवों के अलग-अलग संघ (फाइलम, Phylum) बन गये। अमीबा के पश्चात् दूसरे संघ में वह जीव आये जिसमें शरीर में भोजन पकड़ने की कोशिकाएँ अलग हो गईं और शेष समस्त व्यापार जैसे—पचाना, अंतर्ग्रहण (Ingestion), उत्सर्जन इत्यादि अन्य कार्य सब कोशिकाएँ एक समान करती रहीं। हाइड्रा (Hydra) नाम का जल-जन्तु ऐसा ही होता है। इससे अगले संघ के जीव में प्रतीत करने की भी कोशिकाएँ पृथक् होने लगीं। जेली मछली (Jelly fish) में प्रतीत करने की कोशिकाएँ भी अलग होती हैं जिन्हें उसका मस्तिष्क तथा तन्त्रिका-तन्त्र कह सकते हैं। उससे अगले संघ के जीवों में शरीर में उत्पादन के लिए भी कोशिकाएँ अलग हो गईं, परन्तु स्त्री-पुरुषोत्पादक दोनों कोशिकाएँ एक ही शरीर में रहती हैं; जैसे—केंचुआ में नर-मादा अंग एक ही शरीर में होता है। इससे अगले संघ में नर और मादा अलग-अलग हो जाते हैं। इनमें देखने के लिए, शिकार करने के लिए, शत्रु पर आक्रमण करने के लिए अलग-अलग कोशिकाएँ हो जाती हैं। मच्छर, मकड़ी, मक्खी आदि ऐसे जीव हैं।

इससे भी अगले संघ में ऐसे जीव आते हैं जिनमें अस्थि बनने लगती है। ऐसे छोटे-छोटे जीव भी हैं जिनके शरीर में अस्थियाँ होती हैं, परन्तु अस्थिमय सृष्टि में ये जीव भी आ जाते हैं; घोड़ा, हाथी आदि समस्त

(Nucleus) दो भागों में बँट जाता है। यह भाग फिर बार-बार कई भागों में विभाजित होता है। इस तरह के विभाजन द्वारा बहुत-सी कोशिकाओं के हो जाने पर उसके अलग-अलग तीन समूह हो जाते हैं। एक बाहर का भाग, दूसरा अन्दर का भाग और तीसरा उनके बीच का स्तर बन जाता है। बाहर

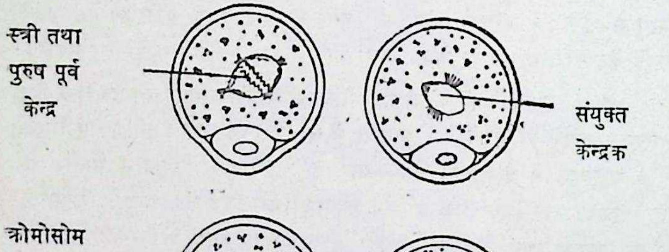

चित्र ३—स्त्री तथा पुरुष पूर्व केन्द्रकों का संयोग तथा विभाजन

के भाग से सर के अंग; जैसे--नेत्र, कर्ण, नाड़ी-मण्डल, उपचर्म (Dermis) आदि भाग बनते हैं। अन्दर के स्तर से कंकाल-तन्त्र, पेशी-तन्त्र, रुधिर-परि-संचरण-तन्त्र, जनन-तन्त्र (Reproductive System), प्लीहा आदि अंग

बनते हैं और इनके अन्दर वाले स्तर से शरीर के अन्दर भी श्लेष्मा-झिल्ली, श्वसन-तंत्र, मूत्राशय आदि अंग बनते हैं।

इससे यह स्पष्ट हो गया कि शोशिका समूह में एकत्रित होकर शरीर के भिन्न-भिन्न अंग (Organs) बनाती हैं। इन कोशिकाओं के समूहों को ऊतक (Tissues) बनाते हैं।

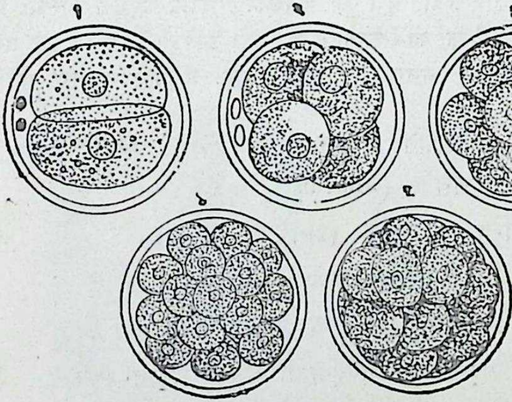

चित्र ४--कोशिकाओं का विभाजन

शरीर के ऊतक (Tissues)--हर ऊतक अपने आकार और क्रिया में दूसरे ऊतकों से भिन्न होता है, क्योंकि उसके बनाने वाली कोशिकाएं स्वयं अपने काम के अनुसार कुछ परिवर्तित हो जाती हैं। इनका अपना गुण और आकार आवश्यकतानुसार भिन्न हो जाता है। जिस प्रकार किसी सभ्य समाज या सुसंगठित संस्था में सदस्यों के काम अलग-अलग बँटे होते हैं--कुछ लोग खेती-गृहस्थी करते हैं, कुछ जुलाहे का काम करते हैं, कुछ सिपाही या स्वास्थ्य बढ़ाने के कामों में लगे रहते हैं, पर सभी सदस्य अपना-अपना काम करते हुए समाज या संस्था को चलाने में सहायक होते हैं, उसी तरह इन कोशिकाओं के

अलग-अलग समूह अर्थात् ऊतक अलग-अलग आवश्यक कार्यों को करते हुए शरीर को बनाये रखते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में भिन्न-भिन्न प्रकार के ऊतक होते हैं और भिन्न-भिन्न ऊतकों में भिन्न-भिन्न प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं। शरीर की मांस-पेशियों में एक प्रकार के ऊतक होते हैं, मस्तिष्क तथा नाड़ी-मण्डल में दूसरे प्रकार के हड्डियों को बनाने वाले ऊतक कुछ और ही प्रकार के होते हैं। कुछ कोशिकाएँ शरीर के भीतर स्थित अंगों पर भित्ति (Wall) का काम करती हैं तथा कुछ उनको जोड़ती हैं। इस प्रकार अलग-अलग ऊतकों के अलग-अलग काम हैं और एक का काम दूसरा नहीं कर सकता।

शरीर में जितनी कोशिकाएँ हैं वे कुल चार प्रकार के ऊतकों में विभक्त हैं—

१—पेशी ऊतक (Muscular Tissue)।

२—तान्त्रिका ऊतक (Nervous Tissue)।

३—योजी ऊतक (Connective Tissue)।

४—एपिथीलियमी ऊतक (Epithelial Tissue)।

इन ऊतकों के बनावट की भिन्नता और उनके संक्षिप्त वर्णन नीचे दिये जाते हैं :—

१—पेशी ऊतक—इन ऊतकों से मांस-पेशियाँ बनी हैं। हमारे शरीर में ६०० पेशियाँ हैं। शरीर के किसी भी भाग में गति तभी होती है जब वहाँ की मांस-पेशी सिकुड़ती है। इसलिए सिकुड़ना और फिर ज्यों का त्यों हो जाना मांस-पेशी का विशेष गुण है।

मांस-पेशियों को बनाने वाली कोशिकाएँ मजदूरों की तरह काम करती हैं। इनमें से हर एक कोशिका एक ही काम करना, विशेष अवसरों पर सिकुड़ना और फिर ज्यों-का-त्यों हो जाना, जानती है। यह सिकुड़ कर छोटी और मोटी हो जाती हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि मांस-पेशी जो इन कोशिकाओं से बनी होती है, वह इन कोशिकाओं के सिकुड़ने से छोटी और मोटी हो जाती है।

शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में जो क्रियाएँ और गतियाँ हुआ करती हैं वे मांस-पेशियों के सिकुड़ने-फैलने से होती हैं ।

शरीर में मांस-पेशियाँ दो प्रकार की होती हैं : (१) ऐच्छिक पेशी (Voluntary muscles) जिनकी क्रिया हमारी इच्छा के अधीन है जैसे; हाथ, पैर आदि अंगों की, जहाँ की पेशियाँ अस्थियों से लगी होती हैं । (२) **अनैच्छिक पेशी** (Involuntary muscles) जिनकी क्रिया हमारी इच्छा के अधीन नहीं होती, वरन् स्वतः हुआ करती है, जैसे; आंत्र तथा आमाशय में अनैच्छिक पेशियाँ होती हैं । यहाँ ये आहारनाल में भोजन के खिसकने में सहायता करती हैं।

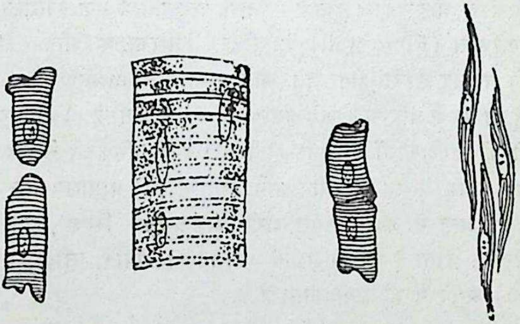

(क) (ख)

चित्र ५—(क) ऐच्छिक पेशी (ख) अनैच्छिक पेशी

पेशी-ऊतक मांस-सूत्रों का बना होता है और इन-सूत्रों के समूह से, जो एक भित्ति द्वारा आपस में बँधे रहते हैं, मांस-पेशी बनती है । ऐच्छिक मांस-पेशी की कोशिकाएँ लम्बी और सिलिंडराकार तंतुओं से बनी होती हैं । इनमें प्रत्येक में अनेक केन्द्रक होते हैं और वे एक पतली झिल्ली से लिपटे रहते हैं । ऐच्छिक पेशियाँ समूह में पायी जाती हैं जो कि एक दूसरे के समानान्तर स्थित होती हैं । ये रेखित पेशी-कोशिका (Striped muscle cells) भी कहलाती हैं । हाथ, पैर और बाहरी धड़ के बहुत से भागों की मांस-पेशियाँ इन्हीं कोशिकाओं

से बनी होती हैं। यदि ऐच्छिक पेशी के एक सूत्र को सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखें तो सूत्र चौड़ाई में स्थित अनेक रेखाओं में विभक्त दिखलाई पड़ेगा और इनमें यह क्रम दिखालाई पड़ेगा कि एक रेखा प्रकाशहीन है तो दूसरी प्रकाशमय अर्थात् प्रकाशहीन और प्रकाशमय बारी-बारी से एक-दूसरे के बाद आते-जाते हैं। जो पेशी जितना अधिक संकुचन (Contract) कर सकती है उसमें यह प्रकाशमय और प्रकाशहीन भागों की शृंखला उतनी ही अधिक स्पष्ट होती है।

अनैच्छिक मांस-पेशी की कोशिकाएँ (अरेखित पेशी-कोशिका, Unstriped muscle cells) भी सूत्रों की तरह होते हैं, पर वे छोटे होते हैं और उनके दोनों सिरे पतले और नुकीले होते हैं। इनका प्रत्येक सूत्र एक कोशिका होता है जिसमें सूत्र-भित्ति (Fibre wall) के भीतर कोशिकाद्रव्य और केन्द्रक रहते हैं। इनका आकार लम्बा होता है। **आहारनाल** (Alimentary canal, यह वह नली है जो मुँह से प्रारम्भ होकर अवस्कर द्वार तक जाती है।) की दीवारें इन्हीं बिना धारी की कोशिकाओं से बनी होती हैं। इनके सिकुड़ने से मुँह में खाया हुआ भोजन दबाव पाकर धीरे-धीरे आगे बढ़ता है और आमाशय और आंत्रों में से होता हुआ, अन्त में जबकि उससे शरीर-पोशक द्रव्य खिच जाता है, मल के रूप में निकल जाता है। ये कोशिकाएँ मूत्राशय की दीवारें, प्लीहा, श्वासनली (Trachea) आदि में भी पायी जाती हैं।

हृदय पेशियाँ (Cardiac) हृदय की मांस-पेशियों की रचना में एक विशेषता होती है। यद्यपि उसकी कोशिकाएं ऐच्छिक प्रकार के अर्थात् धारीदार होती हैं, परन्तु उन पर हमारी इच्छा का प्रभाव नहीं पड़ता। उनका व्यवहार अनैच्छिक कोशिकाओं के समान रहता है। इसके तंतु शाखाओं में विभाजित होते हैं और एक घना जाल बनाते हैं।

(२) तन्त्रिका ऊतक—इन ऊतकों से मस्तिष्क से निकली हुई तन्त्रिकाएँ बनी हैं। ये तन्त्रिकाएं मस्तिष्क की आज्ञा अंगों को और अंगों की सूचनाएँ मस्तिष्क को पहुँचाती हैं। आज्ञा ले जाना, सूचना ले आना, सोचना-विचारना तन्त्रिका ऊतक के विशेष गुण हैं। मस्तिष्क के सिवा कोई अंग सोचने-

विचारने का काम नहीं कर सकता, क्योंकि यह शक्ति मस्तिष्क की कोशिकाओं को ही प्राप्त है।

तन्त्रिका कोशिकाओं से मस्तिष्क और रीढ़-रज्जु (Spinal cord) तथा उससे निकली हुई तन्त्रिकाएं बनी हैं। प्रत्येक कोशिका में एक बीच का भाग होता है, जो कुछ ठोस-सा होता है। इससे बहुत-सी शाखाएँ निकलती हैं जो इधर उधर फैली रहती हैं और प्रायः दूसरी कोशिकाओं की शाखाओं से उलझी-सी रहती हैं। ये आज्ञाएँ ले जाने और सूचनाएँ लाने का कार्य बड़ी दक्षता और शीघ्रता से करती हैं। तुम्हारा अनुभव होगा कि कोई चीज हाथ से छूट गई तो उसके धरती पर गिरने के पहले ही तुम उसको बीच में हाथ से रोक लेते हो। इसमें होता यह है कि वस्तु के हाथ से छूटते ही मस्तिष्क को सूचना पहुंच जाती है और हाथ या पैर को आज्ञा आ जाती है कि वह उस वस्तु को जमीन पर गिरने से पहले रोक ले। अगर तुम्हारे शरीर पर कोई कीड़ा बैठ जाय तो त्वचा से जाने वाली तन्त्रिकाएँ तुरन्त मस्तिष्क को सूचना भेज देती हैं कि शरीर में अमुक स्थान पर कीड़ा बैठा है और मस्तिष्क की आज्ञा हाथ को मिल जाती है कि वह

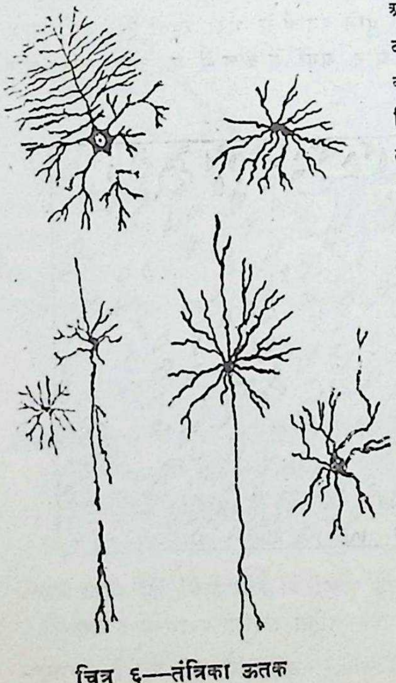

चित्र ६—तंत्रिका ऊतक

उस कीड़े को उड़ा दे। यह सब इतना शीघ्र होता है कि ध्यान में नहीं आता।

(३) योजी ऊतक (Connective Tissue)—एक अंग को दूसरे अंग से जुड़ा रखना दूसरे ऊतक का काम है। इस तरह के ऊतक शरीर के सभी अंगों में पाये जाते हैं। यह ऊतक भिन्न-भिन्न अंगों को ढक कर एक स्थान पर सुरक्षित रखता है। योजी ऊतक कई प्रकार के हैं, जैसे—

(क) सान्तरिक ऊतक—इसमें कोशिकाओं के बीच में रिक्त स्थान होता है जो एक चिपचिपे और खिचने वाले पदार्थ से भरा रहता है। यह ऊतक त्वचा के नीचे तथा मांस-पेशियो और अंगों के बीच में या उनको चारों ओर से ढके हुए रहता है।

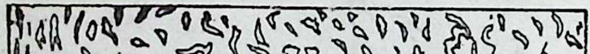

चित्र ७—सान्तरिक ऊतक। रेखाबद्ध आकृतियाँ कोशिकाओं को व्यक्त करती हैं। उनके बीच के श्वेत स्थान रचना रहित समांशी पदार्थ के द्योतक हैं।

(ख) वसीय ऊतक (Fatty Tissue)—इनकी बनावट वही है जो सान्तरिक ऊतक की होती है, परन्तु इनके कोशिका बड़े होते हैं और इन

ऊतकों में तेल-विन्दुओं से भरी कोशिकाएं होती हैं और वह पीले और सफेद रेशों की एक आवात्री से घिरा रहता है। विशेषकर चर्म के वहुत नीचे, आंत्र की झिल्लियों में नाड़ी धमनियों आदि के वीच में तथा अस्थि मज्जा में पाया जाता है। यह एक **भरण ऊतक** (Filling tissue) है।

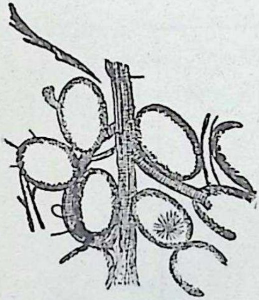

चित्र ८---वसामय ऊतक

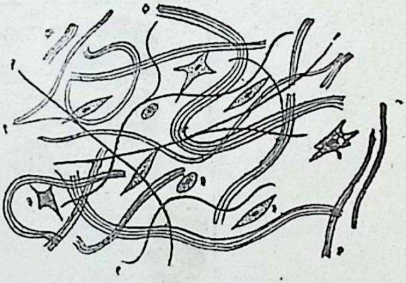

चित्र ९--(१) पीले सूत्र, (२) श्वेत सूत्र, (३) कोशिकाएँ।

(ग) रेशेदार ऊतक (Fibrous Tissue)---शरीर के अन्दर की झिल्लियाँ तथा कंडरा (Tendons) इसी वस्तु के वने होते हैं। धमनियाँ, रसवाहिनियाँ, तन्त्रिकाएँ सव इससे ढकी रहती हैं। इसमें लहरियेदार समानान्तर लम्वे-लम्वे सूत्र होते हैं। ये चमकदार श्वेत रंग के होते हैं। इसी कारण ये श्वेत संयोजक ऊतक कहलाते हैं। कुछ सूत्र पीले रंग के होते हैं, परन्तु उनकी संख्या कम होती है। पीले सूत्रों से शाखाएँ भी निकलती हैं। ये लचीले होते हैं।

(घ) कार्टिलेज या उपास्थि (सूक्ति ऊतक)—यह श्वेत या हल्के गुलावी रंग का एक चीमड़ अर्थात् कड़ा परन्तु लचीला पदार्थ है। यह हड्डियों के वीच में तथा नाक, कान, उरोस्थि (Sternum) और पर्शुकाओं के वीच में स्थित पाया

जाता है। कान का बाहरी भाग तथा नाक का सिर इसी का बना होता है। यह अंगों में दृढ़ता के साथ-साथ लचीलापन देती है। इसकी रचना को सूक्ष्मदर्शी से देखने पर मालूम होगा कि इसकी बनावट में एक समांशी भौतिक पदार्थ में इधर-उधर कुछ गड्ढे होते हैं। ये गड्ढे प्राय: दो-चार समूह में होते हैं और उनके

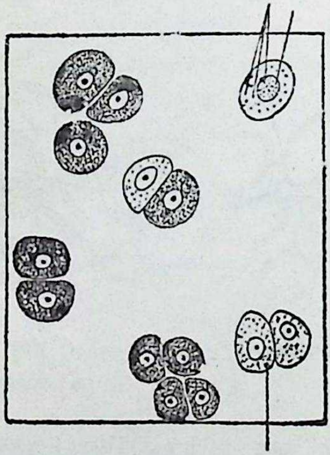

चित्र १०—उपास्थि ऊतक दो कोशिकाओं का समूह, कोशिका के अंग, आद्यसार आदि दीख रहे हैं।

चिपटे सिरे आपस में मिले रहते हैं। इन्हीं गड्ढों में उपास्थि की कोशिकाएँ रहती हैं। प्रत्येक गड्ढे में एक कोशिका रहती है।

कार्टिलेज दो प्रकार का होता है :—

१—रेशेदार उपास्थि (Fibrous Cartilage)—सूक्ष्मदर्शी से देखने से इसके भौतिक पदार्थ में कोशिकाओं के अतिरिक्त बारीक-बारीक सूत्र भी दिखलाई पड़ते हैं जो किसी स्थान पर श्वेत और किसी स्थान पर पीले दिखलाई पड़ते हैं। पीले उपास्थि श्वेत की अपेक्षा अधिक लचीले होते हैं।

२——काचाभ उपास्थि——(Hyaline Cartilage)——इसमें सूत्र नहीं होते। यह रचना-विहीन समांशी पदार्थ का वना होता है। नाक, स्वर-यंत्र तथा पसलियों के अगले सिरों और वक्षास्थि के बीच में स्वेत उपास्थि होती है और कान की सूक्ति पीली होती है।

(च) अस्थि——हड्डियाँ शरीर के कोमल भागों को सीधा रखती हैं और शरीर के भिन्न-भिन्न पेशियों और अंगों में संयोजक का काम करती हैं। अस्थि की रचना कुछ ऐसी है कि उसमें दृढ़ता रहे, परन्तु उसका भार अधिक न हो। उसके वनाने वाली कोशिकाएँ वहुत छोटे-छोटे और ऊबड़-खाबड़ आकार की

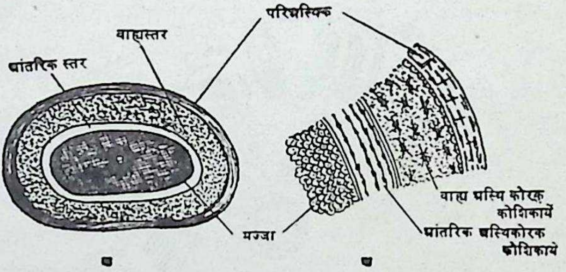

(क) अल्प आवर्धित (ख) अधिक आवर्धित

चित्र ११—अस्थि का अनुप्रस्थ काट

होती हैं। वे रुधिर की नलियों के चारों तरफ और आस-पास वृत्तों (दायरों) में इकट्ठा होते हैं और उन्हीं नलियों से अपने लिए रस खींचते हैं। इन कोशिकाओं का एक विशेष गुण यह है कि ये अपने को चूने की दीवारों से घेर लेते हैं और इस तरह मिलजुल कर शरीर को साधने वाला ढाँचा तैयार करते हैं। अस्थियों की नली लम्बाई में आर-पार खोखली रहती है। उसकी दीवार (मोटाई) में अन्दर की ओर की कोशिकाएँ स्पंजी (Spongy) होती हैं और कुछ अन्तर छोड़ कर मिली रहती हैं। परन्तु अस्थि का बाहरी भाग अत्यन्त सघन और कड़ा होता है। इस प्रकार अस्थि के बीच में खोखला, उसके ऊपर का भाग स्पंजी और सबसे ऊपर का भाग कड़ा होता है।

चपटी तथा छोटी अस्थियों में बीच का खोखलापन नहीं रहता, वरन् भीतर स्पंजी और ऊपर कड़ा भाग रहता है।

(छ) रुधिर--रुधिर भी एक प्रकार का संयोजी ऊतक (Connective tissue) है। यह एक अंग का दूसरे अंग से विशेष ढंग से सम्बन्ध कराता है। एक अंग से भोजन तथा ऑक्सीजन लेकर सारे अंगों में पहुँचाता है और वहाँ के विकार फुप्फुस में लाकर उसके बाहर निकलने में सहयोग देता है।

रुधिर वस्तुतः एक तरल पदार्थ है जिसमें कई प्रकार की कोशिकाएँ तैरती रहती हैं। तरल पदार्थ का अपना रंग कुछ हलका पीला होता है। इसे जीवद्रव्य

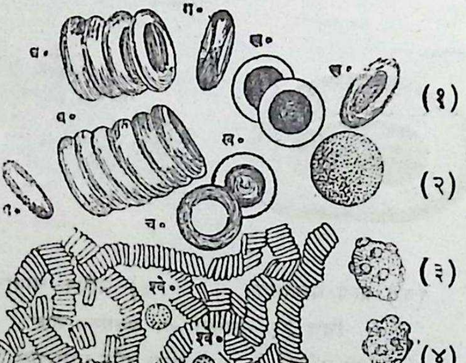

चित्र १२--रुधिर-कण

लाल कण नीचे समूह में पड़े हैं। उनमें श्वेत कण भी हैं।

घ-घ--लाल कणों का एक समूह। ग--एक लाल कण, किनारे की ओर से।

ख--लाल कण, चपटे दीख रहे हैं।

१ श्वेत कण; २, ३, ४ विकृत लाल कण।

(Plasma) कहते हैं। इस जीवद्रव्य में कुछ छोटे-छोटे गोल पदार्थ तैरा करते हैं। ये रुधिर कणिका (Blood corpuscles) कहलाते हैं। रुधिर कणिका दो प्रकार के होते हैं—एक लाल और दूसरा श्वेत।

कभी तुमने अपने घाव या चोट से पीला पानी निकलते देखा होगा। यही जीवद्रव्य है। अगर थोड़ा रुधिर किसी शीशे के बरतन में रख दें तो शीघ्र ही उसमें गहरे लाल रंग का थक्का जम जायगा और पीला तरल पदार्थ ऊपर आ जायगा। यह पीला तरल पदार्थ जीवद्रव्य (Plasma) है और थक्का रुधिर के जम जाने से बन जाता है।

(१) लाल कणिका (Red Corpuscles)—ये कणिका (Corpuscles) छोटे-छोटे गोल पदार्थ हैं। परन्तु उनका किनारा उभरा हुआ और मध्य भाग गहरा होता है। स्तनधारी जीवों के लाल कणिका में केन्द्रक नहीं होता वरन् इनके भीतर हीमोग्लोबीन (Haemoglobin) भरा रहता है जिसके कारण इनका रंग लाल दिखलाई पड़ता है। इस कारण मनुष्य और चिड़ियों के रुधिर-कणिका अलग-अलग प्रतीत हो जायँगे। अलग-अलग कणिका का रंग पीला प्रतीत होता है, परन्तु जब बहुत-सी कणिकाएँ इकट्ठी हो जाती हैं तब रंग लाल दिखलाई पड़ता है।

लोहा हीमोग्लोबीन का एक मुख्य अंग है। हीमोग्लोबीन में वायु से ऑक्सीजन

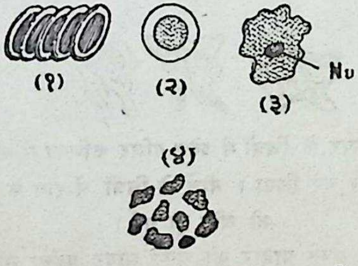

चित्र १३—मनुष्य के रुधिर-कण (१); (२) लाल रुधिर कणिका; (३) श्वेत रुधिराणु; Nu—केन्द्रक; (४) रुधिर-प्लेटलेट।

खींच लेने का विशेष गुण होता है। शरीर के अन्दर जारण के लिए ऑक्सीजन आवश्यक है। इसलिए रुधिर के लाल कणिका वायु से ऑक्सीजन लेकर हृदय में और हृदय से समस्त शरीर में जाते हैं और शरीर की प्रत्येक कोशिका को ऑक्सीजन पहुँचाते हैं। लौटते समय ये कणिका जारण क्रिया के कारण उत्पन्न कार्बन डाइ-ऑक्साइड से लद जाते हैं और नीले होकर फुप्फुस को लौटते हैं। इसी कारण धमनियों में रुधिर का रंग लाल दिखलाई पड़ता है और शिराओं में गन्दा नीला हो जाता है।

(२) श्वेत कणिका (White Corpuscles)—श्वेत कणिका की संख्या लाल कणिका की अपेक्षा बहुत कम होती है। इसका आकार भी लाल कणिका की अपेक्षा बड़ा होता है और वह हर समय बदला करता है। यह अमीबा के सदृश होता है और रुधिर में अपना रूप बदलता हुआ स्वतंत्रता से प्रवाह करता है।

ये कणिका शरीर के अन्दर सिपाही का काम करते हैं। रोग के कीटाणु के रुधिर में आते ही श्वेत कणिका टोली बनाकर उन पर आक्रमण कर देते हैं और

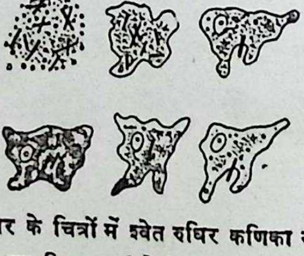

चित्र १४—ऊपर के चित्रों में श्वेत रुधिर कणिका ने कीटाणु को अपने अन्दर हजम कर लिया। नीचे के चित्रों में रोग के कीटाणु की जीत हो गई।

जिस प्रकार अमीबा अपने आहार को अपने अन्दर पहुँचा लेता है उसी प्रकार ये कणिका भी रोग के कीटाणुओं को हजम कर जाते हैं। शरीर में बाहर से रोग के कीटाणु के पहुँचते ही पहले ये श्वेत कणिका उन पर आक्रमण करते

हैं और उन्हें हजम कर जाने का प्रयत्न करते हैं। यदि सफल हो गए तो रोग नहीं आ पाता, परन्तु यदि हार गए तो शरीर रोगी हो जाता है।

(ज) उपकला ऊतक (Epithelial Tissue)—यह ऊतक शरीर में भित्ति का काम करती है। शरीर के समस्त बाह्य भाग पर यथा आन्तरिक अंगों के ऊपर की त्वचा या झिल्ली इसी ऊतक से बनती है। मुंह, होंठ, गाल, समस्त पाचक तंत्र, जो मुँह से आरम्भ होकर अवस्कर द्वार तक जाती है, का भीतरी पृष्ठ इसी कला (Membrane) का बना होता है। पाचक अंग (Digestive organ) में रसोत्पादक ग्रन्थियां इसी कला से ढकी रहती हैं। श्वास-नलिकाएँ (Bronchi) रुधिर वाहिनी-नलिकाएँ रसवाहिनियां आदि के आन्तरिक भाग इसी कला से ढके रहते हैं। इसकी कोशिकाओं में बीच में अन्तर नहीं रहता और उनका पोषण लसीका (Lymph) से होता है, क्योंकि इन कोशिकाओं में रुधिरवाहिनी नहीं पहुँचती।

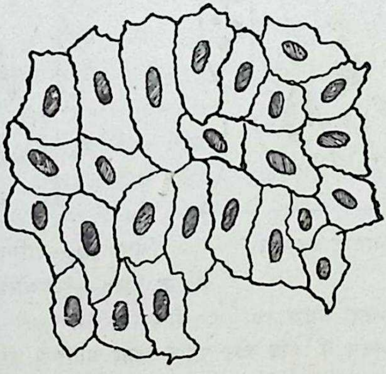

चित्र १५—शल्की उपकला ऊतक

इस ऊतक में कई प्रकार की कोशिकाएँ पायी जाती हैं। कुछ स्थान की कोशिकाएँ अष्ट या षट्कोणी होती हैं जो एक-दूसरे से अपने किनारों से जुड़ी रहती हैं, जैसे; मधु मक्खी के छत्ते की कोठरियां अथवा कमरे के फर्श में लगे अठकोने चौके। फुप्फुस के वायु-कोष (Air sac) भी इसी ऊतक से ढके रहते हैं।

कुछ स्थानों पर इसकी कोशिकाएँ लम्बे स्तम्भ के आकार की होती हैं। ये एक-दूसरे से अपनी लम्बाई में सटी रहती हैं। इनका एक ओर का चौड़ा बहुकोणी सिरा बाहर प्रणाली के मार्ग की ओर रहता है और दूसरी ओर का सिरा जो पुच्छाकार होता है भीतर श्लेष्मा स्तर की ओर होता है। आमाशय और आंत्रों की कला इसी ऊतक से बनी होती है।

इस प्रकार की कोशिकाएँ ऐसी भी होती हैं जिनके चौड़े सिरे पर पक्ष्माभिका (Cilia) होती हैं और ये प्रणाली में जाने वाले पदार्थ को बाहर निकाल देती

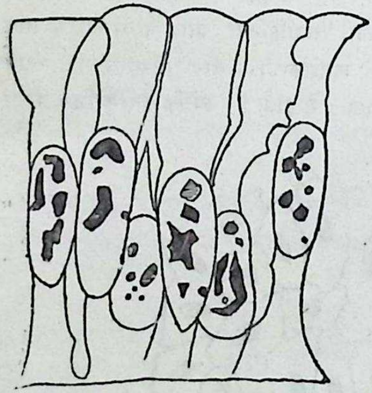

चित्र १६—स्तंभाकार उपकला

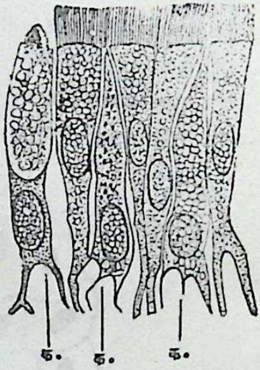

चित्र १७—रोमिका-युक्त उपकला
क० क० क०—श्लेष्मोत्पादक कोशिकाएँ

हैं जो पक्ष्माभिकामय कोशिकाओं के बीच-बीच में रहती हैं और श्लेष्मा बनाती हैं। श्वसनतंत्र में यदि कोई पदार्थ चला जाता है तो तुरन्त खांसी आ जाती है और वह पदार्थ बाहर निकल आता है, क्योंकि वहाँ ऐसी ही कोशिकाएं होती हैं।

कुछ उपकलाएँ संवेदी होती हैं। ये भी स्तंभाकार होती हैं। ये कान के अन्दर जहाँ बाल होते हैं तथा जिह्वा पर जहाँ से स्वाद का ज्ञान होता है पाई जाती हैं। इनकी कोशिकाओं पर ऊपर की ओर कभी-कभी बाल या कोई ऐसा

उभार होता है और दूसरी ओर किसी संवेदी तन्त्रिका से सम्बन्ध होता है। अतः ज्यों ही बाल या उन उभारों में वस्तु छू गई त्योंही मस्तिष्क को सूचना पहुँच जाती है।

शरीर के अंग और उनका काम

घर बनाने में प्रारम्भिक वस्तु ईंट है। ईंट से दीवार बनाई जाती है और फिर उस पर छत, फर्श और दूसरी दीवारें बनाई जाती हैं। परन्तु यह मकान नहीं, वरन् मकान के लिए ईंटों का ढांचा खड़ा हुआ है। मकान तब बन कर तैयार कहा जायगा जब इसमें खिड़कियाँ, दरवाजे लग जायँ, दीवारों पर प्लास्टर कर दिया जाय, फर्श और रास्ते बना दिये जायँ, रसोईघर, स्नानघर, शौच-स्थान, विश्रामगृह, पुरुषों के लिए बैठक, स्त्रियों के लिए कार्य-भवन अलग कर दिए जायँ।

मनुष्य के शरीर की बनावट का भी यही ढंग है। गर्भ में पहले जीव कोशिका-समूह के रूप में आता है और ऊतकों का एक आकार प्राप्त करता है। परन्तु संसार में सफल जीवन प्राप्त करने के योग्य तब होता है जब उस शरीर के कार्य-संचालन के लिए सिर, पोषण देने के लिए आमाशय और पेट के अन्दर के अन्य अंग, खबरें पहुँचाने के लिए तन्त्रिका-तन्त्र, बाहर की जानकारी प्राप्त करने के लिए नाक, कान, आंख आदि, सफाई के लिए त्वचा, वृक्क, मूत्राशय आदि, कार्य-सम्पादन के लिए हाथ, पैर आदि सब आवश्यक भाग तैयार हो जायँ। शरीर के इन्हीं आवश्यक भागों को अंग करते हैं।

शरीर के चार बड़े हिस्से किये जा सकते हैं—

(१) सिर, (२) गर्दन, (३) धड़ और (४) ऊपर-नीचे की शाखाएँ (भुजाएँ और पैर)।

सिर—सिर के भाग खोपड़ी, जिसमें मस्तिष्क रखा है और चेहरा है। फिर सिर में दो आँखें और आँखों के बीच में ऊपर की तरफ नाक है। आँखों के ऊपर वाले बालों को भौंह और भौंहों के ऊपर और सिर के बालों के नीचे के

भाग को ललाट कहते हैं। ठीक नाक से नीचे मुँह और मुँह के अलग-बगल गाल हैं। मुँह ऊपर-नीचे के दो होंठों के मिलने से बन्द होता है और उनके अलग होने से खुलता है। ऊपर का होंठ ऊपर के जबड़े से लगा है और नीचे का होंठ नीचे के जबड़े से। फिर मुँह के अन्दर जबड़े से दाँत जड़े हैं। निचले होंठ के नीचे ठुड्डी (ठोड़ी) है। दाँतों की जड़ों को मसूड़े कहते हैं। ऊपर के दाँतों के पीछे तालू है, जिसका अगला भाग कड़ा और पिछला भाग मुलायम होता है। तालू के पीछे एक लटकती-सी वस्तु रहती है, जिसे **कौव्वा** या **अल्वा** (Uvula) कहते हैं। दाँतों के बीच में, विशेषकर निचले दाँतों के पीछे जीभ है। जीभ की जड़ के अगल-बगल दोनों ओर दो-दो मेहराबें हैं जिनके बीच में दोनों ओर दो छोटी-छोटी गुठलियाँ हैं। इन्हें गले की **टॉन्सिल** (Tonsil) कहते हैं। फिर इन टॉन्सिलों (Tonsils) के पीछे **ग्रसनी** (Pharynx) है। कंठ के ऊपर के भाग में मुलायम तालू के पीछे और ऊपर नाक के छेद या नथुने हैं। जीभ की जड़ के पीछे **श्वासनली** (Trachea), **स्वर-यंत्र** (Larynx) और उसके पीछे आहारनाल है। सिर में ही आंखों के पीछे की ओर कान हैं। कान और ललाट के बीच का भाग कनपटी है।

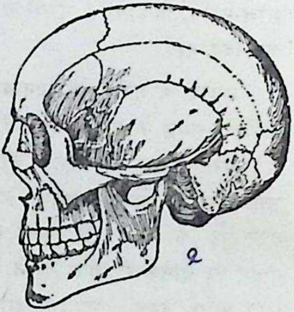

चित्र—१८ खोपड़ी

गर्दन—गर्दन के अन्दर बीच में स्वर-यंत्र है। फिर उससे लगी नीचे की ओर एक नली जिसे **टेंटुआ** (Trachea) कहते हैं। इसी नली से होकर हवा फेफड़ों में जाती है। टेंटुआ के पीछे आहारनाल है। गर्दन के पिछले भाग में ठीक बीचोबीच टटोलने से कड़ी मालूम होने वाली चीजें रीढ़ की हड्डियाँ हैं।

धड़—धड़ के दो भाग हैं—(१) छाती (वक्षस्थल) और (२) उदर

(पेट, पेड़ू)। इन भागों के वीच में मांस की एक चौड़ी पेशी (वक्ष-उदर) मध्यपट (Diaphragm) है, जो इन दोनों भागों को एक-दूसरे से अलग करता है।

छाती के भाग में एक हड्डी के पिंजड़े जैसा वना हुआ है। यह पिंजड़ा दोनों ओर की हँसली की हड्डियों (जत्रुक, Collar bone), दोनों ओर बाहर की पसलियों (शिरा, Ribs) और बीच की छाती की हड्डी (उरोस्थि, Sternum) से बना है। छाती के बाहरी भाग में सामने की ओर हँसली के नीचे और उसके कुछ दूर पर स्तन (Mammary glands) हैं। छाती के पिछले भाग को पीठ और पीठ के ऊपरी भाग में कन्धों के पास वाले कुछ ऊँचे भागों को अंसफलक (Scapula) कहते हैं। पीठ के बीचोबीच गर्दन की तरफ से आई और ऊपर से नीचे जाती हुई रीढ़ की हड्डियाँ मालूम होती हैं

छाती के अन्दर शरीर के मुख्य अंगों में तीन अंग हैं। इनमें से दो तो फेफड़े (फुप्फुस) हैं, जिनमें साँस ली हुई हवा आती है और रुधिर को साफ करती है एक फेफड़ा दाहिनी तरफ और दूसरा बाईं तरफ है। इन दोनों के बीच में हृदय है, जो सिकुड़ कर और ढीला होकर रुधिर को अपने से बाहर निकालता और सारे शरीर में पहुँचाता है।

यह तो हुई छाती के अन्दर के अंगों की बात। अब घड़ के निचले भाग उदर के अंगों को जानना है। उदर (Abdomen) के बाहरी भाग में सामने की ओर नाभि है और पीछे कमर। कमर के बीचोबीच टटोलने से रीढ़ की हड्डियाँ मालूम होती हैं। उदर के सबसे निचले भाग में पुरुष और स्त्री की पहचान के अंग होते हैं, जिनसे पेशाब भी किया जाता है। उदर के अन्दर भी कई बहुत आवश्यक अंग हैं—आमाशय (Stomach), यकृत (Liver), प्लीहा (Spleen), अग्न्याशय (Pancreas), वृक्क (Kidney) और आंत्र (Intestines)। इन अंगों का पूरा वर्णन आगे किया जायगा। यहां पर इतना ही कहा जा सकता है कि इनमें से कुछ अंगों से पाचक रस निकलते हैं, कुछ अंग पाचन-क्रिया करते हैं और कुछ मल-मूत्र के निकलने में सहायक होते हैं।

उदर का निचला भाग कमर की हड्डियों के घेरे के कारण एक कटोरे की तरह है, जिसे श्रोणि या श्रोणीय (Pelvis) कहते हैं। इस कटोरे में आंत्र के नीचे का भाग और मूत्राशय (Urinary bladder) है। इसी घिरे हुए भाग में वे अंग भी हैं जिनसे बच्चा उत्पन्न होता है। पुरुषों में मूत्राशय के पीछे शुक्राशय (Seminal vessicle) और स्त्रियों में उसी जगह बच्चे-दानी (गर्भाशय, Uterus) रहती है।

सिर और धड़ की बनावटों को देखते हुए कहना पड़ता है कि शरीर में कई गड्ढे (कोटर या गुहिका, Cavities) हैं और हर गड्ढे में शरीर के कई जरूरी अंग हैं। सिर के गड्ढे में दिमाग है, पीठ की तरफ के गड्ढे में रीढ़ है, पसलियों से बने छाती के गड्ढे में हृदय है और उदर के गड्ढे में आमाशय, यकृत इत्यादि अंग हैं। यह भी समझने की बात है कि जरूरी अंग अच्छे और सुरक्षित स्थान में पड़े हैं।

ऊपर नीचे की शाखाएँ—ऊपर की शाखाएँ दोनों भुजाएँ (हाथ) और नीचे की शाखाएँ दोनों टाँगें हैं। दाहिनी भुजा दाहिनी ओर और बायीं भुजा बायीं ओर है। भुजा का ऊपरी भाग, जो गर्दन के पास रहता है, कुछ उभरा हुआ, चौड़ा और मोटा होता है। उसे कन्धा (Shoulder) कहते हैं। उसी के नीचे भुजा का ऊपरी—ऊपर की बाहु (प्रगंड, Upper-arm) है। बाहु के नीचे कोहिनी (Elbow), कोहनी के नीचे आगे की बाँह या भुजा (प्रकोष्ठ, Fore-arm) और आगे की बाँह के नीचे हाथ (Hand) है। आगे की बाँह और हाथ के बीच के भाग को कलाई (Wrist) कहते हैं। हाथ के निचले मुलायम भाग को हथेली (Palm) कहते हैं। इससे लगी हुई पाँच अँगुली (Fingers) होती है। सबसे मोटी अँगुली अँगूठा है। अँगूठा के पास तर्जनी है। सबसे छोटी अँगुली कनिष्ठिका और उसके पास वाली अनामिका कहलाती है। प्रायः इसी में अँगूठी पहनी जाती है। बीच वाली अँगुली का नाम मध्यमा है। हर अँगुली में कुछ गाँठें होती हैं, वहाँ से अँगुली मुड़ती है। इनके

बीच के भाग को पोर या पोवे कहते हैं। अँगूठे में दो पोर और बाकी सब अँगुलियों में तीन-तीन पोरें होती हैं। कन्धे के नीचे बाहु और छाती के बीच के गड्ढे को बगली कहते हैं।

बहुत कुछ इसी तरह नीचे की शाखाएँ भी हैं। उदर के नीचे दोनों ओर लटकती हुई टाँग के ऊपरी भाग को, जो उदर और घुटने (Knee) के बीच होता है, **जाँघ** (उरु, Thigh) कहते हैं। जाँघ उदर पर ऊपर को मुड़ सकती है। जाँघ का पिछला भाग कूल्हा (श्रोणि, Hip) है। घुटने के नीचे असली टाँग है। टाँग के नीचे पैर (पाद, Foot) है। टाँग और पैर के बीच के भाग को **टखना या गुल्फ** (Ankle) कहते है। टखने के सहारे पैर आगे-पीछे को मुड़ता है। पैर का निचला भाग **तलवा** (तली, Sole) कहलाता है और हाथ की तरह, इसमें भी पाँच **पादांगुली** (Toes) हैं। पैर की सब अँगुलियाँ अंग्रेजी में **टो** (Toe) कहलाती हैं।

शरीर के अंगों का काम—ऊपर की बातों को पढ़ने से अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि शरीर की सब आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शरीर में प्रबन्ध है। शरीर की पुष्टि और जीवन के लिए सभी अंगों में रुधिर पहुँचाने का प्रबन्ध है। खाए हुए भोजन से रुधिर बनता है। भोजन के पचाने के लिए आमाशय, यकृत, अग्न्याशय इत्यादि अंग अपना-अपना काम करते हैं। फिर उनसे बने रुधिर को सारे शरीर में पहुँचाने के लिए हृदय दिन-रात परिश्रम करता है। रुधिर सारे शरीर का चक्कर लगाकर साफ होने के लिए फेफड़ों में लौट आता है। यहाँ साँस के साथ ली हुई वायु के ऑक्सीजन (Oxygen) से मिलकर रुधिर साफ होता है और हृदय में आता है, फिर यहाँ से सारे शरीर में भेजा जाता है। रुधिर के विकार बाहर निकलती हुई साँस के साथ बाहर फेंक दिए जाते हैं। फुप्फुस में ऑक्सीजन से मिलकर रुधिर के विकारों के जल जाने को ऑक्सीकरण (Oxidation) कहते हैं। पूर्णरूप से ऑक्सीकरण हो जाने पर शरीर में किसी तरह का विकार नहीं रहता। रुधिर के बनते समय और उसके पहले-पहल हृदय में जाते समय भी उसकी सफाई होती है और उस

समय जो विकार निकलता है वह बहुत कुछ मूत्र के रूप में बह कर निकल जाता है। फिर भोजन का जो भाग पचने लायक नहीं होता वह आंत्र के द्वारा मल के रूप में निकल जाता है। मांस पेशियों के अन्दर का विकार ऊपरी त्वचा द्वारा पसीने के रूप में निकल जाता है। इस तरह यह साफ समझ में आ जाता है कि शरीर के बने रहने के लिए उसके अन्दर के सब विकारों को बाहर निकाल कर उसको साफ रखने का पूरा-पूरा प्रबन्ध शरीर में है। इन्हीं दो बातों अर्थात् (१) पुष्टि और (२) सफाई पर शरीर का जीवन तथा अच्छाई (स्वास्थ्य) निर्भर है। शरीर की आन्तरिक क्रियाओं के सम्बन्ध में सभी आवश्यक बातें आगे बताई जायँगी।

शरीर के कामों को कौन संचालित करता है?—यह भी सोचने की बात है कि शरीर के अन्दर जो इतने प्रकार के काम दिन-रात होते रहते हैं उनको कौन संचालित करता है। किसकी आज्ञा से सभी अंग अपना-अपना काम करते हैं? यह संचालन-क्रिया तन्त्रिका-तन्त्र द्वारा होती है। तन्त्रिका (Nerves) का प्रधान केन्द्र मस्तिष्क है और उसी का फैलाव रीढ़ के अन्दर पड़ी हुई रीढ़-रज्जु (Spinal cord) से है। रीढ़-रज्जु से निकलते हुए तन्त्रिका-जालक (Nerve plexes) सारे शरीर में फैले हैं। वे प्रधान केन्द्र की आज्ञा सभी अंगों तक पहुँचाते और बाहर से आई हुई सूचनाओं को प्रधान केन्द्र में भेजते हैं। इस तरह संचालन का काम भी बहुत अच्छाई के साथ चलता रहता है।

इन सब बातों से पता चलता है कि शरीर सभी तरह भरा-पूरा और अपना काम स्वतः ही चला लेने के योग्य है।

शरीर के तन्त्र

शरीर की तुलना हमने एक घर से की है, परन्तु एक कोठरी वाले घर से नहीं, वरन् राजभवन से, जिसका कार्य एक छोटे-मोटे नगर के समान सुव्यवस्थित रहता है जिसमें एक चहारदीवारी के अन्दर अनेक विभाग और उन

विभागों के कार्य-प्रवन्ध के लिए पूर्ण व्यवस्था रहती है। शरीर में **रुधिर परिसंचरण** (खून का दौरा, Circulation of blood) और उसके पोषण का प्रवन्ध है। पाखाना, पेशाव और पसीना निकालने की क्रिया आदि सफाई

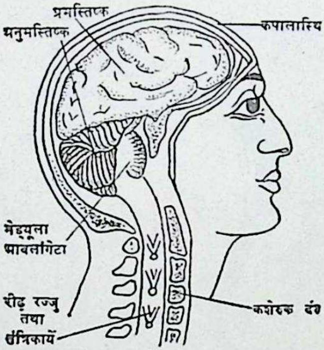

चित्र १९—मनुष्य का मस्तिष्क तथा रीढ़-रज्जु

के प्रवन्ध हैं। हवा का प्रवन्ध है, जिससे साँस के साथ जीवन-रक्षा के पदार्थ शरीर के अन्दर पहुँचते हैं और निकलती हुई हवा के साथ शरीर के अन्दर का कुछ विकार भी निकलता है। शरीर पर बाहरी संसार के सम्पर्क (लगाव) के समाचारों को मस्तिष्क तक पहुँचाने के लिए और मस्तिष्क की आज्ञा लौटा लाने के लिए तन्त्रिकाओं का प्रवन्ध है। भोजन जिससे रुधिर तैयार होता है, को पचाने का प्रवन्ध है। शरीर को सीधा रखने के लिए हड्डी, ठठरी का प्रवन्ध है और इस ठठरी को ढकने, उसकी हड्डियों को स्थान-स्थान पर जुड़ी रखने और उनको घुमाने-फिराने के लिए पेशियों (Muscles) का प्रवन्ध है। इन प्रवन्धों में से हर प्रवन्ध को पूरा करने के लिए कुछ अवयवों (अंग, Organs) के अलग-अलग समूह हैं। एक-एक अंग-समूह को तन्त्र (प्रणाली, System) कहते हैं। ऊपर बताए सभी प्रवन्धों को अच्छी तरह पूरा करने के लिए शरीर

में मुख्य ८ तन्त्र हैं। शरीर के बाहरी भाग से अन्दर की ओर चलते हुए तन्त्रों के नाम ये हैं :—

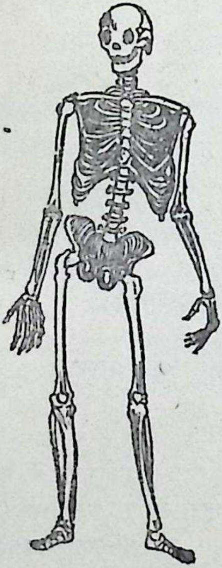

चित्र २०—कंकाल तन्त्र

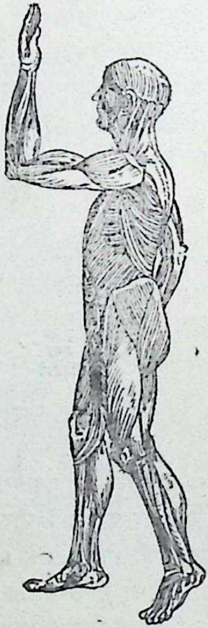

चित्र २१—पेशी तन्त्र

(१) कंकाल तन्त्र या अस्थि तन्त्र (The Skeleton or Bony System)—इनमें हड्डियों की ठठरी और उसके जोड़ हैं।

(२) पेशी तन्त्र (Muscular System)—इसमें मांस-पेशियाँ (पुट्ठे, Muscles) हैं।

(३) पाचक तन्त्र (The Digestive System)—इस तन्त्र के अंगों द्वारा हम भोजन शरीर के अन्दर ले जाते हैं और उसे पचाते हैं। इसके अंग

हैं—आमाशय, (छुद्रांत्र, वृहत् आंत्र, यकृत,) इत्यादि। मल त्याग का प्रबन्ध (बड़ी आँत द्वारा) इसी तन्त्र के अंग हैं।

(४) रुधिर परिसंचरण तन्त्र (The Blood Circulatory System)—हृदय और रुधिर ले जाने वाली नलियाँ इस तन्त्र के अंग हैं।

(५) श्वसन तन्त्र (The Respiratory System)—इस तन्त्र में वे अंग हैं जिनसे हम साँस लेते, वायु के प्रभाव को रुधिर में डालते और अन्दर की कुछ गन्दगी को वायु के द्वारा बाहर निकालते हैं। ये अंग हैं फुप्फुस इत्यादि।

(६) उत्सर्जन तन्त्र (The Excretory System)—शरीर का बहुत-सा विकार रुधिर अपने अन्दर पहुँचाता रहता है। जब रुधिर अपने दौरान में वृक्क (Kidneys) में आता है तो वृक्क उस विकार को निकाल कर मूत्राशय (Urinary bladder) में पहुँचा देते हैं और वह मूत्र रूप में शरीर के बाहर फेंक दिया जाता है। इस तन्त्र के अङ्ग हैं—वृक्क, मूत्राशय इत्यादि।

(७) तन्त्रिका तन्त्र (The Nervous System)—जैसा ऊपर बताया गया है, बाहरी संसार के समाचार मस्तिष्क तक तन्त्रिकाओं द्वारा पहुँचते हैं और मस्तिष्क भी अपनी आज्ञाएँ इसी तरह के तारों द्वारा भिन्न-भिन्न अङ्गों को भेजता रहता है। यह तन्त्र शरीर का एक बहुत आवश्यक भाग है और इसके अङ्ग हैं—मस्तिष्क, रीढ़-रज्जु (रीढ़ की हड्डियों में सुरक्षित मुख्य तन्त्रिका Spinal cord) और शरीर में फैले हुए तन्त्रिका-जाल।

(८) जनन तन्त्र (The Reproductive System)—यह वह तन्त्र है, जिसके द्वारा सन्तान उत्पन्न की जाती है। हर पौध और जानवर की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपनी ही तरह दूसरा जीव उत्पन्न करता है, उससे सृष्टि बढ़ती है और संसार में तरह-तरह के जीव पाये जाते हैं। इस तन्त्र के अङ्ग पुरुषों में दूसरे और स्त्रियों में दूसरे हैं। दोनों से निकले हुए छोटे-छोटे अंशों के मिलने से एक तीसरा व्यक्ति या जीव तैयार हो जाता है।

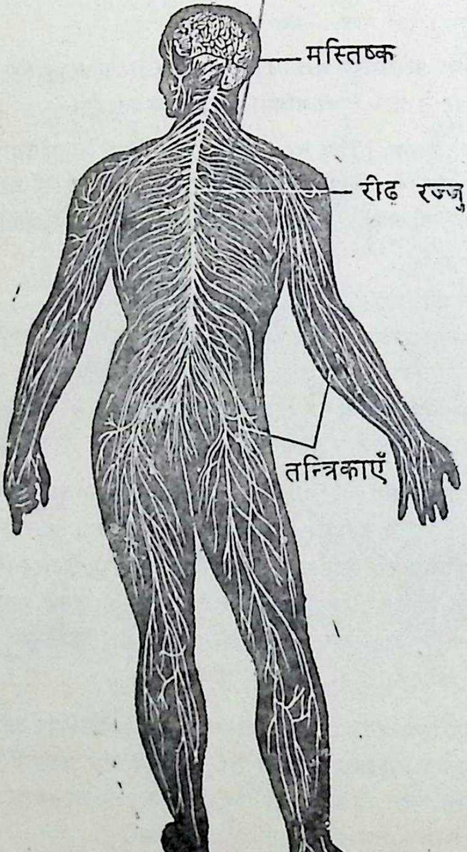

चित्र २२—शरीर का तन्त्रिका-तन्त्र

यह विषय वहुत वड़ा है और इस छोटी-सी पुस्तक के अन्दर अच्छी तरह नहीं समझाया जा सकता, पर आशा की जाती है कि हर मनुष्य और वालक-बालिकाएँ बढ़ने पर इस विषय को अच्छी तरह जानने की चेष्टा करेंगी।

पीछे वताये आठ तन्त्रों के अतिरिक्त शरीर में कुछ ऐसी इन्द्रियाँ भी हैं जिनसे आदमी को विशेष रूप से वाहरी ज्ञान प्राप्त होता है। इन्हें **ज्ञानेन्द्रियाँ** (Sense organs) कहते हैं और ये हैं आँख या नेत्र (देखने के लिए), कान या कर्ण (सुनने के लिए), त्वचा (छूना या छूआ जाना अनुभव करने के लिए), नाक, नास या नासिका (सूंघने के लिए) और जीभ या जिह्वा (चखने के लिए)।

एक दूसरी दृष्टि से शरीर की बनावट—ऊपर बताई गई वातों से यह स्पष्ट है कि शरीर बहुत से अंगों का समूह है। प्रत्येक अंग ऊतकों से बना है और ऊतक कोशिकाओं से निर्मित हुए हैं, किन्तु शरीर की वनावट के सम्वन्ध में एक दूसरा दृष्टिकोण भी है। वह दृष्टिकोण रसायन-शास्त्र के जानने वालों का है। रसायन-शास्त्र के जानने वाले कहते हैं कि मनुष्य का शरीर बहुत-से रासायनिक पदार्थों से बना है। साधारणतः वे पदार्थ ये हैं—

आॅक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, कार्वन, कैल्सियम (चूना), फॉस्फोरस, सल्फर (गन्वक), क्लोरीन, पोटैशियम, सोडियम, मैग्नेशियम और आयरन (लोहा)। शरीर में सबसे ज्यादा मात्रा में ऑक्सीजन, उससे कम कार्वन, उससे कम हाइड्रोजन, हाइड्रोजन से कम नाइट्रोजन। नाइट्रोजन को छोड़ कर वाकी सव पदार्थ बहुत कम मात्रा में पाये जाते हैं। ऊपर वताये इन पदार्थों में से कभी कुछ और कभी कुछ आपस में मिल-जुल कर विशेष पदार्थ वनाते हैं और ये ही विशेष पदार्थ शरीर में पाये जाते हैं।

एक बात स्पष्ट है कि शरीर में जो कुछ विशेष पदार्थ पाये जाते हैं, वे सभी खाये हुए पदार्थों से वनते हैं। कुछ विशेष पदार्थों से शरीर में गर्मी

उत्पन्न होती है, जिससे काम करने की शक्ति प्राप्त होती है और कुछ से मांस-पेशियों के बनने में सहारा मिलता है। आवश्यक यह है कि खाने-पीने के विषय में बचपन से ही सावधानी बरती जाय, जिससे शरीर के अन्दर शुद्ध स्वच्छ, रखने और बढ़ाने वाले पदार्थ पहुँचें और शरीर के ऊतक और कोशिकाएँ अच्छी स्थिति में रहें।

प्रश्न

१—शरीर में कितने तन्त्र होते हैं ? प्रत्येक के सामहिक अङ्गों का नाम लिखो।

२—शरीर के कितने मुख्य भाग हैं ? उनके अन्तर्गत भागों का नाम लिखो।

३—शरीर कितने प्रकार के ऊतकों से बना है ? उनका वर्णन करो।

४—कोशिका किसे कहते हैं और कितने प्रकार के होते हैं ? उनकी बनावट तथा उनके लक्षणों का वर्णन करो।

———

अध्याय २

कंकाल-तन्त्र (अस्थिपंजर-तंत्र)

(THE SKELETON OR BONY SYSTEM)

सामान्य परिचय

यदि हम शरीर की त्वचा, मांस, पुट्ठे इत्यादि सबको काट-छांट कर निकाल दें तो हड्डियाँ दीख पड़ेंगी। वैसे भी यदि शरीर के किसी भी भाग को टटोला जाय तो त्वचा के नीचे मांस और मांस के नीचे हड्डियाँ मिलेंगी, किन्तु सारे शरीर के ऊपर से त्वचा, मांस और ऊतकों को अलग कर देने से हड्डियों की बनी एक ठठरी रह जायगी, जो देखने में बहुत डरावनी मालूम होगी। यह ठठरी शरीर का ढांचा है, जिसके सहारे शरीर, जैसा कि हम देखते हैं, सधा रहता है। इस ढांचे को कंकाल या अस्थिपंजर (Skeleton) भी कहते हैं और इसके टुकड़ों को हड्डियाँ या अस्थि।

हड्डियों का ढांचा शरीर को साधे तो रहता है, पर ऐसा नहीं है कि किसी मकान की ठठरी की तरह बिल्कुल सीधा और अचल हो। शरीर के ढांचे में यही विशेषता है कि वह जगह-जगह पर मुड़ता है, जिससे हम विशेष-विशेष अंगों को इच्छानुसार मोड़ और घुमा सकते हैं। यदि यह ढांचा ऊपर से नीचे तक बिल्कुल ही कठोर और अचल होता तो न तो अंगुलियाँ उठतीं, न हाथ घूमते, न पैर खिसकते और न गर्दन मुड़ती। किन्तु ऐसा नहीं है। यह ढांचा सख्त है सही, फिर भी ऐसा बना है कि कई जगहों से मुड़ सकता है।

ढांचे की विशेषता—इस ढांचे की मजबूती और स्थान-स्थान का लचीलापन दोनों सराहनीय और आश्चर्य में डालने वाले हैं। हम जानते

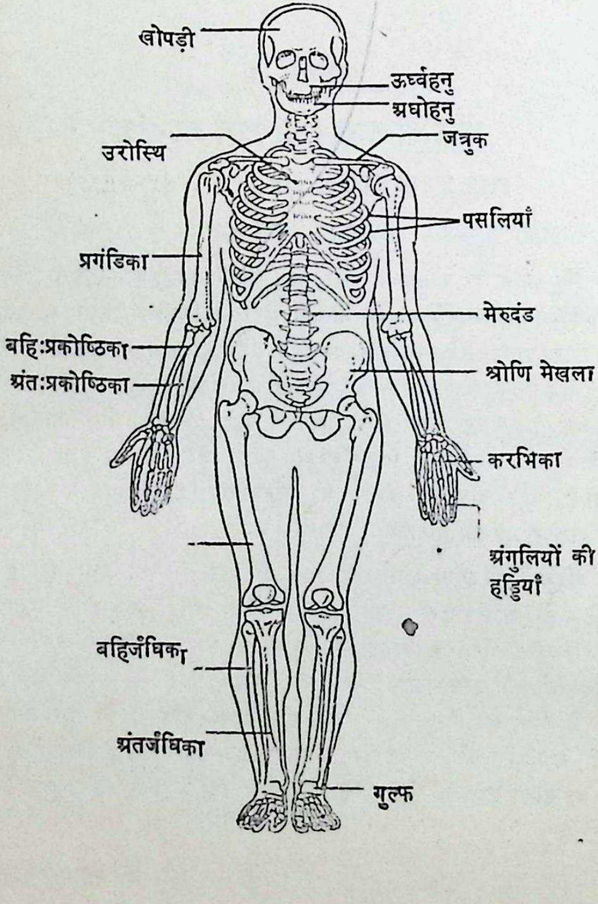

चित्र २३—शरीर के अन्दर हड्डियों का ढाँचा

हैं कि राममूर्ति, ताराबाई जैसे बलशाली पुरुष या स्त्री अपनी छाती पर हाथी खड़ा करते थे और आदमियों से लदी गाड़ियों को निकलवाते थे। यह तभी हो सकता है जब कि शरीर के अन्दर की हड्डियां स्वभावतः बहुत अधिक मजबूत हों या व्यायाम इत्यादि से उनमें इतनी सहनशक्ति आ जाय कि हाथी के बोझ से भी वे न टूटें। हम यह भी जानते हैं कि खेल-तमाशे दिखाने वाले नट या सरकस में काम करने वाले लड़के-लड़कियाँ अपने शरीर को प्रायः तोड़-मरोड़ कर इस तरह बना लेते हैं मानो शरीर में हड्डी है ही नहीं। यही ढाँचे की विशेषता है। यह दृढ़ भी है और लोचदार भी।

बहुत-सी हड्डियाँ क्यों हैं ?--हमें यह मालूम है कि हड्डियों को ठठरी सिर से लेकर पैर तक फैली है, जिसका अर्थ है कि शरीर में बहुत-सी हड्डियाँ हैं। सारे शरीर में सब मिला कर तो बहुत-सी हड्डियाँ हैं ही, एक-एक अङ्ग में भी कई हड्डियाँ हैं। अलग-अलग हड्डियाँ मिलकर उस अङ्ग के संचालन या उसके काम के पूरा होने में सहायक होती हैं। एक एक अङ्ग के बनाने में भी कई हड्डियों के सहयोग का कारण है। यदि एक ही अङ्ग में एक ही हड्डी रहती और चोट-चपेट से वह टूट जाती, तो वह अङ्ग बिल्कुल बेकार हो जाता। कई हड्डियों के रहने से जब किसी विशेष भाग या हड्डी में चोट लगती है तो उसमें तकलीफ तो रहती है, पर सारा अंग बेकार नहीं हो जाता। फिर उचित उपायों से उस हड्डी के जुड़ जाने या ठीक हो जाने से वह अंग ज्यों का त्यों हो जाता है।

सारे शरीर में कई हड्डियों के रहने का एक और कारण भी है। उससे सारे ढाँचे को मजबूती भी मिलती है और भिन्न-भिन्न अंग अपने-अपने क्षेत्र और स्तर के काम एक साथ कर सकते हैं। इस ढांचे के भाग एक-दूसरे से जोड़ों या **सन्धियों** (Joints) के सहारे जुटे हुए हैं, इसलिए ढाँचा एक ही बड़ी हड्डी के बने ढांचे से कहीं अधिक मजबूत है।

हड्डियाँ क्या करती हैं ?—अब हम जानने की चेष्टा करेंगे कि हड्डियों के बने इस ढांचे का क्या काम है ?

हम पढ़ चुके हैं कि इस ढांचे से शरीर सधा रहता है और उसके आकार में गड़बड़ी नहीं होती। यदि शरीर में हड्डियाँ और पेशियाँ न होतीं तो वह सीधा खड़ा नहीं हो सकता और न उनमें बल ही रहता। वह तो इस ढांचे का एक बहुत आवश्यक काम है, किन्तु इसके अतिरिक्त दो और काम हैं, जो कम आवश्यक नहीं है।

कई हड्डियों के मिल जाने से शरीर में कई जगह खाने या पिंजड़े-से बन गए हैं, जिन्हें हम कोष्ठ या कोटर कह सकते हैं। इन कोष्ठों में शरीर के कई आवश्यक अंग पड़े हैं. जैसे खोपड़ी के कोष्ठ में मस्तिष्क है, छाती के कोष्ठ में हृदय और फुप्फुस है। हड्डी के बने मजबूत कोटरों या कोष्ठों में पड़े रहने से ये अंग सुरक्षित रहते हैं। यदि ऐसा न हो तो ये अंग बात की बात में टूट-फूट या कट जायँ और शरीर बिल्कुल बेकार हो जाय।

हड्डियों का तीसरा काम यह है कि कई स्थान पर पेशियों (Muscles) से जुटी रहने के कारण वे शरीर के चाल (गति) पैदा करती हैं। हम आगे पढ़ेंगे कि पेशियाँ हड्डियों से लगी हैं और जब भी पेशियाँ फैलती-सिकुड़ती हैं, शरीर क्रिया करता है, हिलता-डुलता और मुड़ता है। यदि शरीर में केवल पेशियाँ ही हों तो शरीर एक मांस का लोथड़ा जैसा बेकार हो जाय।

हड्डियों का चौथा कार्य यह है कि अस्थि-मज्जा (Bone marrow) से लाल रुधिर कण व एक तरह के श्वेत रुधिर कण बनते हैं।

ढाँचे के तीन मुख्य विभाग—यदि हम हड्डियों के ढांचे को बाहर से अच्छी तरह देखें तो पता चलेगा कि इसमें तीन मुख्य विभाग हैं।

सबसे पहला भाग खोपड़ी (Skull) है। इस खोपड़ी के मजबूत कोष्ठ में शरीर का सबसे आवश्यक अंग मस्तिष्क है। इसी भाग में चेहरे की हड्डियाँ भी हैं, जिनके गड्डों में आँखें और नाक स्थित हैं और निचले भाग में जबड़े हैं, जिनमें दाँत लगे हुए हैं।

दूसरा भाग धड़ (Trunk) है, जिसके बीच में मेरुदंड (Vertebral column) है। मेरुदंड गर्दन से लेकर कमर तक लम्बी-लम्बी फैली है। इसमें कई

हड्डियाँ हैं, जो एक-दूसरे पर रखी-सी हैं। यह मेरुदंड शरीर में पड़े एक बहुत आवश्यक खम्भे की तरह है, इससे ढाँचे के अन्य भाग किसी न किसी तरह लगे हुए हैं। यह जरा रोचक विषय है और हम संक्षेप में समझाने की चेष्टा करेंगे कि अन्य अंग मेरुदंड से किस तरह लगे हैं। देखो, मेरुदंड के ऊपर खोपड़ी रखी है। फिर इसकी हड्डियों से जुड़ी पसलियाँ हैं, जो छाती के चारों ओर फैलती हुई सामने की छाती की हड्डी (उरोस्थि, Sternum) से जुड़ी हैं। इस तरह हड्डियों का एक पिंजड़ा-सा बन गया है, जिसके अन्दर हृदय और फुप्फुस है। पसलियों के ऊपर सामने की ओर हँसलियाँ (जत्रुक, Clavicle or Collar bones) और पीठ की तरफ खवे (स्कंधास्थि, Shoulder blades or Scapula) मेरुदंड से लगे हैं। इन्हीं चीजों से भुजाओं की हड्डियाँ लटकती हैं। मेरुदंड के निचले भाग से कूल्हे की हड्डियाँ (श्रोणिमेखला, Hip bones) जुड़ी हुई हैं। इन हड्डियों के बने खोखले में पाचक तंत्र और आंत्र पड़ी हैं और इन्हीं हड्डियों के दोनों ओर टाँगों की हड्डियाँ लगी हुई हैं। फिर मेरुदंड की हड्डियों के खोखले में मस्तिष्क से लेकर नीचे तक रीढ़-रज्जु (मुख्य तन्त्रिका) पड़ी हुई है, जिससे तन्त्रिकाएं (Nerves) निकल कर शरीर में फैली हुई हैं। इस तरह हमने देख लिया कि मेरुदंड की हड्डियों से न केवल खोपड़ी, भुजाओं (Arm) और टाँगों (Leg) की हड्डियाँ जुड़ी हैं, बल्कि किसी तरह खोपड़ी, फुप्फुस, पाचक तंत्र और आंत्र जैसे अंग भी सम्बन्धित हैं। मेरुदंड से ही नाड़ियाँ भी सम्बन्ध रखती हैं। सचमुच मेरुदंड शरीर का आधार है।

ढांचे का तीसरा भाग ऊपर और नीचे के अंग अग्रांग अंग (ऊर्ध्वपाद या अधरपाद, Upper and lower extremities; limbs) हैं। ऊपर के अंग भुजाएँ हैं और नीचे के अंग पाद (Foot) इनकी हड्डियाँ ढांचे का तीसरा भाग है। इन्हीं दो अंगों के सहारे हम संसार में काम-काज करते और चलते फिरते हैं।

ऊपर बताये गए ढांचे के तीन मुख्य विभागों का सविस्तार वर्णन आगे किया जायगा।

हड्डियों की संख्या—शरीर के ढांचे में सब मिलकर २०६ हड्डियाँ हैं। वे सारे शरीर में इस तरह बँटी हैं—

(१) खोपड़ी—ऊपर के भाग में ८, चेहरे में १४—कुल २२।

(२) मेरुदंड—ऊपर से अनुत्रिक कशेरुक (Coccygeal vertebra) तक इसके पाँच भाग हैं। पहले तीन भागों में २४ हड्डियाँ हैं। चौथे और पाँचवें को यद्यपि उनमें (५+४) ९ छोटी हड्डियाँ हैं, पूरी-पूरी २ हड्डियाँ मानते हैं। इस तरह मेरुदंड में २६ हड्डियाँ हैं।

(३) ऊपर के अंग: ऊर्ध्वपाद (Upper limb)—हर पाद में ३२ हड्डियाँ हैं, इसलिए दोनों में ६४ हुईं।

(४) नीचे के अंग: अधरपाद (Lower limb)—हर पाद में ३१ हड्डियाँ हैं, इसलिए दोनों में ६२ हुईं।

(५) छाती में—२५।

ये १९९ हड्डियाँ हुईं। इनके अलावा गर्दन में (स्वर-यंत्र) और (ठोढ़ी के बीच) एक हड्डी और दोनों कानों में (३+३) ६ हड्डियाँ हैं। इस तरह कुल मिलाकर सारे शरीर में २०६ हड्डियाँ हैं।

बच्चों और जवानों की हड्डियों में कुछ भेद—जवानों की अपेक्षा बच्चे के शरीर में हड्डियों की संख्या कुछ अधिक होती है। ऊपर बताया गया है कि खोपड़ी में २२ हड्डियाँ होती हैं। यह जवान आदमियों की खोपड़ी का हाल है। बहुत छोटे बच्चे की खोपड़ी में अधिक हड्डियाँ होती हैं। इसका कारण यह है कि बच्चे की खोपड़ी धीरे-धीरे बढ़ती है और उसके अन्दर रखा हुआ मस्तिष्क भी बढ़ता और फैलता है जब बच्चा बड़ा होता है तो कई छोटी-छोटी हड्डियाँ जुड़ जाती हैं और आगे चलकर २२ ही रहती हैं।

यही हाल मेरुदंड के निचले भागों का है ऊपर कहा गया है कि मेरुदंड के पाँच भाग हैं। बचपन में इनमें से दो निचले भागों में एक में ५ और दूसरे में ४ हड्डियाँ अलग-अलग रहती है। आयु बढ़ने पर इन दोनों भागों की

छोटी-छोटी हड्डियाँ जुड़ जाती हैं, जिससे उन दोनों भागों में दो ही हड्डियाँ रह जाती हैं।

दूसरा भेद यह है कि जवानों की हड्डियाँ बच्चों की हड्डियों की अपेक्षा कड़ी होती हैं। जवानों की हड्डियों में कैल्सियम, फॉस्फेट और कैल्सियम कार्बोनेट (चूने के दो लवण) के दो-तिहाई भाग होते हैं और जिलैटीन नामक पदार्थ का एक-तिहाई भाग। जिलैटीन से हड्डियों में लचीलापन आता है। बच्चों की हड्डियों में जिलैटीन की ही मात्रा बहुत ज्यादा रहती है। इसी से बच्चों की हड्डियाँ लचीली होती हैं और जल्दी टूटती नहीं। वृद्धों की हड्डियों में जिलैटीन की मात्रा बहुत कम रहती है, जिससे उनका लचीलापन जाता रहता है और वे चटकीली हो जाती हैं।

स्त्रियों के शरीर का ढाँचा--जितनी हड्डियाँ पुरुषों के शरीर में होती हैं उतनी ही स्त्रियों के शरीर में होती हैं, पर बनावट में, विशेषकर कूल्हे या श्रोणी (Hip) की हड्डियों की बनावट में, अन्तर रहता है।

हड्डियों का आकार-प्रकार और उनकी बनावट--हड्डियों की बनावट और उनके आकार अलग-अलग हैं। कुछ हड्डियाँ चपटी हैं और कुछ गोलाकार। खोपड़ी या कपाल (Cranium) और छाती या उरोस्थि (Sternum) की हड्डियाँ चपटी हैं। खवे की हड्डी या अंसफलक (Scapula) भी चपटी है। चपटी हड्डी वहीं है, जहाँ अन्दर के आवश्यक यंत्रों की रक्षा की आवश्यकता है। हम जानते हैं कि खोपड़ी (Skull) के अन्दर मस्तिष्क शरीर का सबसे आवश्यक अग्रांग (Extremities) है। इसलिए उसकी रक्षा के लिए खोपड़ी की हड्डी चपटी है। जिन हड्डियों से बहुत-सी पेशियाँ (Muscles) लगी होती हैं, वे भी चपटी होती हैं। कन्धे की हड्डी ऐसी ही है, उससे बहुत-सी पेशियाँ जुड़ी हैं।

भुजाओं और टाँगों की हड्डियाँ लम्बी, गोल और खोखली हैं। ऐसी हड्डियाँ लम्बी तो हैं, पर पोली रहने के कारण हल्की होती हैं और यह आवश्यक है। यदि वे हल्की न हों तो पेशियाँ उन्हें चला-फिरा न सकें।

चपटी और लम्बी हड्डियों के अतिरिक्त कुछ हड्डियाँ छोटी होती हैं, जैसे कलाई की हड्डियाँ ।

कुछ हड्डियाँ ऐसी हैं जिनकी गिनती न तो चपटी हड्डियों में हो सकती है और न लम्बी में । उनका आकार कुछ उभरा, टेढ़ा-मेढ़ा-सा होता है । मेरुदंड की अलग-अलग हड्डियाँ इस तरह की हैं ।

हड्डियों का स्वास्थ्य—बहुत से लोग कहते हैं कि हड्डियाँ ज्यों की त्यों बनी रहती हैं । न तो उनका अपना स्वास्थ्य है और न शरीर के स्वास्थ्य से उनका कोई सम्बन्ध है । किन्तु ऐसा समझना भूल है । तह तो हम जान चुके हैं कि जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता है उसकी हड्डियाँ भी बढ़ती और मजबूत होती हैं । हम यह भी जानते हैं कि जिस तरह शरीर के अन्दर का मांस बहुत-सी कोशिकाओं (Cells) से बना है उसी तरह हड्डियाँ भी कोशिकाओं से बनी हैं । ये कोशिकाएँ बराबर ही बनती, बढ़ती, छीजती, नष्ट होती और बनती रहती हैं । इन कोशिकाओं के बनने और बिगड़ने में भोजन, व्यायाम और आराम का बहुत हाथ रहता है । उचित भोजन और जरूरत भर व्यायाम और आराम से इन कोशिकाओं की बनावट और आकार-प्रकार में उन्नति होती है और इससे सारे शरीर की उन्नति होती है । इसलिए यह समझने की बात हैं कि जिस तरह मांस या तन्त्रिका ऊतक की उन्नति हो सकती है उसी तरह हड्डियों का स्वास्थ्य भी अच्छा हो सकता है । उचित आहार-विहार करने वाला आदमी जल्दी रोगी नहीं होता और दीर्घायु होता है ।

खोपड़ी की हड्डियाँ

खोपड़ी (Skull) गुम्बद के समान उभरी हुई कुछ चपटी, कुछ गोल अंडे के आकार की होती है । इसके दो भाग किए जा सकते हैं—(१) कपाल (Cranium or brain box) और (२) चेहरे के बनाने वली हड्डियाँ । पहले भाग में ८ और दूसरे में १४ हड्डियाँ हैं । इस तरह खोपड़ी में कुल २२ हड्डियाँ हुइं ।

इन हड्डियों में से २१ आपस में इस तरह जुड़ी हैं कि वे किसी तरह भी खिसक या टल नहीं सकती । हर हड्डी के किनारे पर, जहाँ वह

दूसरी हड्डी से मिलती है, आरी के दाँतों की तरह दांत बने हैं। एक हड्डी के दांत दूसरी हड्डी के दाँतों में घँस कर इस तरह बैठ जाते हैं कि दोनों हड्डियां मजबूती से जुड़ जाती हैं। इस तरह इक्कीसों हड्डियां एक-दूसरे से अच्छी तरह जुड़ी हैं । केवल एक हड्डी, जो ढीली जुड़ी है और इधर-उधर चलती रहती है, वह नीचे के जबड़े की हड्डी है।

मस्तिष्क का डिब्बा—इसको बनाने वाली ८ हड्डियां इस तरह हैं—
१ सामने की हड्डी (**ललाटिका अस्थि,** frontal bone) जिससे माथा या मस्तक बनता है ।

इसके पीछे कपाल की छत में २ चौड़ी और चपटी हड्डियां एक दाहिनी तरफ और दूसरी बाइं तरफ हैं। इनको खोपड़ी के अगल-वगल की हड्डियां (**पार्श्विका अस्थि,** parietal bones) कहते हैं । इन हड्डियों से खोपड़ी की छत और अगल-वगल के अधिक भाग बनते हैं और ये सिर की गोलाई के अनुसार दोनों ओर मुड़ी रहती है ।

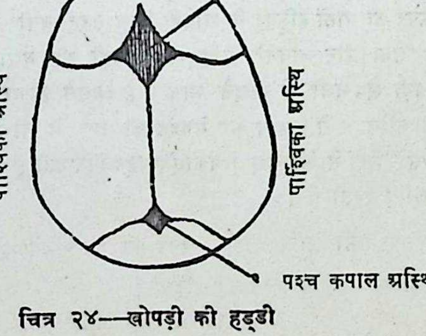

चित्र २४—खोपड़ी की हड्डी

खोपड़ी के पीछे की तरफ एक हड्डी है, जिसका नाम खोपड़ी के पीछे की हड्डी (**पश्च कपाल अस्थि,** occipital bone) है।

अगल-बगल की हड्डियों के नीचे दोनों तरफ हड्डियाँ हैं जिन्हें कनपटी की हड्डियाँ (शंखास्थि, temporal bone) कहते हैं। कान के दोनों तरफ के छेद इन्हीं हड्डियों में होते हैं। कान के छेदों के पीछे इन हड्डियों में आगे को निकले हुए भाग हैं, जिनके सामने के भागों में गड्ढे हैं। इन गड्ढों में हिलने-डुलने वाले जबड़े के दोनों ऊपरी किनारे अच्छी तरह बैठे लगे हुए हैं।

ऊपर बताई गई छः हड्डियों से खोपड़ी का अधिक भाग बन जाता है। जो भाग बचा रहता है उसका कुछ भाग तितली के आकार की हड्डी (जतुक अस्थि, sphenoid bone) से भरता है। यह हड्डी पीछे की तरफ पीछे की हड्डी से अगल-बगल में अगल-बगल वाली हड्डियों से और खोपड़ी की दूसरी-दूसरी हड्डियों से जुड़ी रहती है।

थोड़ा-सा बचा हुआ भाग एक और हड्डी से भरता है जिसे छेदों वाली हड्डी (झर्झरिका अस्थि, ethmoid bone) कहते हैं। इस हड्डी का पिछला भाग तितली के आकार की हड्डी से मिला रहता है। इसमें चलनी की तरह बहुत से छेद होते हैं, जिनसे होकर नाड़ी के बहुत पतले-पतले ऊतक नाक के अन्दर जाते हैं।

ऊपर की आठों हड्डियों से खोपड़ी किस तरह बनी है, यह अब मालूम हो गया। इतना और जानना चाहिए की खोपड़ी की नली में बहुत से छेद हैं। सबसे बड़ा छेद नली के पिछले भाग में है जिसमे होकर रीढ़-रज्जु (spinal cord) मस्तिष्क से निकल कर मेरुदंड की नली में नीचे की ओर जाती है। दूसरे-दूसरे छेदों से भी कुछ तंत्रिकाएँ बाहर निकलती हैं और रुधिर की नलियाँ आती-जाती रहती हैं।

चेहरे की हड्डियाँ—चेहरे की १४ हड्डियाँ इस तरह हैं :—

क—२ ऊपर के जबड़े की हड्डियाँ
(जंभिका, Maxilla or Upper jaw)

ख—१ नीचे के जबड़े की हड्डी
(चिबुकास्थि, Mandible or Lower jaw)

ग—२ गाल की हड्डियां (**चर्वण दन्त अस्थि,** molar cheek bones)

घ—२ तालू की हड्डियां (**तालु अस्थि,** palate bones)

ङ—२ नाक की हड्डियां (**नासास्थि,** nasal bones)

च—२ स्पंज की तरह की हड्डियां (**मृदु अस्थि,** spongy bones)

छ—२ आंसू से सम्बन्ध रखने वाली हड्डियां
(**अश्रु-अस्थि,** lachrimal bones)

ज—१ नाक के परदे वाली हड्डी (**वोमर अस्थि,** vomer bone)

ऊपर के जबड़े की हड्डियों (**जंभिका,** maxilla) में से हर हड्डी से निचले भाग में ऊपरी दांतों के लिए १६ गड्ढे होते हैं। इन हड्डियों से मुंह की भीतरी छत का कुछ भाग बनता है।

नीचे के जबड़े की हड्डी (**चिबुकास्थि,** mandible bone) के बीच का भाग ठुड्ढी (ठोढ़ी) कहलाता है। इसी हड्डी के ऊपर किनारे पर १६ निचले दांतों

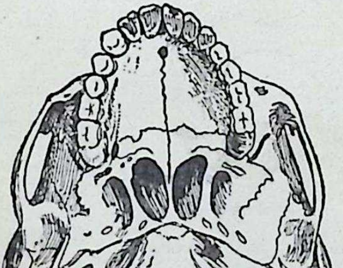

चित्र २५—जंभिका

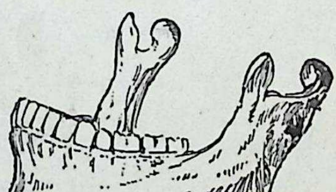

चित्र २६—चिबुकास्थि

के लिए गड्ढे होते हैं। यह चेहरे की सबसे बड़ी और मजबूत हड्डी है और जैसा कि ऊपर बताया गया है, खोपड़ी की २२ हड्डियों में यही एक हड्डी है, जो न केवल ऊपर-नीचे हिलती-डुलती है बल्कि दाएँ-बाएँ भी घूमती है। इसी से भोजन का चबाया जाना सम्भव होता है।

खोपड़ी और चेहरे की हड्डियाँ—१—सामने की हड्डी। २—अलग-बगल की हड्डियों में से एक। ३—कनपटी की हड्डी। ४—पीछे की हड्डी। ५—नीचे के जबड़े की हड्डी। ६—ऊपर के जबड़े की हड्डी। ७—आँसू से सम्बन्ध रखने वाली हड्डी। ८—नाक की हड्डी। ९—तितली के आकार की हड्डी। १०—गाल की हड्डी।

गाल की हड्डियों (**चर्वण दन्त अस्थि,** Molar cheek bones) से ही गाल का ऊपरी भाग कुछ उभरा रहता है।

तालू की हड्डियों से तालु अस्थि का ऊपरी भाग बना होता है।

नाक की हड्डियों से नासास्थि से नाक का ऊपरी भाग (**नाक का पुल** bridge of the nose) बनता है। नाक का शेष निचला भाग उपास्थि (cartilage) का बना होता है। नाक के ऊपरी भाग को बनाने वाली ये हड्डियां छोटी-छोटी हैं।

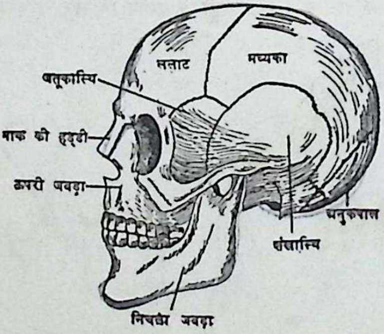

चित्र २७—खोपड़ी और चेहरे की हड्डियां

इसी तरह आँसू से सम्बन्ध रखने वाली हड्डियां (**अश्रु अस्थि,** lachrymal bone) छोटी-छोटी हैं। ये आँखों के गड्ढे की भीतरी दीवार में दोनों तरफ हैं। इन्हीं में रास्ते हैं, जिनसे होकर आँसू आँखों से नाक में जाता है।

मृदु-अस्थि (spongy bones) स्पंज की तरह की हड्डियों में से एक-एक नाक के खाने में हैं। इन हड्डियों का आकार सीपी जैसा होता है। नाक के

अन्दर अँगुली डालकर इन्हें पहचाना जा सकता है। इन हड्डियों के ऊपर नाक के अन्दर गहरे गुलावी रंग की झिल्ली चढ़ी होती है।

नाक के परदे वाली हड्डी वह है, जो नाक के वीच परदे के पिछले भाग में रहती है।

खोपड़ी से सम्वन्ध रखने वाली ७ और हड्डियां हैं। दोनों कानों में ३-३ वहुत छोटी-छोटी हड्डियां हैं और एक हड्डी कण्ठ में है। ये सब मुख्यतः खोपड़ी की हड्डियां नहीं हैं।

धड़ की हड्डियाँ

धड़ की हड्डियों में मेरुदंड और छाती की हड्डियों (उरोस्थि, sternum) की गिनती है। जैसे कि पहले वताया जा चुका है, मेरुदंड में ३३ हड्डियाँ हैं, किन्तु इनमें से अन्त की ९ हड्डियों में से पहली ५ मिलकर १ हड्डी हो जाती है और इसी तरह पिछली ४ मिलकर सेक्रम (sacrum) भी एक हड्डी हो जाती है। इसलिए अनुत्रिक (Coccyx) की हड्डियां २६ मानी जाती हैं। छाती की हड्डियां (उरोस्थि, (Sternum) २५ हैं।

मेरुदंड––मेरुदंड शरीर का आधार है। इसे कशेरुक दंड (Vertebral Column) भी कहते हैं। यह पीठ के बीचोवीच गर्दन से प्रारम्भ होकर नीचे अवस्कर द्वार (Cloacal apperture) के ५-७ सेमी ऊपर तक चली जाती है। यह डण्डे की तरह सीधी नहीं है वल्कि इसमें चार वक्रताएँ दिखाई देती हैं। इन वक्रताओं को उनकी स्थिति के अनुसार गर्दन की वक्रता, वक्ष की वक्रता कटि की वक्रता और कूल्हे की वक्रता कहते हैं। इसके २६ अलग-अलग टुकड़े हैं, जो आपस में वन्धनों से जकड़े रहते हैं। मेरुदंड के हर टुकड़े, हर हड्डी को कशेरुक (Vertebra) कहते हैं। इन कशेरुकों की वनावट उभरी-उभरी एक छल्ले के समान होती है। एक कशेरुक दूसरे पर रखा होता है। वन्धनों और मांस-पेशियों से जकड़े रहने के कारण कशेरुक एक दूसरे से जुड़े होते हैं।

मेरुदंड की २६ हड्डियों में ७ गर्दन में (ग्रीवा कशेरुक, Cervical), १२ पीठ में (पृष्ठीय कशेरुक, Dorsal) ५ कमर में (कटि कशेरुक, Lumbar) और

बाकी २ कमर (सेक्रम, sacrum), अनुत्रिक (coccyx) के निचले भाग में रहती हैं। इनके नाम भी इसी क्रम से हैं—पहली ७ का नाम ग्रीवा कशेरुक "गर्दन की वक्रता" (cervical vertebrae), दूसरी १२ का नाम पृष्ठीय

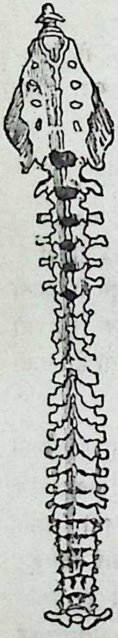

कशेरुक "वक्ष की वक्रता" (dorsal vertebrae) और तीसरी ५ का नाम कटि-कशेरुक "कटि की वक्रता" (Lumbar vertebrae) है। बाकी २ कूल्हे की वक्रता में से ऊपर वाली हड्डी का नाम सेक्रेमी कशेरुक (sacral vertebrae) और निचली का नाम अनुत्रक कशेरुक (coccygeal vertebrae) है।

इन पाँचों भागों में से पहले तीन के टुकड़े अलग-अलग हैं और इधर-उधर कुछ घूम सकते हैं। नीचे जुड़े हुए और अचल हैं।

चित्र २८— छाती या उरोस्थित से पीछे मेरुदंड (पीठ के १२ कशेरुकों से छाती के की तरफ़ से) सामने की हड्डियाँ जिन्हें पसलियाँ कहते हैं, लगी हुई हैं।

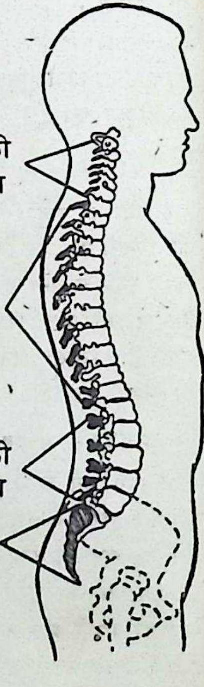

चित्र २९—मेरुदंड (बगल से)

कमर के कशेरुक में से सब से नीचे का कशेरुक सेक्रेमी कशेरुक पर, जिसका आकार एक बडे पच्चड़ की तरह है, रखा हुआ है। सेक्रेमी कशेरुक से कूल्हे की हड्डियाँ जिनका वर्णन आगे आवेगा, जुटी हैं।

पहले और दूसरे कशेरुक को छोड़ कर और सभी कशेरुक के आकार लगभग एक-से हैं । कशेरुक के आकार को अच्छी तरह समझने के लिए छाती या उरोस्थि के पीछे के कशेरुक की जांच की जा सकती है ।

कशेरुक की आकृति एक नगदार अँगूठी से कुछ-कुछ मिलती है। जिस तरह अँगूठी में नग वाला भाग मोटा और घेरा बनाने वाला भाग पतला होता है उसी तरह कशेरुक का अगला भाग मोटा होता है और उससे लगा हुआ एक घेरा होता है, जो कुछ पतला होता है। अगले भाग को **कशेरुक काय** (centrum) और उससे लगे हुए घेरे को **तंत्रकीय चाप** (neural arch) कहते हैं। घेरे से तीन उभार (प्रक्षेपण, Projections) निकले हैं। इनमें से दो प्रक्षेपण घेरे के दोनों तरफ रहते हैं । एक नोकीला प्रक्षेपण घेरे के पिछले

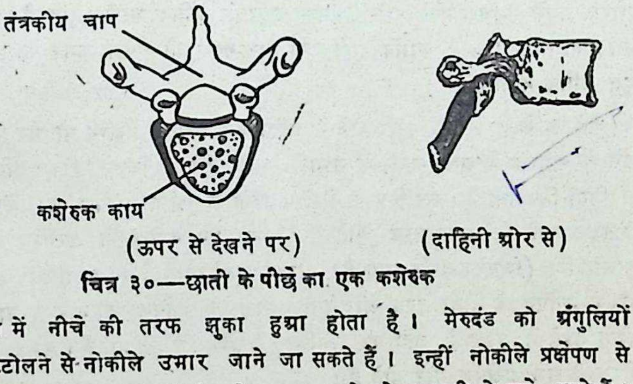

(ऊपर से देखने पर) (दाहिनी ओर से)

चित्र ३०—छाती के पीछे का एक कशेरुक

भाग में नीचे की तरफ झुका हुआ होता है। मेरुदंड को अँगुलियों से टटोलने से नोकीले उभार जाने जा सकते हैं। इन्हीं नोकीले प्रक्षेपण से बन्धन लगे रहते हैं जिनसे ये कशेरुक एक-दूसरे से मजबूती से जुड़े रहते हैं। मांस-पेशियां भी उन उभारों से लगी रहती हैं जिसके सहारे पीठ झुकाई जा सकती है ।

एक कशेरुक का पिंड दूसरे कशेरुक के पिंड पर रखा रहता है । दो कशेरुक के बीच उपास्थि की गद्दी (अंतराकशेरुक बिम्ब, Intervertebral disc)

रहती है, जिससे कशेरुक आपस में रगड़ नहीं खाते और उछलने-कूदने या गिरने से हड्डियों के रगड़ने या आपस में टकराने का डर नहीं रहता ।

कशेरुक के पिंडों के एक-दूसरे के उपर टिके रहने से घेरे भी एक-दूसरे के ऊपर अच्छी तरह बैठ जाते हैं, जिससे एक नली-सी बन जाती है । इसे रीढ़ की नली (कशेरुक नाल, spinal or vertebral canal) कहते हैं । इसी नली में मस्तिष्क से निकल कर नाड़ी का वह लम्बा भाग आता है; जिसे रीढ़-रज्जु (spinal cord) कहते हैं, कशेरुक के बीच से री -रज्जु (spinal cord) से निकली हुई नाड़ियां बाहर आतीं और शरीर में फैलती हैं ।

सभी भागों के कशेरुक लगभग वैसे ही हैं जैसे कि छाती के पीछे का एक कशेरुक बताया गया है, पर उनमें आवश्यकता के अनुसार कुछ भेद होते हैं । नीचे नाले कशेरुक ऊपर वाले कशेरुक से कुछ बड़े और भारी होते हैं । गर्दन के कशेरुक सबसे अधिक हल्के और कमर के सबसे अधिक भारी होते हैं और ऐसा होना स्वाभाविक है, क्योंकि शरीर का भार गर्दन की अपेक्षा कमर के पास बहुत अधिक होता है ।

कशेरुक के हल्के और भारी होने के अतिरिक्त उनमें कुछ और भी भेद हैं। गर्दन के कशेरुक के अलग-बगल के उभारों में छेद होते हैं जिनसे होकर रुधिर वाहिनियां निकलती हैं । उरोस्थि के पीछे कशेरुक के नुकीले प्रक्षेपण, जो पीछे की तरफ रहते हैं, बहुत लम्बे होते हैं । इन्हीं १२ कशेरुक से उरोस्थि की पसलियों की (जिनका वर्णन आगे है) हड्डियां जुड़ी रहती हैं । इसीलिए इन कशेरुक के पिंड के दोनों तरफ और अलग-बगल के प्रक्षेपण की नोक के पास चिकने गड्ढे से रहते हैं, जहां पर पसलियां कशेरुक से जुड़ती हैं। कमर के कशेरुक के सभी प्रक्षेपण मोटे होते हैं ।

गर्दन के पहले और दूसरे कशेरुक में कुछ विशेषताएँ होती हैं । पहले कशेरुक में अन्य मोहरों के पिंड की तरह कोई मोटा भाग नहीं होता । पिंड की जगह एक मेहराब होता है । इसका पिछला नुकीला प्रक्षेपण बहुत ही छोटा होता है । इसके ऊपरी भागों में दो चिकने उभार-से होते हैं जिन पर

खोपड़ी के पीछे की हड्डियां टिकी रहती हैं और जिसके सहारे खोपड़ी आगे-पीछे घूमती है।

गर्दन के दूसरे मोहरे के ऊपरी भाग में दांत की तरह प्रक्षेपण होते हैं, जो पहले कशेरुक की मेहराब में अच्छी तरह बैठ जाते हैं। सिर के इधर-उधर घुमाने में यही होता है कि पहले कशेरुक पर खोपड़ी टिकी रहती है और दूसरे कशेरुक के दांतों के सहारे वह इधर-उधर घूमती है।

मेरुदंड एक सीधे खम्भे की तरह नहीं है; इसका कुछ भाग आगे निकला और कुछ पीछे धँसा रहता है। गर्दन का पीछे की तरफ धँसा रहता है। छाती के पीछे के भाग में एक लम्बा मेहराबदार गढ्ढा-सा है, फिर कमर का भाग कुछ पीछे की तरफ धँसा है।

छाती की हड्डियाँ--छाती की हड्डियों से एक घेरा-सा बन जाता है, जिसे छाती का पिंजड़ा (वक्षीय पिंजड़ा, Thoracic cage) कह सकते हैं। ऊपर बताया गया है कि इस भाग में २५ हड्डियां रहती हैं किन्तु यदि एक तरह से देखा जाय तो इस भाग में २५ नहीं, ३७ हड्डियां हैं। बात यह है कि पसलियाँ दोनों तरफ १२-१२ अर्थात् कुल २४ हैं। ये पीछे मेरुदंड के १२ कशेरुक (vertebra) से जुड़ी हैं जिनका वर्णन ऊपर आ चुका है और आगे की ओर छाती (उरोस्थि, sternum) की एक हड्डी जुड़ी है। इस तरह से २४ पसलियाँ+१२ कशेरुक+१ छाती (उरोस्थि) की हड्डी=कुल मिलाकर ३७ हड्डियां हुईं। लेकिन १२ कशेरुक मेरुदंड की हड्डियों में गिन लिए गए। बस सी लिए कहा जाता है कि वक्षीय हड्डियां २५ ही हैं।

इस वक्षीय पिंजड़े में हृदय और फुप्फुस सुरक्षित स्थित हैं। यकृत (liver), प्लीहा (spleen) और वृक्क (kidney) भी यद्यपि उदर में हैं, परन्तु ये पसलियों से सुरक्षित रहते हैं।

छाती की हड्डी (उरोस्थि, sternum) एक चौड़ी हड्डी है जो लगभग १५-१७ सेमी लम्बी होती है। इसके ऊपर का भाग कुछ चौड़ा और नीचे का

भाग धीरे-धीरे सँकरा हो जाता है। इस हड्डी के तीन भाग होते हैं। सब से ऊपरी भाग में हँसली की हड्डियाँ (जत्रुक, collar bones) दोनों तरफ से आकर मिलती हैं। बीच वाले भाग में दोनों तरफ से आकर ७-७ कुल १४ पसलियाँ मिलती हैं। छाती की हड्डी का सबसे निचला भाग उपास्थि का बना होता है।

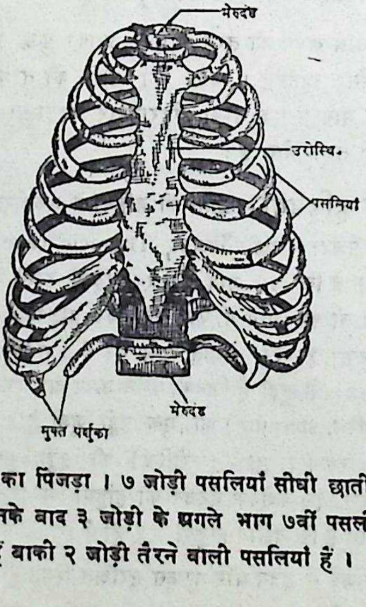

चित्र ३१—छाती का पिंजड़ा। ७ जोड़ी पसलियाँ सीधी छाती की हड्डी से जुड़ी हैं, उनके बाद ३ जोड़ी के अगले भाग ७वीं पसली से मिले हैं बाकी २ जोड़ी तैरने वाली पसलियाँ हैं।

पसलियों की संख्या २४ है—दोनों ओर १२, १२। इनमें दोनों ओर की १२, १२ पसलियाँ पीछे की तरफ मेरुदंड में १२ कशेरुक से जुड़ी हैं। आगे की तरफ केवल १० जोड़ी पसलियाँ छाती की हड्डी से लगी हैं। बाकी २ जोड़ी (ग्यारहवीं और बारहवीं) छोटी हैं और छाती की हड्डी तक नहीं

पहुँच पातीं । ये तैरने वाली पसलियां (मुक्त पर्शुका, fioating ribs) कहलाती हैं ।

जो १० जोड़ी पसलियां छाती की हड्डी से जुड़ी हैं वे भी उस हड्डी तक नहीं पहुँच पातीं । उस हड्डी तक पहुँचने के कुछ दूर पहले ही उनका अन्त हो जाता है, लेकिन उनके अगले सिरे और छाती की हड्डी के किनारे के बीच में उपास्थि (Cartilage) की पट्टियां रहती हैं, जिससे वे १० जोड़ी पसलियाँ छाती की हड्डी से जुड़ी समझी जाती हैं । इन १० जोड़ी पसलियों में भी केवल ऊपर की ७ जोड़ी छाती की हड्डी से मिलती हैं । बाकी ३ जोड़ी का अगला उपास्थि का भाग एक-दूसरे से मिलकर ७वीं पसली के उपास्थि से बँधा रहता है ।

पसलियों के बीच में जो खाली जगहें रहती हैं वे मांस-पेशियों से भरी रहती हैं । ये पेशियां ऊपर की पसली से नीचे किनारे से और नीचे की पसली के ऊपरी किनारे से लगी रहती हैं । सांस लेते समय ये पेशियाँ सिकुड़ती हैं, जिससे यह हड्डियों का पिंजड़ा ऊपर उठता और नीचे गिरता है ।

इस पिंजड़े के ऊपरी हिस्से में टेटुआ (सांस की नली) और आहारनाल ऊपर से नीचे जाती है । यहीं पर बहुत-सी रुधिर-वाहिनी और नाड़ियां गर्दन से छाती की ओर और छाती से गर्दन की ओर आती-जाती हैं । पिंजड़े के निचले भाग में मांस-पेशी की वह मेहराबदार चद्दर है, जो मध्यपट (diaphragm) कहलाती हैं और छाती को उदर से अलग करती हैं । चद्दर के बीच से होकर आहारनाल नीचे उदर की तरफ जाती है । बहुत-सी रुधिरवाहिनी और नाड़ियां भी उदर में ऊपर से आती और उदर से ऊपर जाती हैं ।

ऊपर और नीचे के अवयवों की हड्डियाँ

ऊर्ध्व शाखा दोनों भुजाएँ हैं और अवर शाखा दोनों पाद (जाँघ के कुछ ऊपर से लेकर नीचे की अँगुलियों तक) ।

ऊर्ध्व शाखा—हर भुजा में इतने भाग होते हैं । जत्रुक तथा खवे की हड्डी (ये दोनों मिलकर कंधा बनाती हैं), ऊपर की बाँह, आगे की बाह, कलाई और हाथ। इनमें हड्डियाँ इसी तरह बँटी हैं :—

हँसली या जत्रुक—१; खवे में—१; ऊपरी बाँह में—१; नीचे की बाँह में—२; कलाई—८; हथेली में (अँगुलियों को छोड़कर)—५; अँगुलियों में—१४ । इस तरह एक भुजा में ३२ और दोनों में ६४ हड्डियाँ हैं ।

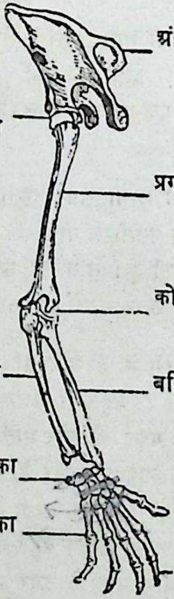

चित्र ३२—ऊपर के अवयव की हड्डियां

जत्रुक (clavicle or collar bone) छाती के अगले और सबसे ऊपरी भाग में होती है। खवे की हड्डी (अंसफलक, scapula) खवे में होती है। खवा पीठ का ऊपरी भाग है। ये दोनों हड्डियां छाती की हड्डियों से मांश-पेशी

ग्रौर बन्धनों के सहारे बँधी रहती हैं । खवे की हड्डी का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग वह गोल गड्ढा है जिसमें ऊपर की बाँह का ऊपरी सिरा बैठा रहता है । यह सिरा गेंद की तरह होता है। गेंद गड्ढे में ग्रटकी रहती है, पर इधर-उधर ग्रच्छी तरह घूम भी सकती है । इस गड्ढा-गेंद जोड़ के विषय में ग्रागे बताया जायगा । यहाँ इतना ही बताना काफी है । ग्रँगुली ग्रौर घुटनों के जोड़ों से कंधों ग्रौर कुल्हों के जोड़, गेंद-गड्ढा होने के कारण, बाँह ग्रौर टाँगों को ग्रधिक घूमने का ग्रवसर देते हैं ।

जत्रुक लम्बी ग्रौर कुछ टेढ़ी होती है। यह ग्रन्दर को छाती की हड्डी से ग्रौर बाहर खवे की हड्डी से जुड़ी होती है ।

ग्रंसमेखला की हड्डी चौड़ी ग्रौर तिकोनी होती है। इसका चौड़ा भाग खवे में रहता है ग्रौर मोटा भाग कंधे में। इसी मोटे भाग के कोने में गड्ढा (ग्रंस-उलूखल, glenoid cavity) होता है जिसमें ऊपरी बाँह का ऊपरी भाग लगा रहता है। इसी मोटे भाग के ऊपरी किनारे पर ग्रंसफलक जत्रुक से मिलती है ग्रौर जुड़ी रहती है ।

ऊपर की बाँह की हड्डी (प्रगंडिका, humerus) कंधे ग्रौर कोहनी के बीच में है । इसका ऊपरी सिरा खवे की हड्डी के गड्ढे में बैठा रहता है ग्रौर नीचे का सिरा नीचे की बाँह की हड्डियों से मिलकर कोहनी का जोड़ बनाता है ।

नीचे की बाँह (प्रकोष्ठ, fore arm) में २ हड्डियाँ बराबर-बराबर होती हैं—एक हड्डी बाहर के ग्रँगूठे की ग्रोर (बहिःप्रकोष्ठिका, radius) ग्रौर दूसरी ग्रन्दर को कनिष्ठिका की ग्रोर (ग्रंतःप्रकोष्ठिका, ulna) जब हथेलियों को ऊपर की तरफ करके फैलाया जाता है तो दोनों बराबर-बराबर रहती हैं, पर जब इस तरह हथेली घुमाई जाती है कि ग्रँगूठा ग्रन्दर को घूम जाता है तो बाहर की हड्डी (बहिःप्रकोष्ठिका, radius) ग्रन्दर की हड्डी (ग्रंतःप्रकोष्ठिका, ulna) के ऊपर ग्रा जाता है ।

बहिःप्रकोष्ठिका का ऊपरी सिरा छोटा, पर नीचे का सिरा चौड़ा होता है। ग्रंतःप्रकोष्ठिका का ऊपरी सिरा चौड़ा ग्रौर नीचे का सिरा छोटा होता है ।

ये दोनों हड्डियाँ ऊपर की ओर ऊपर की बाँह की हड्डी में मिल कर कोहनी बनाती हैं और नीचे की ओर कलाई की हड्डियों से मिली रहती हैं।

कलाई में आठ छोटी-छोटी हड्डियाँ हैं। इन्हें कलाई की हड्डियाँ (**मणिबंधिका**, carpal bones) कहते हैं। इन्हें सामूहिक रूप से **मणिबन्ध** (carpus) कहते हैं। ये दोनों पंक्तियों में सजी और बन्धनों से जुड़ी रहने के कारण अपने स्थान पर अच्छी तरह बैठी रहती हैं। इसी से कलाई में लचीलापन और इधर-उधर खूब घूमने की शक्ति है।

हथेली की पांच हड्डियों (**करभिका**, metacarpal bones) ऊपर की ओर कलाई की हड्डियों और नीचे अँगुली की हड्डियों से जुटी रहती हैं। इन्हें सामूहिक रूप से **करभ** (metacarpus) कहते हैं।

अँगुलियों में कुल मिलाकर १४ हड्डियाँ हैं, अँगूठे में २, बाकी ४ अँगुलियों में से हर एक में तीन-तीन।

अधरपाद (Lower limb)--इस भाग की बनावट साधारणतया ऊपर के अवयव की बनावट की तरह होती है। नीचे के अवयव को पैर[1] कहते हैं, किन्तु यह भाग वास्तव में जांघ के कुछ ऊपर से प्रारम्भ होता है। इसके भाग हैं---कूल्हा, जांघ, टाँग, टखना और पैर (टखने के बाद का भाग जिसमें अँगुलियाँ रहती हैं)। इस अवयव में हड्डियाँ इस तरह बँटी हैं:—

कूल्हे की हड्डी---१, जांघ की हड्डी---१, घुटने की हड्डी---१, टाँग में---२, टखने में---७, पैरों में---५, अँगुलियों में---१४। इस तरह एक पैर में कुल मिलाकर ३१ और दोनों में ६२ हड्डियाँ हुईं। ऊपर की शाखा से भिन्नता इतनी है कि प्रत्येक कलाई में ८ हड्डियाँ होती हैं, प्रत्येक टखने में केवल ७।

---

१. पैर सबसे नीचे के भाग को भी कहते हैं जिससे अँगुलियाँ लगी रहती हैं। यहाँ 'पैर' कूल्हे से लेकर अंगुलियों तक के सारे अवयव के लिए आया है।

कूल्हे (**श्रोणि मेखला,** hip girdle) में एक बड़ी चौड़ी और विरूप हड्डी होती है। कूल्हे दो हैं। कूल्हे की दोनों हड्डियां पीछे की तरफ कमर के नीचे सेक्रेमी अस्थि (sacral) (मेरुदंड का ऊपर से चौथा भाग) नामक हड्डी से जुड़ी रहती है। कूल्हे की दाहिनी हड्डी सेक्रेमी की दाहिनी तरफ और बाईं हड्डी सेक्रेमी की वाईं तरफ रहती है। सामने आकर ये दोनों हड्डियाँ एक मध्य रेखा से आपस में जुड़ी रहती हैं। इन दोनों हड्डियों के जोड़ के नीचे स्त्री और पुरुष के पहचान के अंग होते हैं। ये दोनों हड्डियां सेक्रेमी से जुड़ी हैं पर सेक्रेमी के नीचे वाली मेरुदंड की हड्डी, अनुत्रिक से मिली नहीं रहती। इन चारों हड्डियों (दो कूल्हे, सेक्रेमी और अनुत्रिक) के बीच में जो गहरे कटोरे या कड़ाही का आकार-सा बन जाता है, उसे कूल्हे का कटोरा या श्रोणि मेखला, (pelvic girdle) कहते हैं। श्रोणि मेखला उदर की कोठरी का निचला भाग है। उसमें पुरुष के मूत्राशय, शुक्राशय और मलाशय, स्त्रियों के मूत्राशय, गर्भाशय, मलाशय और दूसरे अंग रहते हैं। स्त्री की श्रोणि मेखला पुरुष की श्रोणि मेखला की अपेक्षा कम गहरी, पर अधिक चौड़ी और बड़ी होती है।

कूल्हे की हड्डी के तीन भाग हैं। ऊपर का चौड़ा भाग इलियम अस्थि (ilium

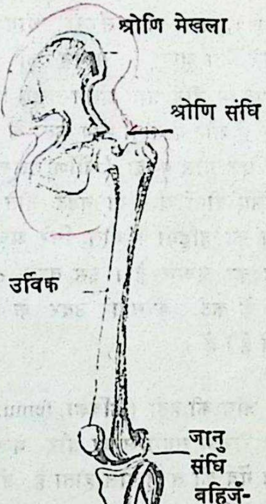

चित्र ३३—श्रोणि मेखला और टाँगों की हड्डियाँ

bone), नीचे का सँकरा भाग ग्रसनास्थि (ischium bone) जिसके सहारे बैठा जाता है, सामने का चौड़ा भाग जघनास्थि (pubis bone) बचपन में तीन भाग अलग-अलग दिखते हैं, पर आगे चलकर मजबूती से मिल जाते हैं और ये-तीनों भाग कूल्हे के बाहरी पृष्ठ पर एक-दूसरे से मिलते हैं और वहाँ एक गोल गड्ढा (श्रोणि उलूखल, acetabulum) बनाते हैं। कूल्हे दो हैं। इसलिए दोनों ओर दो गड्ढे होते हैं। इन्हीं में दोनों ओर से आकर दोनों जांघ की हड्डियों के गोल सिरे अच्छी तरह बैठ जाते हैं। यहां भी गेंद-गड्ढे जोड़ का प्रबन्ध है। इस तरह टाँगों के सहारे कूल्हे का कटोरा है और कूल्हे के कटोरे के सहारे उदर के निचले भाग के अंग (जिसके नाम ऊपर लिखे हैं) हैं।

जांघ की हड्डी (ऊर्विका, femur) ऊपर की बाँह की हड्डी की तरह है। यह शरीर में सबसे लम्बी और मजबूत हड्डी (चित्र ३३) है। इसका ऊपरी सिरा गेंद की तरह गोल होता है, जो कूल्हे की हड्डी में टिका रहता है। इसका निचला सिरा कुछ फैला रहता है और घुटने पर टाँग की हड्डियों से जुड़ा रहता है। यह जोड़ बहुत मजबूत होता है। यहां पर भी एक तिकोनी हड्डी होती है जिसे सान्विका, (patella) कहते हैं। यह हड्डी हिलाई जा सकती है और जांघ की हड्डी के निचले सिर के सामने रहती है। जब टाँग सीधी की जाती है तो दुबले-पतले आदमियों में यह दूर से दीखती है।

पैर (घुटने के नीचे) में बाँह की तरह दो हड्डियां होती हैं। इनमें से एक अँगूठे की तरफ रहती है और दूसरी सबसे छोटी अँगुली की तरफ। अँगूठे की तरफ वाली पिंडली की मोटी हड्डी (अंतर्जंघिका, tibia) है और दूसरी पिंडली की पतली हड्डी (बहिर्जंघिका, fibula) कहलाती है। यह दूसरी हड्डी पतली और कमजोर होती है। मोटी हड्डी अंतर्जंघिका का ऊपर का सिरा नीचे के सिरे से अधिक मोटा और चौड़ा होता है और घुटने पर जांघ की हड्डी से मिलता है। इसी जोड़ के सामने और पिंडली

की मोटी हड्डी से लगी हुई जान्विका नाम की हड्डी रहती है। पिंडली की मोटी हड्डी का निचला सिरा पतला होता है और टखनों की हड्डियों से मिल कर टखने के भीतरी उभार को बनाता है।

पिंडली की पतली हड्डी के ऊपर का सिरा मोटी हड्डी से बँधा रहता है। इसका निचला सिरा टखने की हड्डी से मिलकर टखने का बाहरी उभार, गट्टा बनाता है।

टखने की हड्डियाँ (**गुल्फास्थि,** tarsal bones) गिनती में ७ हैं। इन्हें सामूहिक रूप से (गुल्फ, tarsus) कहते हैं। इनमें से एक मोटी हड्डी पिंडली की मोटी हड्डी से जुड़ी रहती है। एक दूसरी हड्डी नीचे की तरफ झुकी रहती है और एड़ी बनाती है।

पैर की हड्डियाँ (**प्रपदिका अस्थि,** meta-tarsal bones) हथेली की हड्डियों की तरह ५ हैं, इन्हें सामूहिक रूप से प्रपदिक अस्थि कहते हैं। इन्हीं से पैर की अँगुलियों की हड्डियाँ लगी रहती हैं। ये १४ हैं—अँगूठे में २ और बाकी प्रत्येक अँगुली में ३-३।

हड्डियों की संधि

हड्डियों के विषय में जो कुछ अब तक बताया गया है उससे मालम हो गया होगा कि शरीर के अन्दर जो हड्डियों का ढाँचा है उसमें बहुत जगहों पर संधि (Joints) हैं। ये संधि जरूरी हैं, क्योंकि इनके बिना न तो हाथ-पैर हिलाए जा सकते हैं और न आदमी उठ-बैठ या चल-फिर सकता है। अगर हड्डियों के ढांचे में संधि न होती तो शरीर बराबर सीधा-सादा एक काठ के पिंड की तरह रहता। विशेषता तो यह है कि शरीर के जिस भाग को जिस तरह हिलाने-घुमाने की आवश्यकता है उसी तरह की संधि उन भाग की हड्डियों में है।

जहाँ दो या दो से अधिक हड्डियों या उपास्थि[1] के सिरे आपस में मिलते हैं उस स्थान को जोड़ (संधि, Joint) कहते हैं। संधि साधारणतः

१. उपास्थि, जैसा कि पहले बताया गया है, एक दृढ़ परन्तु लचीला पदार्थ है। कान का बाहरी हिस्सा उपास्थि का बना है, जो पतली

दो तरह की होती हैं—(१) अचल सन्धि (fixed immovable Joint) और (२) चल सन्धि (movable Joint) खोपड़ी की हड्डी (नीचे के जवड़े की हड्डी को छोड़ कर) जो आपस में जुड़ी हैं, अचल सन्धि के उदाहरण हैं, किन्तु ऊपर की बाहु जहाँ खवे की हड्डी से मिलती है या जाँघ की हड्डी जहाँ कूल्हे की हड्डी से जुड़ी रहती है चल सन्धि हैं।

इस तरह जोड़ों के मुख्य दो प्रकार हुए, पर बहुचेष्ट सन्धियाँ भी चार तरह की होती हैं। ये निम्नलिखित हैं :—

(१) गेंद गड्ढा जोड़ (कंदुक खल्लिका-सन्धि, Ball and Socket Joint)—इस जोड़ पर एक लम्बी हड्डी का गोल सिरा दूसरी हड्डी के गोल गड्ढे में टिका रहता है। ऊपर इसके दो उदाहरण दिये गए हैं—कन्धे और कूल्ह पर के जोड़। यह जोड़ ऐसा होता है कि आपस में मिली हड्डियाँ अच्छी तरह और हर तरफ हिलाई-डुलाई और घुमाई जा सकती हैं।

(२) चूलदार जोड़ (हिन्ज सन्धि, Hinge Joint)—यह उस जोड़ का नाम है, जिससे जुड़ी हुई हड्डियाँ आगे-पीछे विशेष दिशा में घुमाई जा सकती हैं। कोहनी, घुटनों और अँगुलियों के जोड़ इसी तरह के हैं। शरीर में इसी तरह के जोड़ अधिक संख्या में हैं। ये आगे-पीछे तो मुड़ सकते हैं, पर दायें से बायें और बायें से दायें नहीं मोड़े जा सकते और न हिलाये जा सकते हैं।

मांस-पेशियों और त्वचा से ढका रहता है। नाक के आगे का निचला हिस्सा भी उपास्थि का ही बना है। मेरुदंड के कशेरुक के बीच में भी उपास्थि की गद्दियाँ पड़ी हैं, जिससे कि हम पीठ को झुका सकते हैं और उछने-कूदने में कोई धक्का या रगड़ नहीं मालूम होती। पसलियों के सिरों पर भी जहाँ वे छाती की हड्डी से मिलती हैं, उपास्थि ही है, जिससे फैलती और सिकुड़ती है।

(३) कीलदार जोड़ (विवर्तिक सन्धि, Pivot Joint)—जहाँ ऐसा जोड़ होता है वहाँ एक हड्डी कील का काम करती है और उस पर दूसरी हड्डी घूमती है। रीढ़-रज्जु के पहले और दूसरे कशेरुक का जोड़, जिसके सहारे खोपड़ी इधर से उधर घूमती है, ऐसा ही है।

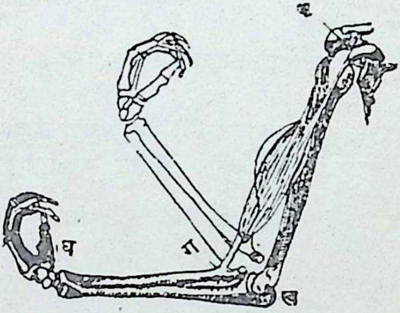

चित्र ३४—कोहनी—हिन्ज संधि

(४) फिसलने वाला जोड़ (सर्पी, Sliding Joint)—जिस जोड़ पर एक हड्डी दूसरी हड्डी के ऊपर उपास्थि की गद्दी बीच में रहने के कारण थोड़ा फिसलती है, वह फिसलने वाला जोड़ है। कलाई की हड्डियों और मेरुदंड के कशेरुक का आपस में मिला रहना इसी तरह के जोड़ का उदाहरण है।

जोड़ पर हड्डियाँ श्वेत सौत्रिक बन्धनों (स्नायु तन्तुमय बैंड, Ligament fibrous band) से बँधी रहती हैं। ये बन्धन सुतली का काम करते हैं और हड्डियों को ठीक स्थान पर रखते हैं। जोड़ों पर मांस-पेशियाँ रहती हैं। यदि इनको हटाया जाय तो ये बन्धन दिखाई पड़ेंगे। मांस-पेशियाँ भी हड्डियों से एक दूसरे श्वेत बन्धन द्वारा मजबूती से लगी होती हैं। इसको कंडरा[1] (Tendon) कहते हैं।

---

१. कंडरा बहुत मजबूत और कड़े सफेद रस्से की तरह होती है। मुड़े घुटने के नीचे उनको टटोल कर जाना जा सकता है।

(५) हिलने-घूमने वाले जोड़ (वहुचेष्ट-संधि) की वनावट—जोड़ की जगहों पर वहुत अच्छा प्रबन्ध रहता है, जिससे हड्डियाँ अच्छी तरह विना रगड़ खाए हिलती घूमती हैं। प्रवन्ध यह है कि जोड़ पर हड्डियों के सिरे चिकने उपास्थि की तह से ढँके रहते हैं। इतना ही नहीं उनके किनारे-किनारे एक पतली चमकदार झिल्ली लगी रहती है, जिससे तेल की तरह एक स्निग्ध द्रव्य निकलता है। इस द्रव्य का नाम साइनोवियल तरल है। इसकी चिकनाई से स्वयं झिल्ली और हड्डियों के सिरों पर उपास्थि का ऊपरी भाग वरावर तर रहता है। इससे हड्डियां आपस में रगड़ नहीं खातीं। यह स्निग्ध द्रव्य वही काम करता है, जो मशीन में तेल करता है। वहुत से जोड़ों

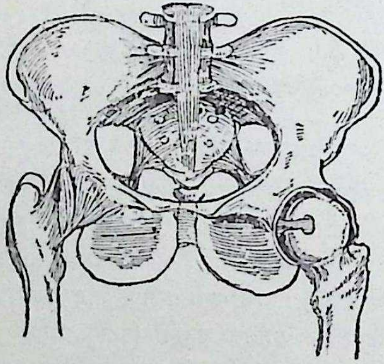

चित्र ३५—कूल्हे की हड्डी से जांघ की हड्डी का जुड़ना
(कंदुक खल्लिका संधि का उदाहरण)

पर हड्डियों के सिरे दो उल्टी दिशाओं से आकर एक थैली के अन्दर मिलते हैं। यह थैली रेशेदार ऊतक (fibrous tissues) की वनी होती है और जोड़ की थैली (संधिकोष, capsule of the joint) कहलाती है। इसके अन्दर पड़ी रहने से हड्डियां अपनी जगह पर रहती हैं। यह थैली वाहर के मांसपेशियों के सहारे मजबूत रहती है।

प्रश्न

१—शरीर में कितनी हड्डियां होती हैं ? इतनी अधिक हड्डियाँ क्यों होती हैं ? उनकी क्या उपयोगिता है ? (व० हि० यु० १६४२-१६५०)

२—मेरुदंड में कुल कितने प्रकार की और कितनी कशेरुक होती हैं ? रीढ़ की हड्डी की वनावट चित्र द्वारा समझाइये ।
(रा० १६४४, उ० प्र० १६५०)

३—उर्ध्व शाखा तथा नितंवास्थि की हड्डियों का वर्णन कीजिए ।
(रा० १६४५)

४—सन्धि किसे कहते हैं और उसकी क्या आवश्यकता है ? सन्धियाँ कितने प्रकार की होती हैं ? प्रत्येक का एक-एक उदाहरण देकर समझाइए ।
(उ० प्र० १६४८)

५—संक्षेप में वर्णन कीजिए कि मनुष्य-कर्पर (क्रेनियम) की विविध अस्थियाँ एक-दूसरे से कैसे जुड़ी हैं ? (उ० प्र० १६५०)

६—एक चित्र की सहायता से वर्णन कीजिए कि श्रोणि (पेल्विस) और नितम्व की हड्डियाँ किस प्रकार परस्पर सन्धिमान रहती हैं ।
(उ० प्र० १६५०)

७—वक्षस्थल और उदर में कौन-कौन से अवयव हैं ? उत्तर चित्र द्वारा स्पष्ट कीजिए । (उ० प्र० १६५१)

८—संधि किसे कहते हैं ? यह कितने प्रकार के होते हैं ? उदाहरण देकर वर्णन कीजिए । (उ० प्र० १६६६)

९—टाँग की हड्डियों का चित्र बनाइये और उसकी वनावट और कार्य समझाइये । (उ० प्र० १६७०)

१०—चित्र की सहायता से समझाइये कि छाती का पिजड़ा किन-किन हड्डियों से मिल कर वना है इसमें कौन-कौन से अंग होते हैं ।
(उ० प्र० १६७१)

———

अध्याय ३

पेशी-तन्त्र

(MUSCULAR SYSTEM)

सामान्य परिचय

शरीर में हड्डियाँ तो आवश्यक हैं ही, मांस भी उतना ही आवश्यक है। हड्डियाँ शरीर को सीधा रखती हैं और मांस-पेशियों से शरीर में चाल (गति) होती है। यदि शरीर बराबर सीधा ही रहे और कहीं से मुड़े या हिले-डुले नहीं तो उसमें और जड़-पदार्थ में कुछ भी भेद न रह जाय। यदि तरह-तरह की आवश्यक गति के लिए मांस-पेशियाँ न हों तो भोजन उठाकर मुँह में रखना, भोजन चबाना और [निगलना; आँख खोलना, देखना और फिर आँखें बन्द कर लेना; बातचीत करना, हँसना, बोलना, गाना, चलना-फिरना, लिखना, चीजें उठाना इत्यादि कोई भी काम न हो। हृदय से रुधिर का निकल कर सारे शरीर में चक्कर लगाना और अंग-प्रत्यंग को उसका आहार देना और सांस लेना भी मांस-पेशियों के ही कारण होता है। यदि ये दोनों काम न हो तो शरीर एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। मांस-पेशी का वास्तविक गुण है सिकुड़ना और फैलना। इसी गुण के कारण हड्डियों के सहारे गति होती है। मांस-पेशियाँ शरीर के बाहर और अन्दर भी हैं।

सारा शरीर मांस का है। त्वचा के नीचे मांस के लोथड़े और उसके नीचे हड्डियाँ हैं। इन्हीं मांस के लोथड़े को, विशेषकर टुकड़ों को मांस-पेशियाँ कहते हैं। ये शरीर के बाहरी भाग में तो हैं ही, भीतरी भाग में भी हैं। बाहरी भाग से मतलब है सिर, धड़, हाथ, पैर के ऊपरी भाग। चेहरा और गर्दन में, छाती में, पसलियों के बीच और उनके ऊपर पीठ और कमर में पसलियों और मेरुदंड के कशेरुक (Vertebrae) से लगी हुई बाँहों में, अँगुलियों में, टाँगों में सभी जगह मांस-पेशियाँ हैं। इन बाहरी भागों में मांस-पेशियाँ हड्डियों से चिपकी हुई हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी मांस-पेशियाँ हैं जो शरीर के भीतरी भाग में रहने के कारण हड्डियों से नहीं लगी हैं। रुधिर ले

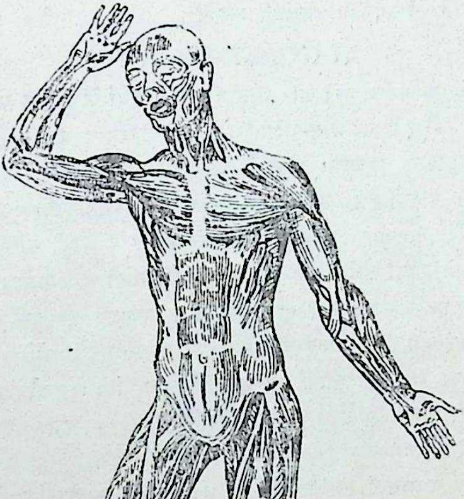

चित्र ३६—पेशी-तन्त्र

जाने वाली नलियों में उदर, आमाशय, आंत्र और ऐसे ही भीतरी अंगों की दीवारों में भी मांस-पेशियाँ पायी जाती हैं।

दो तरह की मांस-पेशियाँ

ऊपर बताए गए बाहरी और भीतरी मांस-पेशियों के भेद से यह भी मालूम होता है कि—(१) कुछ मांस-पेशियाँ मनुष्य की इच्छा के वश में हैं और उसकी इच्छा या आज्ञा से ही काम करती हैं और (२) कुछ ऐसी हैं जो मनुष्य की इच्छा के वश में नहीं हैं। साधारण स्थिति में मनुष्य अपनी इच्छा से न तो इनमें गति पैदा कर सकता है और न अपनी आज्ञा से इनकी गति को बन्द कर सकता है। ये अपना काम अपने ढंग पर करती जाती हैं। असाधारण स्थिति में मनुष्य इन पर अपना प्रभाव डाल सकता है, पर यह इस पुस्तक का विषय नहीं है। यहाँ हम इन्हें मनुष्य की इच्छा के वश में नहीं समझेंगे।

जब मनुष्य खाना चाहता है तो उसकी इच्छा होते ही और मस्तिष्क की आज्ञा पाते ही, बाँह की मांस-पशियाँ उसकी हड्डियों को फैला और मोड़ कर हाथ के सहारे भोजन को मुँह तक पहुँचा देती हैं। इसी तरह चलने-फिरने, बोलने इत्यादि में मांस-पेशियाँ मनुष्य की इच्छा के ही कारण काम करती हैं। पर जैसा कि ऊपर कहा गया है, कुछ ऐसी मांस-पेशियाँ हैं जो मनुष्य की इच्छा के अधीन नहीं हैं। हृदय की धड़कन को न तो इच्छा से आरम्भ किया जा सकता है और न रोका जा सकता है। आंत्र में गति होती है, जिससे खाया हुआ भोजन नीचे को सरकता है। मनुष्य अपनी इच्छा से इस गति को रोक नहीं सकता। तेज प्रकाश में आँख की पुतली सिकुड़ कर छोटी हो जाती है, अँधेरे में वह फैल कर चौड़ी हो जाती है। इच्छा से यह पुतली छोटी या बड़ी नहीं की जा सकती।

इस तरह मांस-पेशियाँ दो तरह की हैं—(१) **ऐच्छिक या इच्छाधीन** (voluntary) और (२) **अनैच्छिक स्वाधीन** (involuntary)। शरीर को ढँकने वाली लगभग सभी मांस-पेशियाँ ऐच्छिक हैं, पर जैसा कि ऊपर बताया गया है हृदय, आमाशय, आंत्र और कई भीतरी अंगों की दीवारों की मांसपेशियाँ अनैच्छिक हैं।

पेशियों के आकार--पेशियाँ बहुत तरह की हैं । ये शरीर के भिन्न-भिन्न भागों को कई दिशाओं में घुमाती और मोड़ती हैं । कोई पेशी छोटी होती है तो कोई बड़ी, कोई लम्बी होती है तो कोई गोल। आँख की पेशियाँ बहुत छोटी होती हैं । पैरों की पेशियाँ बड़ी होती हैं। पेशियों के आकार-प्रकार उनके कामों के अनुसार हैं ।

ऐच्छिक पेशियाँ--यों तो मांस-पेशियाँ, चाहे वे ऐच्छिक हों या अनैच्छिक, कई तरह की होती हैं। ऐच्छिक पेशियाँ भी बहुत आकार-प्रकार की हैं । जो हाथ-पैर में हैं वे प्रायः बीच में सिरों की अपेक्षा मोटी होती हैं। सिरों पर कंडरा (Tendons) रहते हैं जिनके सहारे ये हड्डियों से लगी होती हैं। कुछ पेशियाँ हड्डियों की ऊपरी झिल्ली से ही लगी होती हैं। कंडरा के सहारे हड्डियों से बँधी पेशियों के सिरों पर प्रायः एक से अधिक कंडरा रहते हैं। पेशी का एक सिरा एक हड्डी से जुड़ा रहता है और दूसरा सिरा दूसरी हड्डी से और पेशी जोड़ से ऊपर-ऊपर बनी रहती है । जब पेशी

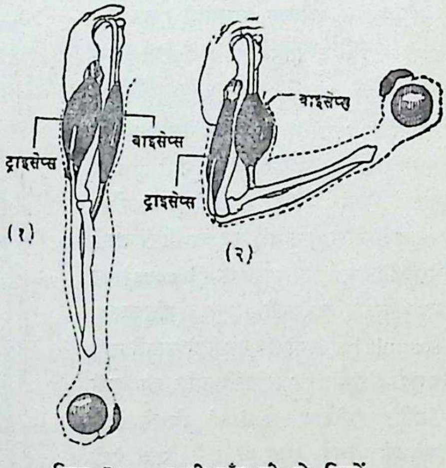

चित्र ३७—ऊपरी बाँह की दो सिरों वाली पेशी

सिकुड़ती है तो दोनों हड्डियाँ पास-पास हो जाती हैं। ऊपरी बाँह की दो सिरों वाली बाइसेप्स (द्विशिरस्क, biceps) पेशी की गति देखने और समझने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। यह पेशी ऊपर से खवे की हड्डी या अंसफलक (स्कैपुला, scapula) से लगी रहती है और निचली बाँह की हड्डी (बहिःप्रकोष्ठिका, radius) से । इसी

तरह यह पेशी सारी ऊपरी बाँह, दोनों बाँह के जोड़ और निचली बाँह के ऊपरी भाग पर रहती है। जब यह सिकुड़ती है तो नीचे की बाँह ऊपरी बाँह के पास आ जाती है या यों समझो कि जब नीचे की बाँह ऊपर की बाँह के पास आ जाती है तो यह पेशी सिकुड़ कर छोटी और गोल-सी हो जाती है। ऊपरी बाँह को टटोल कर इस दो सिरों वाली पेशी (द्विशिरस्क या बाइसेप्स biceps) की करामात समझी जा सकती है।

पेशियाँ किस तरह काम करती हैं—ऊपर बताई बातों से थोड़ा बहुत स्पष्ट हो गया होगा कि पेशियाँ किस तरह अपना काम करती हैं। इसे फिर से समझाया जाता है। हर एक पेशी के सिरे दो हड्डियों से बँधे होते हैं—एक सिरा एक हड्डी से और दूसरा सिरा दूसरी हड्डी से। एक सिरा ऐसी हड्डी से बँधा होता है, जो जरा कम घूमती है और दूसरा सिरा घूमने वाली हड्डी से बँधा रहता है जैसे ऊपरी बाँह की दो सिरों वाली पेशी द्विशिरस्क या बाइसेप्स (biceps) का एक सिरा खवे की हड्डी (अंसफलक, scapula) से लगा है। यह हड्डी उतनी नहीं घूमती जितनी की निचली बाँह की हड्डी (बहिःप्रकोष्ठिका, radius) जिससे पेशी का दूसरा सिरा लगा होता है। जहाँ पेशी कम घूमने वाली हड्डी से बंधी होती है उसे पेशी का आरम्भ (उद्गम, origin) कहते हैं और जहाँ अधिक हिलने-घूमने वाली दूसरी हड्डी से वह जा लगती है उसे प्रवेश-स्थान (निवेशन, insertion) कहते हैं। इस तरह दो हड्डियों से बँधी हुई पेशी

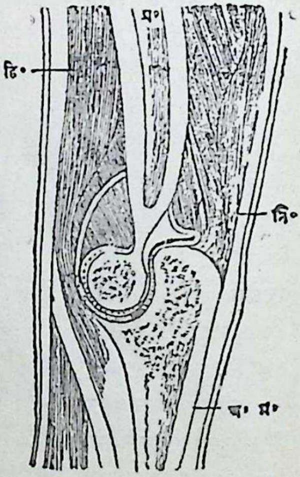

चित्र ३८—कोहिनी की सन्धि (elbow joint) का परिच्छेद। प्र०—प्रगण्डास्थि, द्वि०—द्विशिरस्क (biceps), त्रि०—त्रिशिरस्क (triceps), अ० प्र०—अन्तःप्रकोष्ठिका।

जब सिकुड़कर छोटी हो जाती है तो दोनों हड्डियां पास-पास आ जाती हैं। या यों कहिए कि जब कोई पेशी सिकुड़ कर छोटी होती है तो वह उस हड्डी को जिससे वह लगी हुई है, अपने साथ उठाती है। हड्डियों के जोड़ के ऊपर होकर पेशी जाती है, इसी से ऐसी गति होती है। जोड़ के कारण पेशी के सिकुड़ने से उसके दोनों सिरे एक-दूसरे के पास आ जाते हैं।

बाइसेप्स या द्विशिरस्क (Biceps) के सिकुड़ने से निचली बाँह उठकर ऊपरी बाँह के पास आ जाती है। बाँह के पीछे की तरफ को ट्राइसेप्स या त्रिशिरस्क (triceps) के सिकुड़ने से निचली बाँह फिर सीधी हो जाती है। इसी तरह पेशियों के संकुचन (Contraction) और प्रसार (Expansion) से तथा उनके लचीलेपन से शरीर के विविध भागों में विविध गतियाँ होती हैं। इसके उदाहरण भी हैं। जिस तरह दो सिरों वाली पेशी निचली बाँह को कन्धे की तरफ लाती है उसी तरह सीने की पेशी ऊपरी बाँह की हड्डी को छाती की हड्डी (उरोस्थि, sternum) की तरफ खींच लाती है। इसी तरह कन्धे के पेशी सारी बाँह को ऊपर हवा में उठाती है। शरीर के विविध अङ्गों का घूमना, हिलना, गतिशील होना विविध पेशियों के सिकुड़ने और फैलने से होता है।

हड्डियों का सहारा--पेशियों का संकुचन और प्रसार गति के लिए तो आवश्यक है ही, पर यह तभी हो सकता है जबकि हड्डियों का सहारा हो। किसी भारी पत्थर को डंडे या लोहे की छड़ के सहारे जमीन में टेक लगाकर उठाया जाता है। इसी तरह शरीर के किसी एक अङ्ग को उसके समीप वाले दूसरे अङ्ग के पास लाने के लिए एक हड्डी के सहारे एक जोड़ पर टेक लगाया जाता है। इसे अच्छी तरह समझना चाहिए। जब निचली बाँह को ऊपरी बाँह के पास लाने के लिए बहिःप्रकोष्ठिका (radius) के सहारे कोहनी के जोड़ पर टेक लगाया जाता है, तब दो सिरों वाली पेशी द्विशिरस्क सिकुड़ कर निचली बाँह को ऊपर उठाती है। इसी तरह निचली बाँह को फिर से फैलाने के लिए बाँह के पीछे वाली ट्राइसेप्स या त्रिशिरस्क (triceps) अंतःप्रकोष्ठिका (ulna) का, जिससे वह लगी हुई है, सहारा लेती है। इसी हड्डी के सहारे कोहनी के जोड़ पर टेक लगाकर वह पेशी सिकुड़ती है, जिससे निचली बाँह फैल जाती है।

खड़ा होना, चलना और दौड़ना--पीछे बताई बातों से यह समझ में आ गया होगा कि अङ्गों में गतियाँ किस तरह होती हैं। इस सिलसिले में यह समझ लेना भी रोचक होगा कि शरीर किस तरह सीधा खड़ा होता है और टहलने, दौड़ने, उछलने आदि की गतियाँ किस तरह होती हैं। बात यह है कि एक गति के होने में एक ही पेशी नहीं, प्रायः कई पेशियाँ मिलकर काम करती हैं। शरीर को सीधा खड़ा रखने में शरीर के सामने और पीछे की कई पेशियों का जटिल प्रबन्ध रहता है। एक तरफ की पेशी दूसरी तरफ की पेशी के विरुद्ध काम करती है, समाने की पेशियाँ शरीर को आगे की ओर खीचती हैं और पीछे की पेशियाँ पीछे की ओर। इस तरह दो ओर पेशियों की विपरीत क्रिया (एक-दूसरे से उलटा काम) का परिणाम यह होता है कि शरीर सीधा रहता है। एक क्रिया को देखने से यह बात और समझ में आ जायगी। शरीर का बोझ टखने की हड्डियों पर पड़ना है, जिससे पैर आगे को गिरने लगता है। किन्तु इसके विरुद्ध पिंडली (उरु, thigh) की बड़ी पेशी की क्रिया होती है। फल यह होता है कि टखने का जोड़ सीधा और कड़ा रहता है। इसी तरह घुटने का जोड़ सामने और पीछे की पेशियों की विपरीत क्रियाओं से सीधा बना रहता है। जाँघ के सामने की पेशियाँ शरीर को आगे खींचती हैं पर कमर के पास की पिंडली की पेशियाँ उसको पीछे खींचती रहती हैं। इसी तरह धड़ को बड़ी पेशी--कूल्हे के जोड़ पर धड़ से जांघ तक जाने वाली--की सामने की क्रिया और पीछे की पेशियों की विपरीत क्रियाओं से टिका रहता है। मेरुदंड के अगल-बगल वाली पेशियाँ शरीर को पीछे खींचती हैं, पर पेट और गले की पेशियाँ उसको आगे भी खींचे रहती हैं। सिर गर्दन के पीछे को पेशियों की क्रिया के कारण आगे को गिरने से रुका रहता

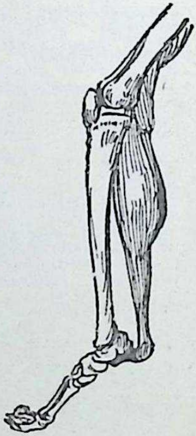

चित्र ३९--पिंडली की बड़ी पेशी की क्रिया

है। इस तरह सारे शरीर के सामने और पीछे की पेशियों की विपरीत क्रियाएँ शरीर को सीधा रखती हैं। छोटा बच्चा सीधा खड़े होने की चेष्टा में प्रायः गिरा पड़ता है। इसका कारण यह है कि उसे पेशियों की क्रियाओं को समझने और ठीक करने में कठिनाई होती और समय लगता है। जैसे ही इसे वह सीख जाता है, बिना प्रयास के वह खड़ा होने लगता है।

इस सम्बन्ध में यह भी समझना चाहिये कि नाड़ी-मण्डल से आई हुई उत्तेजनाओं से पेशियाँ सिकुड़ती हैं। यदि किसी तरह सिर पर जोर की चोट लगती है या नाड़ी-मण्डल को धक्का पहुँचता है, तो आदमी न केवल बेहोश हो जाता है। बल्कि गिर जाता है। ऐसी स्थिति में मस्तिष्क की उत्तेजना या नाड़ी सूत्रों की चेतना पेशियों तक नहीं पहुँचती और वे ढीली पड़ जाती हैं।

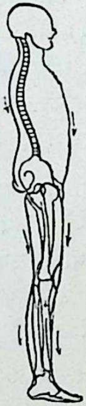

चित्र ४०—विपरीत क्रिया वाली पेशियों के सहारे शरीर का सीधा खड़ा रहना

चलते समय शरीर का बोझ एक पैर पर रहता है, जब दूसरा आगे को बढ़ा रहता है। जब आगे बढ़ा हुआ पैर जमीन पर गिरता है तो दूसरे पैर की पिंडली (thigh) की पेशियाँ सिकुड़ कर शरीर को पंजे पर उठाती हैं, जिससे यह ऊपर उठता और आगे जाता है। इसी तरह जब दायाँ पैर आगे उठता है तो बायाँ जमीन पर रहता है। ज्योंही दायाँ जमीन पर टिकता है बायाँ पैर पिंडली की पेशियों के सिकुड़ने से उठता और आगे बढ़ता है। फिर दायाँ बढ़ता है। इसी तरह दाएँ-बाएँ पैरों का बारी-बारी से आगे-पीछे बढ़ना और टिकना पेशियों के सिकुड़ने से होता है। तेजी से टहलते

समय बाँहे भी पैरों का साथ देती हैं। दाएँ पैर के साथ बाईं बाँह और बाएँ के साथ दाईं बाँह आगे और पीछे आती-जाती हैं। दौड़ने में यही गति होती हैं, जैसा कि चलने में किन्तु पेशियाँ बहुत जोर और तेजी से सिकुड़ती हैं, जिससे पैरों की गति तेज होती है, एड़ी जमीन पर नहीं पड़ती और थोड़ी-थोड़ी देर के लिए दोनों पैर जमीन से उठते रहते हैं।

उछलने में दोनों पैरों में एक साथ गति होती है दोनों पिंडलियों और जाँघों की पेशियाँ एक साथ सिकुड़ती हैं और टाँगों के एकाएक फैलने से शरीर ऊपर उठकर आगे को जाता है।

पेशियों की बनावट

पेशियों के बनने में कई पदार्थ काम में आते हैं। इनमें तीन-चौथाई भाग पानी और बाकी प्रोटीन (एक पदार्थ जिससे मांस बनता है) और प्राकृतिक नमक होते हैं। यदि पेशियों को दबाकर निचोड़ा जाय तो निकला हुआ रस थोड़ी देर में लेई की तरह जम जाता है। मरने पर यह रस जम जाता है इसी से मुर्दे का शरीर अकड़ जाता है।

मांस-पेशियाँ काम करने और फिर उचित आराम पाने से ही अच्छी स्थिति में रहती हैं। जो मांसवर्द्धक पदार्थ (प्रोटीन) हम खाते हैं; जैसे दूध, दाल, चना, अंडा या मांस, उनसे ही पेशियों को खुराक मिलती और उनकी पुष्टि होती है। इन्हीं से पेशियों में शक्ति पैदा होती है जिससे वे अपना काम करती हैं। इन पदार्थों के खाने से शरीर में गरमी भी पैदा होती है।

जब पेशियाँ काम नहीं करतीं उस समय उनमें एक तरह से माँड़ जैसा पदार्थ अधिक मात्रा में इकट्ठा होता है। काम करते समय यह पदार्थ पेशी के काम में आता है और जब पेशी को अधिक काम करना पड़ता है तो इसकी मात्रा भी बहुत कम हो जाती है।

मांस-पेशियाँ छूने में बहुत मुलायम होती हैं। उनमें बहुत-सी रुधिर की नलियाँ भी बहती हैं। रुधिर के कारण पेशियों का रङ्ग लाल होता है। कभी-

कभी पेशियों में चर्बी भी पायी जाती है और प्रायः उनके चारों तरफ चर्बी होती है, किन्तु गति मांस के ही कारण होती है।

पेशियों को अच्छी स्थिति में रखना—पेशियों को अच्छी स्थिति में रखने के लिए दो बातें आवश्यक हैं—(१) भोजन में उचित मात्रा में प्रोटीन (मांसवर्द्धक पदार्थ) का होना और (२) शक्ति भर व्यायाम। व्यायाम ऐसा हो जो अंग-अंग की पेशियों में गति उत्पन्न करे। बहुत से रोजगार ऐसे होते हैं जिनमें पेशियों का व्यायाम हो जाता है, पर जो बैठे-बैठे अपना काम करते हैं उनके लिए उचित व्यायाम आवश्यक है। जो लोग व्यायाम नहीं करते उनकी बहुत-सी पेशियाँ बेकार पड़ी रहती हैं और शरीर उतना बलवान नहीं हो पाता जितना होना चाहिए। व्यायाम के साथ-साथ विश्राम भी बहुत आवश्यक है, नहीं तो पेशियाँ जल्द घिस जाती हैं। अच्छा भोजन, स्वच्छ वायु, व्यायाम और विश्राम ये बातें मांस-पेशियों को क्या सारे शरीर को अच्छी स्थिति में रखने के लिए आवश्यक हैं।

व्यायाम पेशियों को पुष्ट करता है, क्योंकि जब व्यायाम किया जाता है तब पेशियों में गति पैदा होती है, उनका आकार बढ़ता है, उनमें नवीन रुधिर पहुँचता है और उनका विकास पुराने रुधिर के साथ फुप्फुस में शुद्ध होने के लिए चला जाता है।

व्यायाम करने से, पेशियों में रुधिर के अधिक प्रवाहित होने से हृदय की भी चाल बढ़ जाती है और फुप्फुस भी तेजी से शुद्ध वायु बाहर से खींचने और दूषित वायु बाहर फेंकने लगते हैं। इस प्रकार व्यायाम से शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक पहुँचती है, जो रुधिर के अन्दर एकत्र दूषित पदार्थ को साँस के साथ कार्बन डाइ-ऑक्साइड के रूप में निकाल देती है। इसके अतिरिक्त व्यायाम के कारण फुप्फुस में अधिक शक्ति आ जाती है और वह हर समय साँस के साथ अधिक ऑक्सीजन ग्रहण कर सकता है। हृदय की पेशियाँ भी दृढ़ होकर अधिक काम कर सकती हैं।

परन्तु व्यायाम शक्ति से अधिक न होना चाहिए, अन्यथा वह लाभ के बदले हानि पहुँचाता है। व्यायाम प्रारम्भ में थोड़ा करना चाहिए और बँधे समय पर करना चाहिए। ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ जाय, बढ़ाते जाना चाहिए। इतनी मात्रा में व्यायाम कभी न करना चाहिए कि थकान आ जाय। व्यायाम के पश्चात् शरीर में स्फूर्ति का अनुभव होना चाहिए। अधिक व्यायाम से हृदय का प्रसार हो जाने का डर रहता है। व्यायाम के साथ आराम भी उतना ही आवश्यक है, नहीं तो शरीर क्षीण हो जाता है।

विचार-शक्ति का गहरा प्रभाव शरीर पड़ता है। इसलिए एकाग्रचित्त होकर जो व्यायाम किया जाता है उसका प्रभाव कई गुना अधिक होता है। व्यायाम करते समय उन अंगों पर ध्यान रखना चाहिए जिनका व्यायाम हो रहा है और शरीर को उन्नति करते समय अनुभव करना चाहिए। इसीलिए पहलवान लोग व्यायाम के समय सामने बड़ा शीशा रख लेते हैं और उसमें शरीर को देखते हुए व्यायाम करते हैं।

परन्तु व्यायाम करने के लिए पुष्ट भोजन आवश्यक है। प्रोटीन-प्रधान पदार्थ जैसे; दूध, घी, मक्खन तथा गरीदार मेवा, चना, मूंगफली आदि का यथेष्ट सेवन होना चाहिए।

प्रश्न

१—हमारे शरीर में कितने प्रकार की मांस-पेशियाँ हैं। उनकी बनावट का वर्णन करो।

२—मांस-पेशियों में संकुचन और प्रसार का क्या कारण है? शरीर के गतिशील होने में मांस-पेशियों के ये गुण किस प्रकार उपयोगी होते हैं?

३—पेशियों का महत्त्व तथा उनको दृढ़ बनाने के उपाय लिखो।

४—व्यायाम करने से मांस-पेशियाँ दृढ़ क्यों होती हैं?

अध्याय ४

पाचक तंत्र

(THE DIGESTIVE SYSTEM)

भोजन

शरीर छोटे-छोटे कोशिकाओं से बने हुए ऊतकों से बना है। हम यह भी पढ़ चुके हैं कि यह मशीन की तरह है और मशीन की तरह का काम भी करता है। एक मशीन और हमारे शरीर में भेद यही है कि शरीर अपनी मरम्मत आप कर लेता है और जन्म के बाद कुछ वर्षों तक सभी तरह बढ़ता और उन्नति करता है, पर मशीन न तो अपनी मरम्मत आप कर सकती है और न कभी बढ़ती है। वह जैसे बनती है वैसे ही रह जाती है। किन्तु जसा कि ऊपर कहा गया है, शरीर मशीन की तरह काम करता रहता है। हृदय की धड़कन बराबर जारी रहती है और श्वास की क्रिया भी चलती रहती है। साथ ही और कई क्रियायें बराबर ही होती रहती हैं। ये तो हुए शरीर के अन्दर के काम। शरीर के बाहरी कामों में चलना, दौड़ना बातचीत करना इत्यादि हैं। इन कामों में पेशियों के सिकुड़ने से गति होती है और गति की अवस्था में बहुत से ऊतकों की कोशिकाएँ टूटती, बिगड़ती और छीजती रहती हैं। इस छीजन का पूरा हो जाना आवश्यक है, नहीं तो शरीर बहुत दिनों तक चल नहीं सकता। फिर शरीर को गर्मी भी चाहिए। ये दोनों बातें--शरीर को गर्म रखने और छीजन की पूर्ति—खाए हुए भोजन से ही होती है। भोजन से रुधिर बनता है और रुधिर शरीर में घूम-घूम कर अंग-प्रत्यंग को, हर एक कोशिका को, उसका भोजन पहुँचा देता है। यदि रुधिर में शरीर को अच्छी स्थिति में बनाए रखने के लिए सभी पदार्थ हैं तो शरीर स्वस्थ रहता और

अपने सभी काम ठीक-ठीक करता है, नहीं तो शरीर कमजोर पड़ जाता है और उसमें तरह-तरह की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। इसलिए भोजन पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है। ऊपर की बातों को ध्यान में रखते हुए भोजन के निम्नलिखित उपयोग हो सकते हैं :—

(१) शरीर में काम करने की शक्ति उत्पन्न करना और शरीर को फुर्तीला बनाना, (२) शरीर की छीजन को पूरा करना और (२) शरीर को बढ़ाने के लिए नई कोशिकाओं के उत्पन्न होने के लिए आवश्यक पदार्थ देना।

ये तीनों बातें भोजन से होती हैं; पर भोजन के हर पदार्थ में ये तीनों गुण नहीं रहते। खाने की कुछ चीजें ऐसी हैं, जिनसे गर्मी और शक्ति मिलती है, कुछ ऐसी हैं, जो टूटी-फूटी कोशिकाओं की मरम्मत में सहायक होती हैं। कुछ खाद्य-पदार्थ जीवन-शक्ति बढ़ाते हैं और कुछ रुधिर को अच्छी अवस्था में रहने में सहायक होते हैं। यदि हम खाद्य-पदार्थों की रासायनिक जाँच करें तो हर पदार्थ में ऊपर बताए गुणों में से एक या कई गुण मिलेंगे। गुणों के अनुसार खाद्य-पदार्थ छः प्रकार के हैं—(१) **कार्बोहाइड्रेट** (carbohydrates), (२) **प्रोटीन** (proteins), (३) **वसा** (fats), (४) **पानी** (water), (५) **खनिज लवण** (mineral salts) और (६) **विटामिन (खाद्योज,** vitamins)।

कार्बोहाइड्रेट श्वेतसार—इनमें **कार्बन** (carbon), **हाइड्रोजन** (hydrogen), **ऑक्सीजन** (oxygen) का सम्मिश्रण रहता है। इन पदार्थों को अच्छी तरह चबाने से सफेद लेई की तरह चीज बनती है और बहुतों में शुरू से ही और कुछ में अन्त में मिठास मालूम होती है। यह मिठास इसलिए है कि इन पदार्थों में शक्कर प्रत्यक्ष या छिपी रहती है। कार्बोहाइड्रेट पदार्थों से शरीर को गर्मी और शक्ति मिलती है। इन पदार्थों में कई तरह के अनाज; जैसे—गेहूँ, चावल, जौ-बाजरा इत्यादि; कन्दमूल; जैसे—आलू, शकरकंद इत्यादि, फल; जैसे—केला, अमरूद इत्यादि आते हैं। ऐसे और पदार्थ भी हैं जिनमें श्वेतसार (माड़ी)

का आधिक्य रहता है। गन्ना, चुकन्दर, छुहारा, खजूर, मुनक्का, अंजीर इत्यादि में कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रा में होता है। गुड़, चीनी शुद्ध कार्बोहाइड्रेट के उदाहरण हैं।

प्रोटीन--इसमें कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन (nitrogen) और गन्धक (sulphur) का मिश्रण रहता है। इन पदार्थों के काम हैं--कोशिकाओं और ऊतकों को बनाना और उनके टूटने-फूटने पर उनकी मरम्मत करना। इनसे कुछ गर्मी और शक्ति भी मिलती है, पर ऊपर बताए गए काम इनके मुख्य काम हैं।

अनाज में सब तरह के दलहन, जैसे--चना, मसूर इत्यादि; भाजियों में मटर, लोबिया (बोड़ा); फलों में गिरीदार मेवे,, जैसे--बादाम, अखरोट इत्यादि; दूध और दूध के बने पदार्थ, जैसे—पनीर इत्यादि; मांस, मछली और अण्डा मांसवर्द्धक पदार्थ हैं। इनमें दूसरे-दूसरे पदार्थ भी रहते हैं, जैसे--अखरोट और मूंगफली में चिकनाई; दूध में चिकनाई और शक्कर; पर इनमें प्रोटीन (मांसवर्द्धक पदार्थ) की ही मात्रा अधिक रहती है। इसी तरह गेहूँ में भी, जैसा कि ऊपर बताया गया है, प्रोटीन की कुछ मात्रा रहती है, पर उसमें कार्बोहाइड्रेट का आधिक्य है।

वसा--चिकनाई देने वाले पदार्थों में भी, कार्बोहाइड्रेट पदार्थों की तरह कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन रहता है। वसा के हर पदार्थ में एक तरह की चर्बीदार खटाई और ग्लीसरीन का सम्मिश्रण रहता है। जब किसी भी चिकनाई के पदार्थ पर क्षार (खार) का प्रभाव पड़ता है तो साबुन और ग्लीसरीन बनती है। चिकनाई का मुख्य काम गर्मी और शक्ति देना है। उससे शरीर के गड्ढे भी भरते हैं और शरीर भरा-पुरा, चिकना मालूम होता है।

वसा दो तरह की है। एक वह जो जानवरों से मिलती है, जैसे—मक्खन, घी इत्यादि; दूसरी वह जो वनस्पति से मिलती है; जैसे--सरसों, तिल, नारियल

का तेल, इत्यादि। जैसे ऊपर बताया गया है, दूध के अन्दर वसा है और अखरोट बादाम, मूंगफली इत्यादि मेवे में भी वसा है।

पानी--अपने वास्तविक रूप के अतिरिक्त पानी फलों, तरकारियों और दूध जैसे पदार्थ से भी मिलता है। पानी का काम है पचे हुए भोजन को घुलाना और उसको शरीर में सोखे जाने योग्य बनाना, रुधिर को तरल रखना और शरीर के विकारों को बाहर निकालना। शरीर से विकार निकालने वाले जितने भी अंग हैं वे सभी रुधिर से पानी को अलग करते हैं। वृक्क, फुप्फुस, त्वचा और आंत्र के रास्ते प्रतिदिन शरीर से लगभग डेढ-दो किलोग्राम पानी निकल जाता है। भोजन से लगभग ३५० ग्राम पानी शरीर को मिल जाता है, बाकी कमी पानी पी कर ही पूरी की जा सकती है।

खनिज लवण--भोजन के पदार्थों में विशेषकर साग-भाजी और फलों में बहुत तरह के प्राकृतिक लवण (नमक) पाए जाते हैं। ये पाचन क्रिया को ठीक रखते, हड्डियों के बनाने में सहायता देते और रुधिर को ठीक अवस्था में रखते हैं। स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए इन प्राकृतिक औषधियों को भोजन के सहारे शरीर में अवश्य पहुँचाना चाहिए। चूना और लोहा के अंश खनिज लवणों में मुख्य हैं। दूध से चूने का अंश मिलता है, जो हड्डियों के बनने और मजबूत रहने में सहायक होता है। लोहे का अंश अधिकांश कई ताजे और सूखे फलों, साग-भाजी, दलहन तथा अनाजों से मिलता है। रुधिर में लाल कण लोहे से बनते हैं।

विटामिन--'विटामिन' एक अंगरेजी शब्द है, पर भारतीय भाषाओं में भी बहुत प्रचलित है। हिन्दी में इसे 'खाद्योज' भी कहते हैं, जिसका अभिप्राय है खाद्य-पदार्थ का 'ओज' या 'शक्ति'। कई प्रयोगों से मालूम हुआ कि शरीर को अच्छा और स्वस्थ अवस्था में बनाए रखने के लिए कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, पानी और खनिज लवण के अतिरिक्त और पदार्थों की आवश्यकता है और ये पदार्थ प्रायः सभी प्राकृतिक फल, साग-भाजी और दूध में पाये जाते हैं। ये पदार्थ आवश्यक हैं और अनायास ही ताजे फलों,

साग, दूध और अनाज में भी पाए जाते हैं, पर इनमें से बहुत-से आग की गर्मी और खाने की चीज के बहुत दिनों तक रखे रहने से नष्ट हो जाते हैं । अब तक पाँच तरह के विटामिनों का पता लगा है, पर अब भी इसकी खोज जारी है । इन विटामिनों में से मुख्यतः ५ हमारे लिए अत्यन्त आवश्यक हैं ।

(१) **विटामिन 'ए'**—यह वसा में घुलने वाला विटामिन है, यह कुछ विशेष प्रकार की वसा, जैसे कॉड नामक मछली के जिगर का तेल, मक्खन, अण्डे की जर्दी (पीला पदार्थ) और पत्ती वाली हरी भाजियों में पाया जाता है। यह विटामिन साधारणतः स्वास्थ्य को बनाए रखने और शरीर को बीमारी से बचने योग्य बनाने में सहायक होता है । भोजन में इसके रहने से पाचन-शक्ति ठीक रहती है, भूख लगती है और आयु बढ़ती है । आँख, गला और साँस लेने से अवयवों को ठीक दशा में रखने के लिए यह विटामिन आवश्यक है । इसकी कमी से **रतौंधी** (Night Blindness) तथा कुछ चर्म रोग हो जाते हैं ।

(२) **विटामिन 'बी'**—यह पानी में घुलने वाला विटामिन है और पौधों के बीज, अण्डे की जर्दी, बहुत तरह के फल, भाजी, पूरे गेहूँ व बिना छंटे चावल और ताजी सेम और मटर में पाया जाता है। गेहूँ जैसे अनाजों में यह ऊपरी छिलके के ठीक नीचे रहता है । यदि गेहूँ को मिल में पीस कर आटा बनाया जाय और चोकर निकाल लिया जाय तो यह विटामिन भी निकल जाता है । मिलों के पिसे आटे में ८०% विटामिन मर जाते हैं । विटामिन 'बी' तन्त्रिका ऊतकों को ठीक दशा में रखता है । तन्त्रिका-तन्त्र की बहुत सी बीमारियों से, जिनमें 'बेरी-बेरी' एक है, यह विटामिन बचाता है । विटामिन 'ए' की तरह विटामिन 'बी' भी पाचन-क्रिया को ठीक रखता, भूख बढ़ाता और शरीर की बाढ़ में सहायक होता है । त्वचा की भी कुछ बीमारियों से विटामिन 'बी' शरीर को सुरक्षित रखता है ।

(३) **विटामिन 'सी'**—यह पानी में घुलने वाला विटामिन है और बहुत से रसदार फलों और भाजियों में पाया जाता है । संतरा, नारंगी, नीबू में यह

विशेष रूप से रहता है। आँवले में सबसे अधिक विटामिन 'सी' होता है। सुखाने या पकाने से यह विटामिन मर जाता है। परन्तु सुखाने से आँवला में बहुत कम मरता है। त्वचा और रुधिर की बीमारियों से यह बचाता है। इसकी कमी से स्कर्वी नामक बीमारी होती है।

(४) **विटामिन 'डी'**—यह चिकनाई में घुलने वाला विटामिन है। कॉड मछली के जिगर के तेल, दूध, मक्खन, घी, अंडे की जर्दी में यह विटामिन पाया जाता है। यह सूखा रोग से बचाव करता और हड्डियों की पूरी उन्नति में सहायक होता है। यह दाँतों के बनने और दांत एवं हड्डियों को ठीक हालत में रखने में सहायक होता है। सूर्य की रोशनी द्वारा भी इसका निर्माण होता है।

(५) **विटामिन 'इ'**—यह भी वसा में घुलने वाला विटामिन है और गेहूँ जैसे अनाज के अंकुर (कल्ले) और भाजियों में पाया जाता है। जननांग (Reproductive organs) पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है और भोजन में इस विटामिन के नहीं रहने से संतान-उत्पन्न करने की शक्ति दुर्बल होती है या जाती रहती है।

इन दोनों खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में ऐसा समझा जाता है कि उनमें इन सभी विटामिन का होना आवश्यक है। यदि भोजन में विटामिनों का अभाव हो तो स्वास्थ्य में गड़बड़ी हो जाती है और कई तरह के रोग हो जाते।

अच्छे भोजन की पहिचान—अच्छा भोजन वही है, जिसमें ऊपर बताए पदार्थों में से सभी पदार्थ उपस्थित हों। गर्मी और फुर्ती के लिए कार्बो-हाइड्रेट और वसा हो, छीजन को पूरा करने और पेशियों को ठीक दशा में रखने के लिए प्रोटीन हो, भोजन को घुलाकर तन्तुओं तक पहुँचाने और शरीर के विकारों को बाहर निकालने के लिए पर्याप्त मात्रा में पानी हो और साधारणतः स्वास्थ्य को ठीक रखने और बीमारियों से बचाव के लिए खनिज लवण और विटामिन हो।

कहा जाता है कि साधारणतया काम करने वाले आदमी के लिए दिन भर में लगभग १२० ग्राम प्रोटीन, ५५० ग्राम कर्बोज, ५८ ग्राम चिकनाई और

५८ ग्राम से कुछ कम खनिज लवण की आवश्यकता है। जो आदमी कठिन परिश्रम करता है उसके लिए अधिक प्रोटीन पेशियों को अच्छी स्थिति में रखने के लिए, अधिक कार्बोहाइड्रेड शक्ति देने के लिए और वसा शरीर में गर्मी और फुर्ती लाने के लिए चाहिए। सच तो यह है कि भोजन की मात्रा का सब के लिए ऊँचा-बँधा परिमाण नहीं निश्चित किया जा सकता। आदमियों के काम-काज, आयु, शरीर का भार और स्वास्थ्य की स्थिति पर यह परिमाण निर्भर है। भारतीय भोजन में रोटी, दाल, चावल, घी, दूध, दही और भाजी का समावेश रहता है, जिसमें शरीर के लिए सभी आवश्यक पदार्थ सरलता से मिल जाते हैं, पर खेद है कि किसान और मजदूरों को या और शारीरिक परिश्रम करने वाले श्रमजीवियों को घी-दूध या तो बिल्कुल नहीं मिलता या पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता है। दूध ही एक ऐसा खाद्य-पदार्थ है जिसमें शरीर के पोषण और उसके बल को बनाए रखने के लिए सभी चीजें विद्यमान हैं; पर इन दिनों भारत में अच्छे दूध का मिलना एक समस्या ही

भोजन के सम्बन्ध में सभी बातें इस पुस्तक में नहीं बताई जा सकतीं। रोगी का कुछ भोजन है और स्वस्थ आदमियों का कुछ। किसी अवस्था में मांसवर्द्धक पदार्थ का अधिक व्यवहार आवश्यक है और किसी अवस्था में यह बिल्कुल त्याज्य है। अपच रोग वालों को या किसी भी जीर्ण रोग के रोगी को कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन को साथ न खाना चाहिए। फिर सभी के प्रतिदिन के भोजन में बिना पकी सब्जी-भाजी, जैसे—टमाटर, मूली, प्याज, गाजर इत्यादि और मौसम के ताजे फलों को उचित स्थान मिलना चाहिए। भोजन सम्बन्धी सभी सिद्धान्तों को जानने के लिए विद्यार्थियों को और कई पुस्तकें पढ़नी चाहिए।

भोजन का पचना

भोजन पचने के सम्बन्ध में और बातें लिखने से पहले यह कह देना आवश्यक है कि यह विषय पाचक तंत्र (Digestive System) का है। साथ ही यह जानना चाहिए कि—(१) शरीर का पोषण और (२) शरीर के

विकारों का बाहर निकल जाना दो क्रियाएँ तो हैं, पर सच्ची बात यह है कि वे दोनों एक-दूसरे से बहुत सम्बन्ध रखती हैं। शरीर का पोषण अंशों में उचित खानपान से होता है। जब खाया हुआ भोजन और पिये गए तरल पदार्थ जैसे—दूध, माठा, फल और भाजी के रस, पानी इत्यादि अच्छी तरह पच जाते हैं, तभी उनसे शरीर के पोषण के लिए विकार-रहित रस और रुधिर बनते हैं। भोजन का जो भाग शरीर में लग जाता है वह तो उसके काम आ जाता है, पर जो भाग शरीर में नहीं लगता वह विकार है। वह शरीर के काम का नहीं है। उसे मल-मूत्र, पसीने के रूप में शरीर के बाहर निकल जाना चाहिए। यदि वह पूरा-पूरा नहीं निकलता तो शरीर के अन्दर सड़न पैदा होती है, जिनसे सभी तरह की बीमारियाँ होती हैं। भोजन का अच्छी तरह पचना, शरीर में लगना और उसके बचे हुए अंश का शरीर के बाहर निकल जाना भोजन के अच्छा होने और शरीर के स्वस्थ होने पर निर्भर है।

यह भी समझना चाहिए कि खाना खाए हुए भोजन का पचना, पचे भोजन का रस निकाला जाना और बचे हुए अंश का बाहर फेंक दिया जाना बहुत कुछ एक ही अंग का काम है, जिससे हम भोजन की नली, भोजन की प्रणाली (आहारनाल, Alimentary canal) कहते हैं। वह मुँह से प्रारम्भ होकर मलद्वार तक जाती है। उसका आरम्भ मुँह और अन्त अवस्कर द्वार (Anus)। दोनों के बीच में बहुत से अंग और अवयव हैं; जिनका वर्णन आगे आयेगा और जिसमें भोजन का पाचन और विकारों के निकाले जाने की क्रिया पूरी होती है। ऐसा नहीं है कि भोजन पचाने का अंग कोई और है और विकार निकालने का अंग और, दोनों एक ही बड़े अंग के भाग हैं। फिर भोजन का पाचन केवल पेट की थैली (आमाशय, Stomach) में न होकर मुँह से प्रारम्भ हो जाता है और छोटी आंत्र तक जारी रहता है।

इस पाठ में केवल भोजन की पाचन-क्रिया बताई जायगी। विकार निकालने की क्रिया का वर्णन आगे आयेगा।

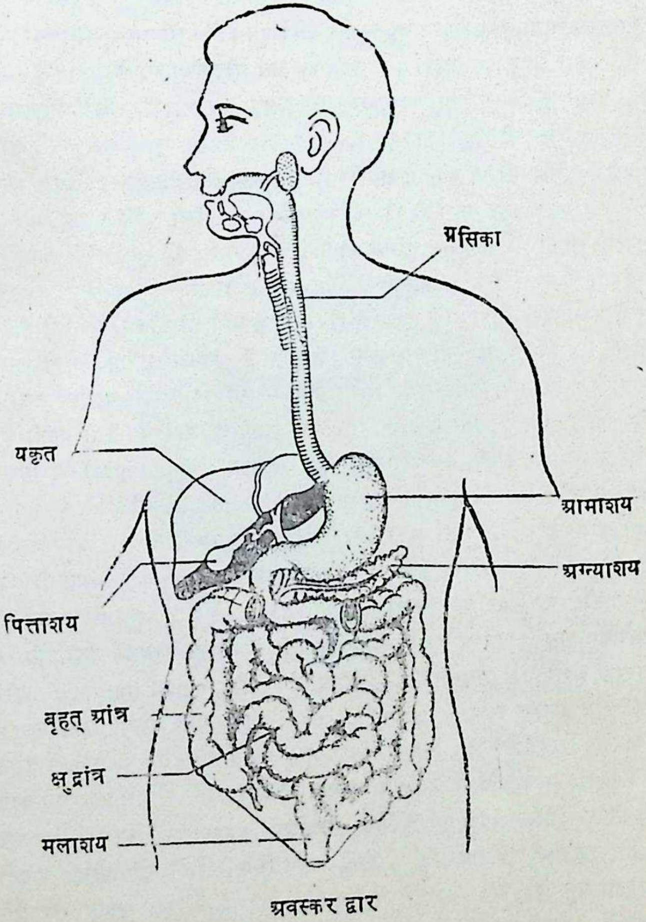

चित्र ४१--पाचक तंत्र

पाचन और (Digestion) आहारनाल--पाचन उस क्रिया को कहते हैं जिससे खाया हुआ भोजन बहुत छोटे-छोटे टुकड़े में किए जाने और चवा-चवा कर अच्छी तरह पिसे जाने पर तथा फिर कई और क्रियाओं के वाद इस योग्य हो जाता है कि उसका सार-तत्व खिच कर वहुत कुछ, रुधिर परिसंचरण में पहुँच जाता है। इस पाचन का बहुत कुछ, प्रवन्ध एक लम्बी नली द्वारा होता है, जिसे भोजन की नली (**आहार नाल, alimentary canal**) कहते हैं। यह नली कहीं पर सँकरी और कहीं बहुत फैली हुई है। यह मुँह से प्रारम्भ होकर गले के पास **ग्रसनी** (pharynx) नाम की कुछ चौड़ी जगह में पहुँचती है, जहाँ नाक के भीतरी छेद, कान की छोटी नलियाँ और हवा की नली का ऊपरी सिरा भी रहता है। ग्रसनी के बाद ही भोजन की नली सँकरी होकर मुलायम पेशियों की एक नली रह जाती है। पहला भाग २५ सेमी लम्बा होता है। इस २५ सेमी लम्बान के वाद भोजन की नली हवा की नली के ठीक पीछे होती हुई गले के नीचे उतर कर छाती के भाग में चली जाती है। फिर उदर और छाती के बीच वाली पेशी **मध्यपट** (diaphragm) से निकल कर यह नीचे उतरती है और तब **आमाशय** (stomach) की थैली के रूप में फैल जाती है। यह थैली बड़ी और जरा बाईं ओर होती है। आमाशय के दो दरवाजे हैं, एक तो ऊपर वाला, जिसे **जठरागम** (cardia) कहते हैं और दूसरा नीचे का जिसे **जठरनिर्गम** (pylorus) कहते हैं। आंत्र भी भोजन की नली का भाग है, पर आंत्र आमाशय की थैली के निचले दरवाजे जठरनिर्गम से प्रारम्भ होती है। आंत्र दो हैं--छोटी आंत्र (क्षुद्रांत्र, small intestine) और बड़ी आंत्र (बृहत् आंत्र, large intestine)। छोटी आंत्र लम्बाई में लगभग ७ मीटर है, जिसमें से पहले २५ सेमी के भाग को **ग्रहणी** (duodenum) कहते हैं। ग्रहणी आधे चांद के आकार का होता है और उसके घेरे में एक बड़े काम की गिल्टी (ग्रन्थि, gland) है जिसे **अग्न्याशय** (pancreas) कहते हैं। ग्रहणी में ही यकृत और अग्न्याशयी वाहिनी आ मिलती हैं, उनसे पाचन क्रिया के लिए आवश्यक रस ग्रहणी में पहुँचता है। ग्रहणी के वाद क्षुद्रांत्र का शेष भाग है। इसकी कई तहें एक-दूसरे के ऊपर पड़ी-सी हैं। क्षुद्रांत्र जहाँ समाप्त

ोती है वहाँ से बृहत् अांत्र की नली आरम्भ होती है। बृहत् अांत्र की नली क्षुद्रांत्र की नली से चौड़ी है, पर उसको लम्बाई कम है। यह लगभग २ मीटर लम्बी है—जहाँ पर क्षुद्रांत्र बृहत् अांत्र से मिलती है, ठीक उसके नीचे एक थैली है, जिसे **अन्धनाल** (caecum) कहते हैं। अन्धनाल से एक १० से १२ सेमी लम्बी बन्द नली लटकती है, जिसका नाम **कृमिरूप परिशोषिका** (vermiform appendix) है। यह याद रखना चाहिए कि

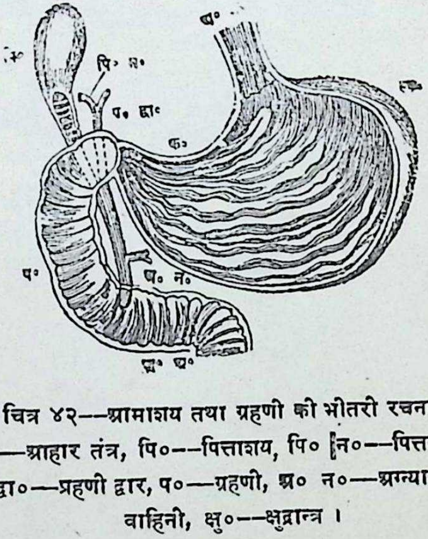

चित्र ४२—आमाशय तथा ग्रहणी की भीतरी रचना
आ० प्र०—आहार तंत्र, पि०—पित्ताशय, पि० न०—पित्तवाहिनी, प० द्वा०—ग्रहणी द्वार, प०—ग्रहणी, अ० न०—अग्न्याशयी वाहिनी, क्षु०—क्षुद्रान्त्र।

अन्वनाल पेट में दाहिने तरफ है और उसमें ऊपर से ही बृहत् अांत्र (colon) आरम्भ हो जाती है। बृहत् अांत्र पहले पेट के दाहिने भाग में ऊपर को जाती है। फिर वहाँ से यकृत और आमाशय के नीचे से निकलती हुई बाईं तरफ जाती है और अांत्र में बाईं तरफ नीचे को उतर आती है। इसका बिल्कुल

अन्तिम भाग मलाशय (rectum) है, जिसके बाहरी दरवाज को गुदा (anus) कहते हैं।

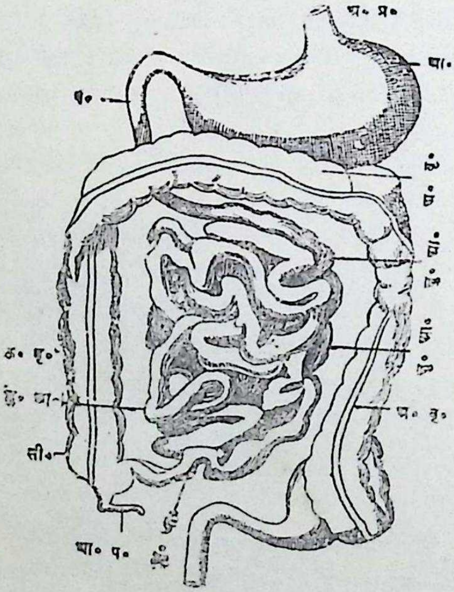

चित्र ४३—सम्पूर्ण पाचक-तंत्र का काल्पनिक चित्र
अ० प्र०—आहार-तंत्र, प०—ग्रहणी, आ०—आमाशय,
ऊ० वृ०—उर्ध्वगामी वृहदान्त्र, क्षु० आ०—क्षुद्रान्त्र,
अ० वृ०—अधोगामी वृहदान्त्र, अ० प०—कृमिरूप
परिशोषिका, सी०—अन्धनाल।

इस तरह जैसा कि ऊपर बताया गया है, आहार नली एक लम्बी नली है, जिसका आरम्भ मुंह से होता है और अन्त मलद्वार या गुदा (anus) में।

इसी में बहुत-से भाग और यन्त्र हैं, जिनमें खाया गया पदार्थ पचता है और उसका रस शरीर में ले लिया जाता है। बचा हुआ भाग बृहत् आंत्र और मलाशय के रास्ते से मल के रूप में बाहर फेंक दिया जाता है।

पाचन क्रिया--जैसे ही भोजन मुँह में पहुँचता है दांत उसे चबाने लगते हैं। दांत उसके छोटे-छोटे टुकड़े करते और उन्हें अच्छी तरह पीसते हैं। इसमें जीभ से भी सहायता मिलती है। जीभ उन्हें बार-बार डाढ़ों के नीचे ढकेल कर अच्छी तरह पिसवाती है। इस पीसने की क्रिया के साथ ही लार की ग्रंथियों से लार भी निकलकर भोजन में मिलता है। अब खाई हुई चीज नीचे उतरने के योग्य हो जाती है। इस समय भी जीभ सहारा देती है। वह भोजन को मुखगुहा (Gullet) पर ढकेल देती है और भोजन ग्रसिका (Oesophagus) (भोजन की नली के आरम्भ का भाग) में पहुँच जाता है। भोजन के नली के बार-बार सिकुड़ने से भोजन नीचे की ओर बढ़ता और आमाशय की थैली में पहुँचता है। आमाशय की पेशियों के सिकुड़ने और फलने से भोजन बार-बार इधर से उधर चलाया और घुमाया जाता है। यहाँ उसमें कुछ पचाने वाले रस भी आ मिलते हैं, बार-बार चलाए और घुमाये जाने से तथा रसों की क्रिया से भोजन का बहुत-सा अंश पच जाता है और वह इस योग्य हो जाता है कि धीरे-धीरे ग्रहणी (Duodenum) से क्षुद्रांत्र नाम के भाग में चला जाय। जब भोजन ग्रहणी में आता है तो वहाँ उसमें क्लोम और यकृत (Liver) से रस आकर मिलते हैं और उसका जो अंश आमाशय में नहीं पचता है, वह ग्रहणी में इन रसों की क्रिया से पचता है। अब भोजन इस योग्य हो जाता है कि उसका तत्त्व (रस) शरीर में खिच जाय। ज्यों-ज्यों वह क्षुद्रांत्र में आगे बढ़ता जाता है, यह रस खिचने लगता है और उससे रुधिर बनने की क्रिया जारी रहती है। क्षुद्रांत्र से जुटी हुई रुधिर की पतली वाहिनी से होकर रुधिर शरीर के बहुत से भाग में चला जाता है। अब भोजन में शरीर के योग्य कोई पदार्थ नहीं रह जाता। उसका बचा-बचाया भाग मल के रूप में बृहत् आंत्र में चला जाता है। बृहत् आंत्र में एक विशेष कार्य होता है जो बचा

हुआ पानी का अंश इस मल के साथ रहता है, वह बृहत् आंत्र में सोख लिया जाता है और मल अवस्कर द्वार से होकर बाहर निकल जाता है।

भोजन पचाने वाले अंग

ऊपर संक्षेप में पाचन-क्रिया बताई गई है। इसका पूरा हाल तभी मालूम हो सकता है जब हम उन अंगों को अच्छी तरह जान लें, जिनसे पाचन-क्रिया होती है। ऊपर बताया जा चुका है कि भोजन-क्रिया मुँह से आरम्भ होकर आंत्र तक जारी रहती है इसलिए मुंह से लेकर आंत्र तक के अलग-अलग अंगों और यंत्रों का हाल जानना आवश्यक है।

मुँह--भोजन की नली मुंह से ही आरम्भ होती है। मुंह उस नली का ऊपरी खुला भाग है। मुंह के अन्दर अगल-बगल में गाल हैं, ऊपर ऊपरी जबड़ा (ऊर्ध्वहनु, Upper jaw) है और नीचे जीभ है। जब मुंह बन्द रहता है तो ऊपर और नीचे के दांत बीच में आकर मिलते हैं, मुंह के पीछे गला है और गले के दोनों ओर टान्सिल (Tonsil) नाम की ग्रथियां हैं।

दाँत--दांतों का काम है भोजन को अच्छी तरह चबाना, जिससे वह इस योग्य हो जाय कि **पाचकरस** (Digestive juice) उस पर अपना काम अच्छी तरह कर सकें और भोजन ठीक-ठीक पच जाय।

आदमी के जीवन में दाँत दो बार उगते हैं। सबसे पहले दूध के दाँत निकलते हैं। फिर कुछ साल बाद उनकी जगह असली दांत (अन्न के दांत) निकलते हैं। दूध के दांत २० ही होते हैं और असली दांत ३२। दूध के दाँत जन्म के बाद छठे महीने तक में निकलने लगते हैं। असली दाँतों की अपेक्षा ये कुछ छोटे और कमजोर होते हैं। सबसे पहले निचले जबड़े (अधोहनु, Lower jaw) में आगे की ओर बीचोबीच दो दूध के दांत निकलते हैं। तीन साल की उम्र तक सभी दूध के दांत निकल आते हैं। छठे या सतावें साल में ये दांत एक-एक करके गिरने लगते हैं और १२ साल की उम्र लगते-लगते ये सब गिर जाते हैं। बात यह है, जैसे-जैसे असली दाँत उगते हैं, दूध के दाँतों को धीरे-धीरे ढकेल-ढकेल कर बाहर गिरा देते हैं।

दूध के दाँत २० होते हैं और असली दांत ३२, पर सभी असली दांत आरम्भ में ही नहीं उगते। चौदह साल की उम्र तक २८ दाँत निकल आते हैं; शेष चार दाँत २२ साल की उम्र में निकलते है।

ये ३२ दाँत सभी एक तरह के नहीं होते। इनके काम अलग-अलग होते हैं और काम के अनुसार इनके प्रकार और नाम हैं। पहले यह जानना चाहिए कि ऊपर-नीचे के जबड़ों में दाँतों की संख्या बराबर होती है। ऊपरी जबड़े में १६ और नीचे के जबड़े में भी १६ दाँत हैं। सामने के चपटे दाँत काटने वाले दाँत (कृंतक दंत, Incisors or cutter teeth) हैं। ये ऊपर ४ और नीचे ४, कुल आठ हैं। फिर इनके बाद दोनों तरफ एक-एक लम्बा और नुकीला दाँत है, जो फाडने वाला दाँत (रदनक दंत, Canine) कहलाता है। रदनक दंत ४ हैं। कुत्ता, बिल्ली, चीते आदि मांस खाने वाले जानवारों में रदनक दंत अधिक लम्बे और नुकीले होते हैं। इनके दोनों तरफ दो-दो कुचलने वाले दाँत (अग्र-चर्वणक दंत, pre-molars) हैं। ऊपर और निचले जबड़ों में ये ८ हैं। सबसे अन्त में दोनों तरफ तीन-तीन चबाने वाले दाँत (चर्वणक दंत, molars; दाढ़, grinders) हैं। इन्हीं में से सबसे अन्तिम दांत अक्ल दाढ़ (प्रौढ़िज दंत Wisdom Teeth) कहलाता है। इस तरह ऊपर-नीचे कुल मिलाकर ३२ दांत (कृंतक दंत ८+रदनक दंत ४+अग्रचर्वणक दंत ८+चर्वणक १२) होते हैं।

ये दांत इसलिए हैं कि खाई हुई चीज काटने, फाड़ने, कुचलने और चबाने के बाद इस तरह बन जायँ कि उसके पचने में सुगमता हो। ये अच्छी स्थिति में तभी रहते ह जब कि इनसे खूब काम लिया जाता है। हलवा-खीर जैसे मुलायम चीजों के बहुत खाने से इनका व्यायाम नहीं होता और ये कमजोर पड़ जाते है। बहुत ठंडी या गर्म चीजें खाने से भी दांतों में कमजोरी आ जाती है। गर्म पदार्थ के बाद ही ठंडी चीज खाने से भी दांतों में कमजोरी आती है। सफाई भी आवश्यक है, पर बाजारू मंजन और दवाइयों से प्रायः दांत खराब और कमजोर हो जाते हैं। नीम, बबूल (कीकर) की दतून दाँतों की सफाई के लिए अच्छी होती है। दाँतों के खराब हो जाने से पाचन-क्रिया ठीक-ठीक नहीं हो पाती और

पाचन की गड़बड़ी से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है । इसलिए फल और कच्चे चने जैसे चीजों को खा-खाकर दाँतों और स्वास्थ्य को ठीक रखना चाहिए ।

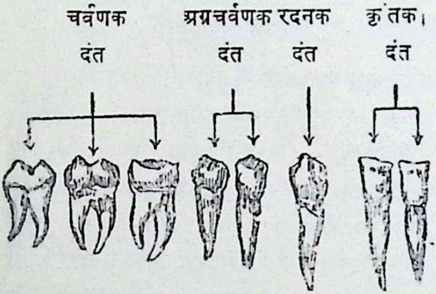

चित्र ४४--एक तरफ आधे जबड़े में ८ दांत

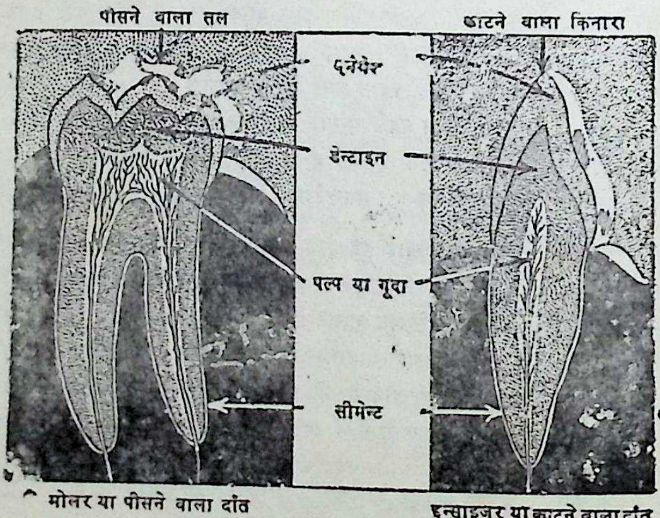

चित्र ४५--दांत के भाग

दाँतों की बनावट--दाँत जबड़े में जड़े हैं। जो भाग जबड़े के अन्दर रहता है वह जड़ या फैंग (fang) कहलाता है। जड़ या फैंग के ऊपर सीमेंट की तरह का एक पदार्थ रहता है, जिसके सहारे दाँत जबड़े के अन्दर चिपका रहता है। मसूड़े के आगे जो बाहरी भाग है वह शिखर (crown) है। कृंतक दंत और रदनक दंत की एक ही जड़ होती है, चर्वणक दंत वालों की दो और चर्वण दंत वालों की तीन।

दाँतों का बाहरी सफेद भाग हड्डी की तरह के एक पदार्थ का होता है, जिसे दन्त वल्क या इनेमल (enamel) कहते हैं। दन्त वल्क या इनेमल के नीचे की चीज को डेन्टीन (dentine) कहते हैं। इसका रंग भी सफेद या पीलापन लिए होता है।

दाँत अन्दर से खोखला होता है। उस खोखले को मज्जागुहा (central cavity, pulp cavity) कहते हैं। खोखले में दन्त-मज्जा (tooth pulp) होता है जिसमें पतली-पतली बारीक रुधिर केशिकाएँ, बहुत पतले तन्त्रिका-जाल योजी ऊतक और कई तरह के कोशिका होते हैं। हर दाँत की जड़ में एक छोटा छेद होता है। इसी छेद से रुधिर केशिकाएँ और तन्त्रिका-जाल खोखले में आते हैं।

होंठ (होंठ) और श्लेष्मा-झिल्ली--भोजन के मुँह में जाने और उसको पचाने योग्य बनाने में होठ भी अपना काम करता है। यह एक तरह से मुँह का दरवाजा है। होठों (ऊपर और नीचे के होठ) में बहुत-से तन्त्रिका-जाल हैं, जिनसे होठ को अनुभव करने और कुछ विशेष प्रकार के काम करने की शक्ति मिलती है। जो चीज खाने योग्य नहीं है उसको होठ या तो मुँह के अन्दर जाने नहीं देते या तुरन्त निकाल कर बाहर फेंक देते हैं। छोटे बच्चों में होठ की यह करामात प्रायः देखी जाती है।

दोनों होठ एक तरह से बहुत पतली त्वचा से ढके होते हैं। मुंह के अन्दर इस त्वचा की जगह एक झिल्ली रहती है जिसे श्लेष्मा-झिल्ली (mucous membrane) कहते हैं। श्लेष्मल एक तरह का चिकना और

लसदार पदार्थ है, जो कफ के रूप से भी प्रकट होता है। जुकाम और खाँसी की बीमारियों में श्लेष्मल से कष्ट होता है, पर है यह बड़े काम की चीज। यह बीमारी के बहुत छोटे कीड़ों को हमारे शरीर में घुसने नहीं देता। श्लेष्मल के मुँह में रहने से ही मुँह का भीतरी भाग नहीं चिपकता। खाई हुई चीज के साथ श्लेष्मल मिल जाता है, जिससे भोजन सुगमता से फिसलता हुआ आमाशय तक पहुँच जाता है। श्लेष्मा-झिल्ली से श्लेष्मल का निकालना स्नायु-तन्त्र के अन्तर्गत विशेष स्नायुओं का काम है। प्रायः देखा जाता है कि डर या घबराहट से मुँह सूख जाता है। उस समय स्नायु के काम में गड़बड़ी से श्लेष्मल नहीं निकलता।

लार या लाला का पाचन पर प्रभाव--खाते समय मुँह में एक और तरह का पानी जैसा पदार्थ बनता और निकलता है, वह लार है। यह बात सभी को मालूम है कि अच्छे भोजन को देखते ही, कभी-कभी तो उसकी याद से, मुँह में पानी भर जाता है। यह पानी वही लार है। भोजन के समय खाई गयी चीज दाँतों से कुचली और चबाई जाती है और साथ ही लार के साथ भी अच्छी तरह मिलाई जाती है और तब इस पर श्लेष्मल लगता है।

लार मुँह के अन्दर की विशिष्ट ग्रंथियों से निकलती है। इनको लार ग्रंथियाँ (salivary glands) कहते हैं। ये ग्रंथियाँ छः हैं, ३ दाएँ और ३ बाएँ। एक कान की जड़ वाली ग्रंथि (पैरोटिड ग्रंथि, parotid gland) कान के सामने (मुँह के भीतरी भाग में) है। दो और जबड़े के नीचे की ग्रंथि (अधोजंभ ग्रंथि, submaxillary gland) और जीभ के नीचे की गिल्टी (अधोजिह्वा ग्रंथि, sublingual gland) हैं। ये एक तरफ की ३ ग्रंथियाँ हुईं। इसी तरह ३ दूसरी तरफ भी हैं। इन ग्रंथियों से जो लार निकलती है वह बहुत छोटी नलियों के रास्ते से मुँह में आती है।

जब भोजन लार से मिलता है तो वह केवल मुलायम ही नहीं हो जाता, बल्कि पचने योग्य हो जाता है और भोजन में जो श्वेतसार पदार्थ रहता है वह लार के प्रभाव से शकर बन जाता है और तब पचने में सुगमता होती है।

लार खारापन का गुण रखती है। उसके अन्दर टायलिन (ptyalin) नाम का एक खमीर है, जो श्वेतसार को शकर में बदल देता है। रोटी, चावल, आलू, केला इत्यादि कार्बोहाइड्रेट पदार्थ के नमूने हैं। बिना लार से अच्छी तरह मिले ठीक-ठीक पच नहीं सकते।

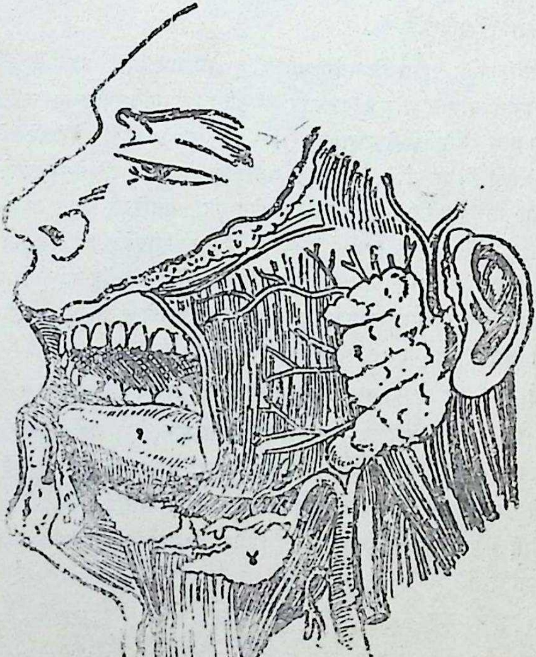

चित्र ४६--(१) जीभ, (२) जीभ के नीचे वाली (लाला ग्रंथि), (३) कान के सामने वाली (पैरोटिड ग्रंथि) (४) जबड़े के नीचे वाली (अंतः चिवुक ग्रंथि)

लार तभी बनती और निकलती है, जब भोजन अच्छी तरह चबाया जाता है और चबाने के समय वह भोजन लार से मिलता है। फिर अच्छी तरह चबाये और लार से मिले भोजन पर श्लेष्मल लग जाता है और तभी वह निगला जा सकता है। इस सम्बन्ध में एक समझने की बात है कि पेट में लार नहीं बनती, वह तो मुँह में बनती है इसलिए मुँह से भोजन का अच्छी तरह चबाया जाना आवश्यक हैं।

कार्बोहाइड्रेट पदार्थ के अतिरिक्त और जो पदार्थ खाये जाते हैं, जैसे मांस-वर्द्धक पदार्थ और वसा, उन पर लार का कोई रासायनिक प्रभाव नहीं पड़ता। लार के साथ मिलने से वे मुलायम हो जाते हैं, पर उनमे कार्बोहाइड्रेट से शकर बनाने वाली क्रिया जैसी कोई क्रिया नहीं होती। खाने की ऐसी चीजें भी हैं, जैसे चना या दूसरी दालें, जिनमें प्रोटीन के अतिरिक्त बहुत थोड़े अंश में कार्बोहाइड्रेट भी रहता है। ऐसी चीजों में कार्बोहाइड्रेट का जितना अंश है उतने पर लार का प्रभाव पड़ता है, बाकी पर नहीं। कार्बोहाइड्रेट के अतिरिक्त और पदार्थों का पाचन आमाशय और आंत्र के रसों से होता है, जिसके सम्बन्ध में आगे बताया जायगा।

जीभ--भोजन को पचने योग्य बनाने के लिए यह कुछ कम आवश्यक अंग नहीं है। जीभ का पूरा-पूरा वर्णन आगे आयेगा पर यहाँ इतना बता देना आवश्यक है कि भोजन के चबाये जाने में जीभ बहुत सहायता देती है। दाँतों के नीचे ठीक-ठीक दबाये और चबाये जाने के लिए खाई हुई चीज को जीभ ही घुमाती है। फिर उसके चबाये जाने के बाद निगलते समय जीभ का सहारा लिया जाता है।

भोजन हवा की नली में क्यों नहीं जाता ?—यहाँ पर एक आवश्यक बात समझनी चाहिए। जीभ की जड़ के नीचे हवा की नली (कंठ, Larynx) आहारनाल दोनों ही हैं। जीभ की जड़ के ठीक पीछे नीचे की तरफ हवा की नली का ऊपरी भाग है और ठीक इसके नीचे आहार-नाल का ऊपरी भाग है। खाई हुई चीज को आहारनाल में पहुँचने के लिए

हवा की नली के ऊपर होकर जाना पड़ता है। यह पूछा जा सकता है कि खाई हुई चीज हवा को नली में क्यों नहीं गिर जाती। उत्तर यह है कि हवा की नली के ऊपर एक ढक्कन रहता है, जिसे हवा की नली की घाँटी ढक्कन (epiglottis) कहते हैं। साँस लेते समय यह घाँटी ढक्कन हवा की नली पर

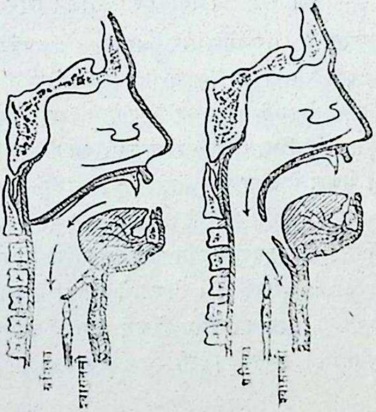

चित्र ४७—-कंठ का घाँटी ढक्कन, खुला और बन्द

नहीं रहता, जिससे हवा नाक में से होकर बिना रुकावट के हवा की नली में पहुँचती है, किन्तु खाते समय जैसे ही भोजन नीचे को खिसकता है, यह घाँटी ढक्कन हवा की नली के ऊपर आ जाता है, जिससे भोजन को आहारनाल बिना रुकावट के नीचे उतरने के लिए मिल जाती है। इतना ही नहीं, पेशियों के सिकुड़ने से सारी हवा की नली कुछ आगे को जीभ की जड़ के नीचे सरक जाती है। इस तरह हवा की नली के ऊपर घाँटी ढक्कन के आ जाने और हवा की नली के आगे की ओर सरकने से भोजन हवा की नली में नहीं गिर पाता। कभी-कभी भूल हो जाती है, जबकि भोजन का कुछ अंश या पानी की कुछ

बूंदें लापरवाही या जल्दबाजी के कारण हवा की नली में गिर जाती हैं। ऐसी अवस्था में झोके की खाँसी आती है और उस भाग में गिरा हुआ भोजन या पानी का अंश बाहर फेंक दिया जाता है।

आमाशय—अच्छी तरह चबाया हुआ भोजन लार के साथ मिलकर आहारनाल में उतरता है और धीरे-धीरे आमाशय में पहुँचता है। साधारण बोलचाल में आमाशय को ही 'पेट' कहते हैं। यह शरीर के खोखले अंगों में से सबसे बड़ा और साथ ही बड़े काम का अंग है। यह समझना चाहिए कि आमाशय आहारनाल से भिन्न नहीं, बल्कि उसी का फैलाव है। आमाशय का आकार चमड़े की मशक से बहुत कुछ मिलता है। इसकी लम्बाई ३०–३२ सेमी और चौड़ाई लगभग १० सेमी होती है। इसमें एक तो ऊपर से भोजन आने का रास्ता है, जो बाईं ओर हृदय के पास है। इस रास्ते को आमाशय का हृदय द्वार (जठरागम, cardia) कहते हैं। फिर पचे भोजन के नीचे आंत्र में उतरने का दूसरा रास्ता भी है। यह आमाशय निचले भाग में दाहिनी तरफ है। इसे जठर निर्गम (pylorus) कहते हैं (देखो चित्र ४२,४३)।

जब आमाशय खाली होता है तो उसकी दीवार बिना हवा की फुटबाल की तरह एक-दूसरे से मिली रहती है। जब उसमें भोजन पहुँचता है तो वह फैलने लगता है। भोजन की जितनी मात्रा होती है उतना ही आमाशय फैलता है, किन्तु साधारणतः आमाशय में लगभग १½ किलोग्राम भोजन के लिए स्थान होता है।

आमाशय की दीवार बहुत अच्छे ढंग से बनी होती है। इसकी तीन तहें होती हैं। पहली तह एक चिकने कोट की-सी होती है जिसके कारण आमाशय के आसपास में और अंगों के होते हुए भी यह स्वतन्त्रता से गति करती है। बीच की तह पेशियों के सूत्रों (muscular fibres) से बनी होती है। ये सूत्र तीन तहों में भिन्न-भिन्न दिशाओं में फँसे हैं, जिससे भोजन अच्छी तरह इधर से

उधर झकझोरा जा सके। सबसे भीतरी तह श्लेष्मा-झिल्ली की रहती है। बीच वाली पेशियों की तह के कारण भोजन आमाशय में पहुँचते ही इधर-उधर घुमाया जाता है और इसी क्रिया से वह पचता है। भोजन के अन्दर आते ही पेशियाँ अपना काम आरम्भ कर देती हैं और भोजन को आमाशय के एक कोने से दूसरे कोने में फेंकती रहती हैं। भोजन चाहे जितना किया जाय, आमाशय की दीवारें उसके पास ही रहती हैं। इसी से पेशियों की गति से भोजन दब-दब कर मुलायम हो जाता है और उसके पचने में **आमाशय रस** (Gastric juice) भी बहुत सहायता देता है। यह रस सब से भीतरी श्लेष्मा-झिल्ली वाली तह से निकलता है। इसमें कुछ छोटी-छोटी **ग्रंथियाँ** (Glands) होती हैं। एक तरह की ग्रंथियों से **श्लेष्मल** (Mucous) निकलता है और दूसरी तरह की ग्रंथियों से ऊपर कहा गया आमाशय का रस। इस रस का गुण खट्टापन लिए हुए है। आमाशय के रस में खटाई रहने का कारण यह है कि उसमें नमक का तेजाब (हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, Hydrochloric acid) रहता है। इस खटाई के अलावा आमाशय के रस में **पेप्सीन** (Pepsin) और रेनेट (rennet) नामक दो खमीरें होती हैं।

यहाँ पर समझना चाहिए कि भोजन जब गले के नीचे उतरता है तो उस पर लार का प्रभाव होता रहता है। खारापन का गुण रखने वाली लार श्वेत-सार पदार्थ को पचाने लायक शकर बना देती है। भोजन जब आमाशय में पहुँचता है तब भी कुछ देर तक लार का प्रभाव जारी रहता है, हर लगभग आधे घंटे में ही आमाशय की भीतरी तह की ग्रंथियों से आमाशय का रस निकलने लगता है। इसके खट्टेपन के कारण खारापन का गुण रखने वाली लार का प्रभाव बन्द हो जाता है और साथ ही कार्बोहाइड्रेट का पचना भी रुक जाता है। कार्बोहाइड्रेट का जितना अंश पच गया वह तो पच ही गया, पर जिस अंश की शकर नहीं बनी, वह आमाशय से नीचे उतर कर क्षुद्रांत्र में पचता है।

जिस तरह लार का प्रभाव कार्बोहाइड्रेट पर होता है उसी तरह आमाशय के रस का असर प्रोटीन पर होता है। इस रस में जो रेनेट की खमीर होती है

उसके प्रभाव से दूध जम कर दही के थक्के की तरह बन जाता है, फिर इसके थक्के पर आमाशय के रस के अन्दर की दूसरी खमीर पेप्सीन का प्रभाव आरम्भ होता है। पेप्सीन का प्रभाव प्रोटीन को **पेप्टोन** (Peptone) नामक पदार्थ में बदल देता है। पेप्टोन एक घुल जाने वाला पदार्थ है।

आमाशय के अन्दर ही यह पाचन-क्रिया लगभग ३-४ घंटों तक चलती है। अब यह देखना है कि जब भोजन पर आमाशय के रस का पूरा प्रभाव पड़ चुकता है तो आमाशय में कैसे पदार्थ रहते हैं। वे पदार्थ ये हैं--पचे हुए कार्बोहाइड्रेट से बनी शकर, कुछ बिना पचा श्वेतसार, पचे हुए प्रोटीन से बना पेप्टोन, कुछ पचा प्रोटीन, पिघली हुई वसा (घी, मक्खन, तेल इत्यादि) और भोजन का ऐसा अंश जो बिल्कुल ही नहीं पचते; जैसे फलों और भाजियों के रेशे या आटे के अन्दर का चोकर। ये सभी पदार्थ आमाशय के रस मिले रहते हैं। इस मिले-घुले पदार्थ को **आहार रस** (काइम, chyme) कहते हैं। इसमें से शकर और पेप्टोन का कुछ आमाशय की श्लेष्मा-झिल्ली से सीधा रुधिर में पहुँच जाता है, पर आहार-रस का बहुत-सा अंश आमाशय के जठर निर्गम से **ग्रहणी** (duodenum) में चला जाता है। यह द्वार (दरवाजा) घेरदार पेशियों का बना होता है और तब तक बन्द रहता है जब तक भोजन आमाशय के रस के साथ अच्छी तरह मिलकर नीचे उतरने के योग्य नहीं हो जाता है। जब भोजन इस दरवाजे से ग्रहणी में पहुँच जाता है तो उस पर **अग्न्याशय** (Pancreas), **यकृत** (Liver) और आंत्र की दीवार के रसों का प्रभाव आरम्भ हो जाता है।

श्वेतसार का बहुत-सा अंश मुंह से ही शकर बनकर आमाशय में आता है और जब तक आमाशय के रस का प्रभाव नहीं होता तब तक आमाशय में भी वह क्रिया जारी रहती है। इसी तरह कार्बोहाइड्रेट का बहुत भाग मुंह और आमाशय में पच जाता है। प्रोटीन भी आमाशय में बहुत कुछ पच जाता है पर वसा (घी, तेल या दूध की चिकनाई) आमाशय में बिल्कुल नहीं पचती। जो कुछ आमाशय में नहीं पच पाता वह आंत्र में पहुँच कर बिल्कुल पच जाता है।

क्षुद्रांत्र (small intestine)—यह हमने देख लिया कि आमाशय से आहार-रस जठर निर्गम से निकल कर ग्रहणी में पहुँचता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ग्रहणी (duodenum) क्षुद्रांत्र का पहला भाग है, जो २५ सेमी लम्बा है और जिसकी आकृति आधे चांद की-सी है। जब आहार-रस ग्रहणी में पहुँचता है तो वही अग्न्याशय और यकृत नामक ग्रंथियों के रस भी आहार रस से मिलते हैं और उसके अच्छी तरह पच जाने में सहायक होते हैं।

क्षुद्रांत्र का ग्रहणी नामक भाग तो आवश्यक है ही, पर उसका आगे का अर्थात् ग्रहणी के बाद का भाग भी कम आवश्यक नहीं है : क्षुद्रांत्र की दीवारों की बनावट भी आमाशय की दीवारों की बनावट की तरह है। उसमें भी आमाशय की दीवारों की तरह तीनों तहें हैं। (देखो पृष्ठ ११०—चित्र ४६) बीच की तरह पेशियों के सूत्र की-सी होती है, पर ये सूत्र आमाशय की बीच वाली तह की तरह भिन्न-भिन्न दिशाओं में न फैल कर आंत्र के चारों ओर वृत्ताकार में लिपटे होते हैं। पेशियों की बनावट में इस भेद का कारण यह है कि आंत्र में आहार रस के आमाशय की तरह आगे-पीछे झकझोरे जाने की आवश्यकता नहीं रहती। आंत्र तो उस रस को धीरे-धीरे आगे बढ़ाती है।

आंत्र की भीतरी श्लेष्मा-झिल्ली की तह में जो ग्रंथियाँ होती हैं उनसे पचाने वाले रस निकलते हैं। ये रस बड़े काम के हैं और इनके सहारे आहार-रस के सभी अंश अच्छी तरह पचते हैं। आंत्र के रसों की क्रिया को समझने के लिए पहले अग्न्याशय (pancreas) और यकृत (liver) नामक ग्रंथियों को जानना और समझना चाहिए।

अग्न्याशय (pancreas)—आमाशय से कुछ पीछे हट कर या उसी के नीचे और उदर की पिछली दीवार से लगी हुई अग्न्याशय (pancreas)

नाम की एक बड़ी ग्रंथि है। इसका दाहिना सिरा मोटा और बायाँ, जिसे अग्न्याशय की पूँछ कहते हैं, पतला होता है। इसकी आकृति पिस्तौल की-सी होता है। अग्न्याशय का दाहिना सिरा ग्रहणी के घेरे में रहता है और बायाँ सिरा प्लीहा (spleen) (जिसका वर्णन आगे आयेगा) से मिला रहता है।

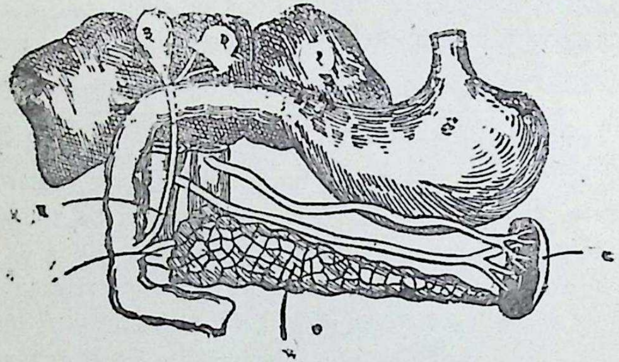

चित्र ४८

१,२ तथा ४—यकृत; ३—यकृत में पित्ताशय; ५—पित्तवाहिनी; ६—अग्न्याशयी वाहिनी; ७—अग्न्याशय; ८—प्लीहा

इस ग्रंथि से जो पचाने वाला रस निकलता है उसे अग्न्याशयी रस (pancreatic Juice) कहते हैं। यह रस २·५ सेमी की नली से होकर ग्रहणी में पहुँचता है। एक विशेषता यह है कि अग्न्याशयी रस की नली यकृत से आई हुई पित्तवाहिनी के साथ-साथ ग्रहणी में प्रवेश करती है। दोनों नलियाँ एक ही साथ और एक ही जगह ग्रहणी की दीवार में घुसती हैं और

दोनों के रस एक ही रास्ते से ग्रहणी के अन्दर पहुँच कर आहार-रस पर अपना प्रभाव डालते हैं।

अग्न्याशयी रस पतला, साफ और खारापन का गुण लिए हुए होता है। इसमें तीन तरह (किसी-किसी का कहना है कि ४ तरह) की खमीरें पाई जाती हैं। एक खमीर **ऐमिलेस** (Amylase) का प्रभाव लार के प्रभाव की तरह है। कार्बोहाइड्रेट का भाग लार के प्रभाव से बचा रहता है, वह इस खमीर के प्रभाव से शकर में बदल जाता है। इसी तरह दूसरी खमीर **ट्रिप्सिन** (trypsin) आमाशय के रस के प्रभाव से बचे हुए प्रोटीन को पेप्टोन में बदल देती है। यहाँ पर इतना समझना और स्मरण रखना चाहिए कि आमाशय का रस खटाई (**अम्लीय**, acidic) का गुण रखने के कारण प्रोटीन पर प्रभाव डाल सकता है, पर अग्न्याशयी रस की यह खमीर उसी काम को अपने खारेपन (क्षारीय, alkaline) के गुण के कारण करती है। अग्न्याशयी रस के अन्दर की तीसरी खमीर **लाइपेस** (lipase) वसा पर अपना प्रभाव डालती है और उसको एक तरह की खटाई **वसाम्ल** (fatty acids) और **ग्लीसरीन** (glycerine) में बदल देती है। इस काम में पित्त से बहुत सहारा मिलता है। साथ ही आंत्र की ग्रंथियों के निकले हुए रस भी अपना काम करते हैं।

यकृत (Liver)--शरीर में सबसे बड़ी ग्रंथि है और इसकी थैली में एक तरह का कसैला हरा-पीला रस बनता है, जिसे **पित्त** (bile) कहते हैं। यह उदर के ऊपरी भाग में छाती-उदर के बीच वाली चौड़ी पेशी (**मध्यपट**, diaphragm) नीचे पसलियों की आड़ में दाहिनी तरफ रहता है। इसका अधिक भाग दाहिनी ओर रहता है और कुछ हिस्सा बायीं ओर आमाशय के सामने। यकृत का वजन साधारणतः पौने दो किलोग्राम के लगभग होता है। इसके दो बड़े और दो छोटे गोलाकार खंड होते हैं। नीचे की ओर बगल में एक छोटी-सी थैली होती है, जिसे **पित्ताशय** (gall bladder) कहते हैं। यकृत में जो पित्त बनता है वह इसी थैली से इकट्ठा होता रहता है। जब

आहार-रस छुद्रांत्र के ग्रहणी नामक भाग में आता है तो पित्ताशय से पित्त निकल कर एक नली से ग्रहणी में ठीक उसी जगह पहुँच जाता है जहाँ पर अग्न्याशयी रस पहुँचता है। (देखो पृष्ठ १०६ चित्र ४८)।

पित्त का आहार-रस पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता। वह अग्न्याशयी रस की सहायता करता है और उसके अन्दर की चिकनाई को पचाने योग्य बनाता है। जब क्षुद्रांत्र में पित्त नहीं पहुँचता तो अग्न्याशयी रस को कठिनाई पड़ती है। पित्त एक और काम करता है। वह आहार-रस को इस योग्य बना देता है कि वह जल्दी रुधिर में मिल सके।

पित्त बनाने के अतिरिक्त यकृत और भी काम करता है। आहार-रस जब आंत्र से निकलता है तो पहले यकृत उसे शरीर के तन्तु-सेलों के योग्य बनाता है। फिर शरीर में जो तन्तु-सेल टूटते-फूटते हैं उन्हें बहा कर रुधिर यकृत में लाता है। यकृत उनको **यूरिया** (urea) में बदल देता है। यूरिया वृक्क (kidneys) की क्रिया से रुधिर में से छन कर मूत्राशय में चला जाता है यकृत का यह काम बहुत आवश्यक है। यदि किसी कारण टूटे-फूटे सेल का यूरिया न बने और यह विकार रुधिर से निकल न जाय तो शरीर के जोड़ों में दर्द होने लगता है और गठिया आदि रोग हो जाते हैं।

आंत्र का रस--हमने यह देख लिया कि आहार-रस अग्न्याशयी रस और पित्त का क्या प्रभाव होता है। यह भी बताया जा चुका है कि क्षुद्रांत्र की ग्रंथियों से भी रस निकलता है, जो बड़े काम का है। असल में आहार-रस को अच्छी तरह पचा कर रुधिर में मिल जाने के योग्य बना देना इसी आंत्र के रस का काम है। भोजन के बिल्कुल पच जाने की अंतिम क्रिया आंत्र के रस के ही सहारे होती है। श्वेतसार पदार्थों से जो शकर बनती है वह ग्लूकोज (Glucose) के रूप में होकर रुधिर में खिंच जाने योग्य हो जाती है, फिर प्रोटीन से बना पेप्टोन आंत्र के रस के प्रभाव

से रुधिर में मिलने योग्य एमीनो एसिड (Amino acid) में बदल जाता है। इस समय यह ग्लूकोज और एमीनो एसिड क्षुद्रांत्र के अंकुरों से सोख लिए जाते हैं और वहीं से यकृत में जाते हैं। जरूरत से अधिक ग्लूकोज यकृत अपने में रोक लेता है और शेष पेशियों को रवाना कर देता है। एमीनो एसिड भी यकृत से होता हुआ रुधिर के साथ सारे शरीर में पहुँचता है। वहाँ यह एमीनों एसिड और ग्लूकोज जीवद्रव्य (plasma) में घुस कर केशिकाओं से छन कर उसके बाहर कोषाणुओं तक पहुँच जाते हैं जिससे उनको पोषण मिलता है। यह ज्ञात होना चाहिए कि केशिकाओं की दीवार इतनी पतली होती है कि उसमें बहते हुए रुधिर से जीवद्रव्य (plasma) छनकर बाहर पेशियों में चला जाता है और अपने साथ घुले हुए ग्लूकोज और एमीनो एसिड आदि को भी लेता जाता है।

इस तरह क्षुद्रांत्र से निकल कर बृहत् आंत्र में पहुँचने के समय तक आहार-रस अच्छी तरह पच जाता है और उसके सभी अंश ऐसे बन जाते हैं कि रुधिर में सुगमता से मिलकर अपने काम करने लगें। जैसा ऊपर बताया गया है, कार्बोहाइड्रेट सुगमता से घुलने-मिलने वाली शकर ग्लूकोज में बदल जाता है, प्रोटीन की एमीनो एसिड बन जाती है और वसा के कण वसाम्ल और ग्लीसरीन में बदल जाते हैं। ये सब आपस में अच्छी तरह मिलकर धीरे-धीरे क्षुद्रांत्र में पेशियों के संकोच से बृहत् आंत्र की तरफ बढ़ते हैं और इसी समय इनका सार तत्त्व रुधिर में भी खिंचता जाता है।

भोजन का रुधिर में मिल जाना--ऊपर बताई बातों से यह अच्छी तरह समझ में आ गया होगा कि खाई गई चीजों में से किन चीजों पर आहारनाल के किस भाग में किन रसों का क्या प्रभाव होता है और अन्त में आहार-रस किस तरह धीरे-धीरे क्षुद्रांत्र में आगे की ओर सरकता है। यह भी बताया गया है कि आंत्र में जो गति उत्पन्न होती है उसके कारण पचा हुआ भोजन जब आगे की ओर गति करता है तब आहार-रस से तत्त्व खिंच कर

रुधिर में मिलता जाता है। भोजन के अन्तिम सार तत्त्व का रुधिर में मिलना किस तरह होता है, इसे अच्छी तरह समझना चाहिए।

जब आहार-रस ऐसा बन जाता है कि रुधिर में मिल जाय तो उसका सेलुलोस (Cellulose), जैसे फलों और भाजी के छिलके, डंठल के रेशे

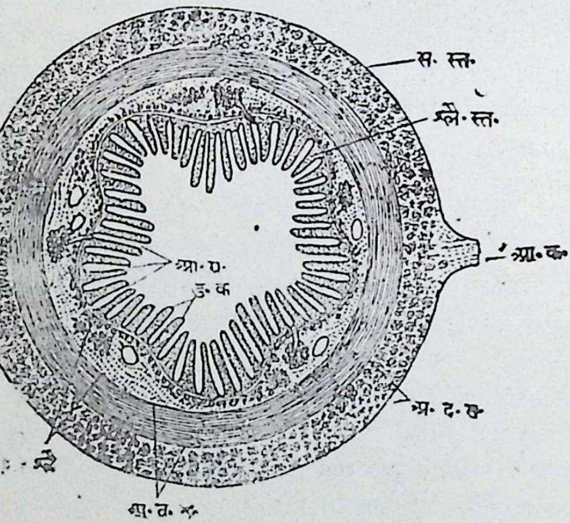

चित्र ४६—क्षुद्रान्त्र—अनुप्रस्थ काट दिखाया गया है
आ० ग्र० आन्त्रग्रंथि, श्ले० स्तर—श्लेष्मा-स्तर
अ० श्ल०—अधोश्लेष्मा-स्तर

और चोकर इत्यादि, क्षुद्रांत्र से बृहत् आंत्र में चले जाते हैं। आहार-रस का केवल आवश्यक भाग रुधिर में मिल जाने के लिए बच रहता है। यों तो हमने

देख लिया कि खाई हुई चीज का कुछ भाग ग्रामाशय की श्लेष्मा-झिल्ली में से ही रुधिर में खिच जाता है, पर उसका अधिक भाग क्षुद्रांत्र की भीतरी बनावट के रंध्र (pores) से ही रुधिर में मिलता है। क्षुद्रांत्र की भीतरी तह श्लेष्मा-झिल्ली की

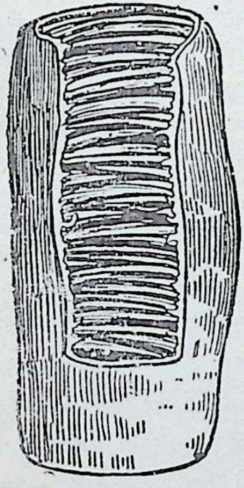

चित्र ५०—क्षुद्रांत्र का एक टुकड़ा जिसमें अन्दर की तहें दीख पड़ती हैं

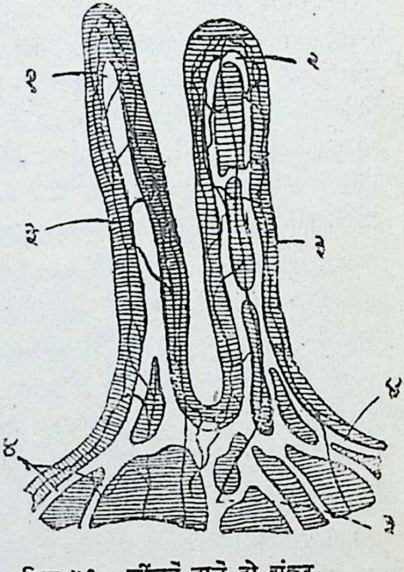

चित्र ५१—खींचने वाले दो अंकुर (ग्राहकांकुर) बहुत (बढ़ाकर) १,२,४—चिकनाई खींचने वाली ग्राक्षीरवाहिनी ३—रुधिरवाहिनी जो चिकनाई को छोड़कर पचे आहार-रस को पीती हैं

बनी हुई है। यह तह गोल-गोल रहती है और इसके भाग एक-दूसरे पर पड़े होते हैं, जिससे इसकी सतह का फैलाव बढ़ जाता है और आहार-रस का रुधिर

में खिंच जाना पर्याप्त मात्रा में होता है। श्लेष्मा-झिल्ली में पतली-पतली ग्रंथियों के बीच बहुत-से बाल जैसे बारीक उभार होते हैं, जो खींचने वाले रोमांकुर (Villi) कहलाते हैं। इन रोमांकुर के भीतर बहुत-सी रुधिर ले जाने वाली केशिकाएँ (बहुत बारीक नलियाँ, capillaries) रहती हैं। इनके सहारे ये खींचने वाले रोमांकुर अच्छी तरह पचे, आहार-रस के आवश्यक भाग पी जाते हैं, उन्हें खींच कर रुधिर में मिला देते हैं, रोमांकुर को बनाने वाले सेल ऐसे जीते-जागते और चतुर होते हैं कि वे आंत्र में रुधिर में मिलने के लिए तैयार पदार्थ को ले लेते हैं और उसको अपने अन्दर से और अपने अन्दर के रुधिर के कोषाणुओं की पतली दीवार से निकालते हुए रुधिर में मिला देते हैं। यहाँ से रुधिर की धारा उसको शरीर के सभी भागों में पहुँचा देती हैं।

बहुत से खींचने वाले रोमांकुरों की केशिकाएँ मिलकर शिराएँ (veins) बनाती हैं। ये शिराएँ आमाशय, क्षुद्रांत्र और बृहत् आंत्र से आई हुई शिराओं में मिलकर बड़ी शिरा बनाती है जो निर्वाहिका शिरा (portal vein) कहलाती है। यही बड़ी शिरा यकृत में पहुँचती हैं, जहाँ इससे फिर छोटी-छोटी केशिकाएँ निकलती हैं। कार्बोहाइड्रेट का जो अधिक भाग होता है वह यकृत में ही रह जाता है और वहाँ उसका ग्लाइकोजन (glycogen) बन कर फिर रुधिर में पहुँच जाता है।

यहाँ पर समझने की एक बात यह है कि पचे आहार-रस का चिकनाई वाला भाग (जो घी, तेल खाने में आहार रस में रहता है) ऊपर बताये गये ढंग से रुधिर में नहीं मिलता। चिकनाई रुधिर ले जाने वाली बारीक नलियों में प्रवेश नहीं कर सकती। जब कि श्वेतसार और मांसवर्धक पदार्थों का पचा हुआ अंश खींचने वाले रोमांकुरों की बारीक नलियों में जाता है, चिकनाई का भाग रोमांकुरों की आक्षीरवाहिनी (लैक्टील, lacteal) में खिच जाता है। इन नलियों का नाम आक्षीरवाहिनी इसलिए हुआ कि भोजन पचने के समय वे दूध के रंग के तरल पदार्थ (काइम, chyme) सी मालूम होती हैं। ये आक्षीरवाहिनी मिल-जुल कर लसिकावाहिनी नाम की बड़ी नलियाँ बनाती हैं। इस तरह

धीरे-धीरे चिकनाई का हिस्सा शरीर के ऊपरी भाग की ओर बढ़ता है और अन्त में गर्दन के पास शरीर के बायें भाग में एक बड़ी शिरा में पहुँच कर रुधिर के दौरान में प्रवेश करता है।

आहार-रस का रुधिर में मिल जाना आवश्यक है—ऊपर बतायी बातों से मालूम होता है कि भोजन का सारतत्त्व किस तरह रुधिर में मिलता है। असल में आहार-रस के रुधिर में मिल जाने से ही, न कि केवल भोजन करने से, शरीर अच्छी स्थिति में रह सकता है। यह तभी हो सकता है जब कि खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह पच जाय। बहुत से लोग केवल स्वाद के लिए खाते हैं। वे इसकी चिन्ता नहीं करते कि भोजन पचेगा या नहीं। ऐसे ही लोग बीमार रहा करते हैं। भोजन ठीक-ठीक पचे, इसके लिए यह आवश्यक है कि भूख होने पर ही उचित पदार्थ खाया जाय, खाते समय भोजन को अच्छी तरह चबाने के लिए दाँतों का पूरा प्रयोग किया जाय और पाचन-शक्ति को अच्छी स्थिति में रखने के लिए व्यायाम किया जाय।

बृहत्-आंत्र--यह हमने देख लिया कि पचे हुए भोजन का बहुत-सा अंश क्षुद्रांत्र में ही सोख लिया जाता है। बचा हुआ अंश, जो कुछ पानीदार ढीला पदार्थ होता है, बृहत् आंत्र में चला जाता है। यदि कुछ सोखने योग्य अंश अब भी बच रहता है तो बृहत् आंत्र उसे सोख लेती है। इसके अतिरिक्त वह उस पानीदार ढीले पदार्थ में से पानी भी सोख लेती है, जिससे ठोस मल ही बृहत् आंत्र में बच रहता है। यह मल बृहत् आंत्र की पेशियों के बार-बार सिकुड़ने से आगे बढ़ता है और अन्त में अवस्कर द्वार से बाहर फेंक दिया जाता है। एक बात जान लेनी चाहिये कि बृहत् आंत्र से पाचक रस नहीं निकलते। यहाँ बैक्टीरियों के कारण अनपचे द्रव में कुछ परिवर्तन अवश्य होता है, जो आहार-तत्त्व के शोषण में सहायक होता है।

खाई हुई चीज के इस बचे अंश में, जिसे अब 'मल' के नाम से पुकारा जा रहा है, खाई वस्तुओं का फोक, भोजन के बे-पचे अंश, ऐसे अंश जो सोखे

नहीं जा सकते, पाचक रस का कुछ भाग, नष्ट-भ्रष्ट हुए कोष ग्रौर कीटाणु रहते हैं। मल सडने के कारण ये कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं ग्रौर यद्यपि पित्त का ग्रंश बृहत् ग्रांत्र में पहुँच कर कुछ सफाई की क्रिया करता है, फिर भी बहुत से कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। सड़ने के कारण मल में वदवू ग्रा जाती है ग्रौर यह ग्रावश्यक है कि यह मल नियमित रूप से प्रतिदिन शरीर के बाहर निकल जाय।

भोजन पचने ग्रौर मल निकलने का समय--जिस समय भोजन मुंह में रखा जाता है उस समय से लेकर उनके पचने ग्रौर सारतत्त्व के शरीर में सोखे जाने के वाद बचे-खुचे ग्रंश के **गुदा** (Anus) से वाहर निकलने तक में लगभग २४ घंटे लग जाते हैं। यह इस पर निर्भर है कि ग्रादमी का स्वास्थ्य कैसा है ग्रौर भोजन सादा ग्रौर जल्द पचने वाला है या देर में पचने वाला। यदि ग्रादमी स्वस्थ है ग्रौर भोजन पुष्टिकर होते हुए भी सादा है तो लगभग २० घंटे में सारी क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं, किन्तु विपरीत ग्रवस्था में कभी-कभी २४ घंटे से भी ग्रधिक समय लग जाता है। भोजन को ग्रामाशय से निकल कर क्षुद्रांत्र में ग्राने में ही ३, ४ घंटे ग्रौर कभी-कभी इससे भी ग्रधिक समय लगता है।

प्लीहा (Spleen)—पचाने वाले यंत्रों से प्लीहा (spleen) का इतना सम्बन्ध है कि उसका कुछ वर्णन यहां दे देना ग्रावश्यक मालूम होता है। पर यह जान लेना चाहिए कि प्लीहा पाचन या पोषण-तंत्र का ग्रंग नहीं है।

बाईं कोख में पीछे की तरफ ग्रामाशय ग्रौर मध्यपट के वीच में प्लीहा पड़ी हुई है। यह एक ग्रंथि है, जो लगभग १३ सेमी लम्बी ग्रौर ८ सेमी चौड़ी है। इसका वजन लगभग २५० ग्राम होता है। इसका रंग नीलापन लिए हुए लाल है।

यह ग्रभी तक ग्रच्छी तरह मालूम नहीं हुग्रा है कि प्लीहा शरीर में क्या काम करती है। ऐसा ग्रनुमान किया जाता है कि रुधिर के कुछ तत्त्वों पर

इसका कोई विशेष प्रभाव पड़ता है और यह भी कि जब रुधिर का दौरान अधिक तेज हो जाय तो प्लीहा उसे अपनी ओर खींचकर दूर के अंगों को पीड़ा पहुंचने से बचाती है। वह रुधिर के विकारों को भी अपने में खींच लेती है। इसी से देखा जाता है कि बहुत दिनों तक चलने वाले बुखार में प्लीहा बढ़ जाती है। स्पंज की तरह बनी होने के कारण प्लीहा रुधिर की मात्रा को सरलता से सोख सकती है।

प्लीहा के सम्बन्ध में इतना और मालूम है कि इसी में रुधिर के एक प्रकार के श्वेत कणिका (white corpuscles) बनते हैं और लाल कणिका (red corpuscles) टूटते-फूटते रहते हैं। जो लाल कणिका शरीर में अपना काम कर चुकते हैं वे प्लीहा में ही नष्ट होते हैं।

प्रश्न

१—क्लोम की बनावट का वर्णन करो और लिखो कि कौन-से पदार्थों से मिल कर क्लोम रस बनता है। (रा० १९४४-४५)

२—हमको भोजन की आवश्यकता क्यों होती है ? भोजन के भिन्न-भिन्न अवयव क्या हैं ? (रा० १९४५)

३—हमारे शरीर के लिए भोजन का क्या महत्त्व है ? मनुष्य को दिन में कितनी बार खाना चाहिए और क्यों ?

४—ऐसे खाद्य पदार्थों की एक तालिका बनाओ जिनके मिलाने से एक साधारण स्वस्थ मनुष्य के लिए पौष्टिक और स्वास्थ्यप्रद भोजन बनेगा। (उ० प्र० १९४०)

५—निम्नलिखित पर संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखो :—

(क) प्लीहा की उपयोगिता। (ख) पित्त की थैली

(ग) लसीका ग्रंथियाँ। (घ) पेप्सीन।

(पं० यू० १९४४)

६—पाचन-क्रिया में कौन-कौन से पाचक रस सहायता करते हैं ? वे कहाँ बनते हैं ? संक्षेप में प्रत्येक का वर्णन करो ।

(ब० हि० य० १६४४)

७—पाचनेन्द्रिय के अंग क्या-क्या है ? चित्र से स्पष्ट करो । छोटी आँत में भोजन किस प्रकार पचता है, लिखो । (पं० यू० १६४६)

८—आमाशय के भाग तथा उनकी रचना का वर्णन करो । आमाशय में पाचन तथा शोषण किस तरह होता है ।

(पं० यू० १६४७, उ० प्र० १६५३)

६—(क) संतुलित भोजन किसे कहते हैं ? इसका क्या महत्त्व है ? इसके विभिन्न अवयवों का शरीर में आत्मीकरण कैसे होता है ?

(ख) हमें चबाकर भोजन करना चाहिए ?

(ग) निगलते समय भोजन श्वास-नली में क्यों नहीं चला जाता ?

(उ० प्र० १६४८-५१)

१०—पाचन के विविध पदों (processes) का विस्तारपूर्वक वर्णन करो ।

(उ० प्र० १६५०)

११—निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये :—

(क) क्लोम रस (Pancreatic juice) (उ० प्र० १६७०)

अध्याय ५

रुधिर परिसंचरण तन्त्र

(THE BLOOD CIRCULATORY SYSTEM)

रुधिर

यह बताया गया है कि शरीर की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शरीर में ही सभी तरह के प्रबन्ध हैं। शरीर की पुष्टि और जीवन के लिए सभी अंगों में रुधिर (Blood) पहुँचाने का प्रबन्ध है। यह शरीर असंख्य कोशिकाओं का बना है और प्रत्येक कोशिका को भोजन की आवश्यकता है। यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक कोशिका में से विकार बाहर निकाल दिया जाय तथा पुरानी और टूटी-फूटी कोशिकाओं की मरम्मत होती रहे। कोशिकाओं तक भोजन पहुँचाने और उनकी मरम्मत की सामग्री जुटाने के अतिरिक्त उनके विकारों को बहा ले जाना भी रुधिर का ही काम है।

यह भी बताया जा चुका है कि भोजन से बने रुधिर को सारे शरीर में पहुँचाने के लिए हृदय (Heart) दिन-रात परिश्रम करता है और वही रुधिर को सारे शरीर में भेजता है। अब यह बताया जायगा कि रुधिर क्या है और हृदय किस तरह अपना काम करता है।

रुधिर—रुधिर चमकीले लाल रंग का कुछ गाढ़ा-गाढ़ा तरल पदार्थ है यह सारे शरीर में बराबर ही दौरा करता है और इसका आयतन ६ लीटर है। वास्तव में रुधिर के तरल पदार्थ का, जिसे जीव-द्रव्य (plasma) कहते हैं, अपना कोई विशेष रंग नहीं है। उसमें असंख्य लाल कणिका (Red corpuscles) तैरती हैं जिससे रुधिर भी देखने में लाल मालूम होता है।

रुधिर में तैरने वाले कोशिका (cells) जिन्हे अब हम रुधिर-कणिका (Blood corpuscles) कहेंगे, दो प्रकार के होते हैं— (१) लाल रुधिर-कणिका (Red Blood corpuscles) और (२) श्वेत रुधिर-कणिका (White Blood corpuscles) या बिना किसी विशेष रंग वाले रुधिर-कणिका।

लाल रुधिर-कणिका छोटे-छोटे गोल पदार्थ हैं, जो दोनों तरफ से कुछ पिचके (उभयावतल, Biconcave) होते हैं, ये इतने छोटे होते हैं कि

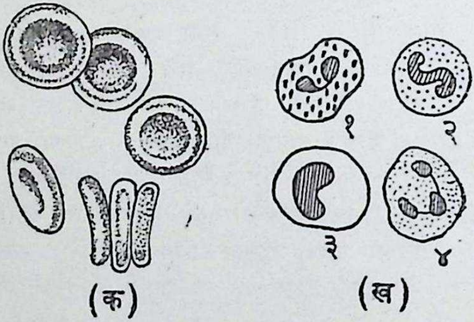

चित्र ५२—(क) लाल रुधिर-कणिका और (ख) चार प्रकार के श्वेत रुधिर-कणिका

यदि किनारे से किनारा उगाकर रखे जायँ तो २·५ वर्ग सेमी के जगह में लगभग दस करोड़ लाल रुधिर-कणिका आ जायँगे। इन्हें निरी आँखों से देख सकना असम्भव है। सूक्ष्मदर्शी से देखें जाने पर प्रत्येक कण पीला-सा दीखता है, पर जब बहुत से कण इकट्ठे और एक दूसरे पर पड़े रहते हैं तो उनका सामूहिक रंग लाल दिखाई देता है। इसी कारण रुधिर भी लाल दीखता है। लाल रुधिर-कणिका की बनावट एक लचीले खोल की तरह होती है और उसके अन्दर एक रंगीन पदार्थ होता है, जिसे हीमोग्लोबिन (haemoglobin) कहते हैं। इस पदार्थ का विशेष गुण यह है कि यह ऑक्सीजन को अपने में मिला लेता है। जब रुधिर अपने परिसंचरण (circulation) के पश्चात् फेफड़ों या फुप्फुस (lungs)

में पहुचता है तो वहाँ साँस ली हुई हवा की ऑक्सीजन के संपर्क में वह आता है। जैसे ही वह ऑक्सीजन के सम्पर्क में आता है वैसे ही उसके लाल रुधिर-कणिका की हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन को अपने में घुला लेती है और फिर जैसे-जैसे रुधिर विविध अंगों में पहुँचता है हीमोग्लोबिन अपने साथ मिली हुई ऑक्सीजन को कोशिकाओं के पोषण के लिए ऊतकों (Tissues) में छोड़ता

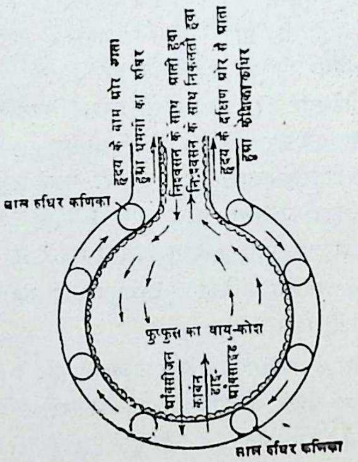

चित्र ५३—फुप्फुस में रुधिर और वायु का सम्पर्क

जाता है। जब हीमोग्लोबिन ऑक्सीजन के साथ मिलता है तो वह चमकीला लाल हो जाता है और तब उसे **ऑक्सी-हीमोग्लोबिन** (oxy-haemoglobin) कहते हैं। इस तरह हमने देख लिया कि लाल रुधिर-कणिका का विशेष काम फुप्फुस से ऑक्सीजन लेकर उसे ऊतकों में छोड़ आना है। जन्म के पहले

बच्चे के बनते हुए शरीर के यकृत और प्लीहा में ये लाल रुधिर-कणिका बनते हैं। बड़े होने पर ये हड्डी के गूदे (Bone marrow) में तैयार होते हैं।

श्वेत रुधिर-कणिका का वास्तव में कोई विशेष रंग नहीं होता। उनका आकार भी एक तरह का नहीं होता। जैसा कि पहले बताया जा चुका है उनका आकार तालाब के पानी में तैरने वाले एक कोशिका वाले जीवन 'एमीबा' के आकार-सा होता है (देखो चित्र १४)। ये श्वेत रुधिर-कणिका अपना आकार बराबर बदलते रहते हैं और प्रायः अपने को दबाकर बहुत बारीक रुधिर की नलियों से इधर-से-उधर निकल जाते हैं। बाहर से रुधिर में आए हुए विकारों और बीमारी के छोटे-छोटे कीड़ों के चारों तरफ लिपट कर ये उनको अपने में सोख लेते हैं और इस तरह ये शरीर को बीमार होने से बचाते हैं। जब किसी कारण से ये बाहरी विकारों को सोख नहीं सकते तभी शरीर रोगग्रस्त होता है। श्वेत कणिका की संख्या लाल कणिका से बहुत कम है। हर ५०० या ६०० लाल कणिका के पीछे १ श्वेत कणिका शरीर में पाया जाता है। ये कणिका हड्डी के गूदे, लसीका ग्रंथियों (Lymphatic glands) और प्लीहा (spleen) में बनते हैं।

लाल और श्वेत कणिकाओं के अतिरिक्त एक प्रकार के और कणिका रुधिर में देखे जाते हैं, परन्तु बहुत कठिनाई से। इनको रुधिर प्लेटेलेट्स (blood platelets) कहते हैं। ये बहुत ही नन्हें होते हैं। (देखो चित्र १३) रुधिर प्लेटेलेट्स लाल-कणिका की मोटाई से अधिक चौड़े नहीं होते। ज्योंही रुधिर शरीर से बाहर आता है। ये अदृश्य हो जाते हैं। इनके सम्बन्ध में अभी अधिक पता नहीं चला है।

जीवद्रव्य (Plasma) कुछ पीलापन लिए हुए तरल पदार्थ है, जिसमें कि इस पार से उस पार देख सकते हैं और इसी तरल पदार्थ में लाल और श्वेत रुधिर-कणिका तैरते हैं। इसके १०० भागों में ९० भाग पानी और १० भाग उसी पानी में घुले रासायनिक वस्तुओं के होते हैं। इन रासायनिक पदार्थों में तीन तरह की प्रोटीन, बहुत तरह के प्राकृतिक नमक, जिनमें साधारण नमक

का बहुत अंश रहता है और बहुत थोड़ी-सी चिकनाई रहती है। इसमें अतिरिक्त जीवद्रव्य में कार्बन डाइ-ऑक्साइड, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन गैस भी रहती है। कार्बन डाइ-ऑक्साइड तो विशेष कर जीवद्रव्य में रहती ही है, किन्तु ऑक्सीजन जैसा कि ऊपर बताया गया है, लाल कणिका के हीमोग्लोबिन से मिली हुई होती है। इस तरह वे सभी पदार्थ जिनसे शरीर के विविध ऊतक बने हैं, रुधिर में पाए जाते हैं। इन सब के अतिरिक्त कुछ अम्लकारक विकार युक्त पदार्थ भी जैसे; यूरिया, यूरिक एसिड आदि जो शरीर में हर समय बनते रहते हैं, इनमें आ मिलते हैं और मूत्र (urine) रुधिर और पसीना के रूप में बाहर फेंके जाते हैं।

रुधिर का जम जाना—शरीर से बाहर निकलने के थोड़ी देर के बाद रुधिर तरल नहीं रहता, बल्कि गाढ़ा होने लगता है और कुछ ही समय में वह जम जाता है। तब एक लाल छिछड़ा-सा बन जाता है, जिससे एक हल्का पीला पानी-सा पदार्थ निकलता है। इसे **सीरम** (serum) कहते हैं। रुधिर के इस तरह गाढ़ा होने का कारण यह है कि शरीर के बाहर आने पर इसके अन्दर घुला-मिला हुआ एक प्रोटीन जिसे **फाइब्रिनोजेन** (fibrinogen) कहते हैं, **फाइब्रिन** (fibrin) में बदल जाता है। फाइब्रिन एक पदार्थ है जिसमें बहुत छोटे-छोटे तार होते हैं। इन्हीं तारों में रुधिर-कणिका फँस जाते हैं जिससे **रुधिर का थक्का** (Clot) बँध जाता है।

रुधिर के जमने से एक लाभ अवश्य होता है। घाव के मुँह पर रुधिर के जमने से कटी हुई **रुधिर वाहिका** (blood vessel) बन्द हो जाती है और तब रुधिर नहीं निकलता। यदि ऐसा न हो तो चोट लगने के कारण किसी वाहिका के कट जाने पर शरीर से इतना रुधिर निकल जा सकता है कि मौत ही हो जाय।

रुधिर का काम—शरीर के हर भाग के ऊतकों और कोशिकाओं तक ऑक्सीजन पहुँचाना तथा उनको विभिन्न प्रकार से पोषक पदार्थ दे आना, साथ

ही उनके कार्बन डाइ-ऑक्साइड और अन्य विकारों को ले आना रुधिर का मुख्य काम है। इस सम्बन्ध में यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि हम जो खाते हैं उसी से रुधिर बनता है और अच्छा या बुरा जैसा भी रुधिर बनेगा उसी प्रकार स्वास्थ्य भी अच्छा या बुरा होगा। खाई चीजों से पौष्टिक पदार्थ लेकर रुधिर शरीर के हर भाग में पहुँचता है और उससे ऊतक अपनी आवश्यकता के अनुसार अपने लायक पदार्थ ले लेते हैं। इसके बदले ऊतक अपने

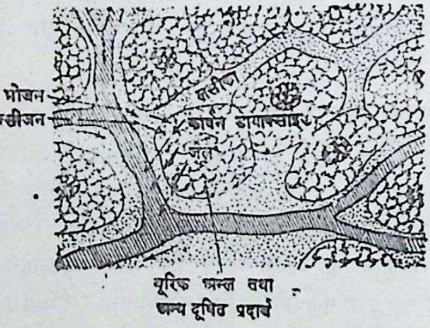

चित्र ५४--ऊतकों में रुधिर का पौष्टिक पदार्थ पहुँचाना

अन्दर के विकार और टूटे-फूटे भाग रुधिर को देते हैं। रुधिर अपने दौरान में जब वृक्क (kidney) या त्वचा (skin) के पास जाता है तो इन विकारों को मूत्र या पसीने के रूप में निकाल देता है। इसी तरह फुप्फुस में आई हुई हवा से ऑक्सीजन लेकर रुधिर उसे ऊतकों तक पहुँचा देता है और उसके बदले विकारयुक्त कार्बन डाइ-ऑक्साइड लेकर घूमता हुआ फिर फुप्फुस में पहुँचता है। फुप्फुस में पहुँचकर यह इस विकार को बाहर जाने वाली साँस के साथ बाहर निकाल देता है और साँस के साथ अन्दर आई हुई ऑक्सीजन को ले लेता है।

ऊपर की बातों से यह सिद्ध है कि रुधिर की उपयोगिता दो बातों पर

निर्भर है—(१) अच्छा भोजन, जिससे अच्छा रुधिर बनेगा और (२) साफ हवा में अधिक-से अधिक रहना, व्यायाम करना और गहरी सांस लेना जिससे कि अधिक ऑक्सीजन रुधिर में पहुँच सके।

रुधिर परिसंचरण (Blood circulation)––रुधिर शरीर के अंग में बराबर ही चक्कर लगाया करता है। रुधिर की इस क्रिया को रुधिर का दौरान (**रुधिर परिसंचरण**, blood circulation) कहते हैं। अब समझना है कि रुधिर किस तरह अपना दौरा करता है––कहाँ से और कैसे वह चलता है, किन रास्तों से जाता है किन रास्तों से वापस आता है ?

रुधिर परिसंचरण हृदय से प्रारम्भ होता है। हृदय सिकुड़ कर रुधिर को अपने बाहर निकालता है और रुधिर विशेष **वाहिकाओं** (vessels) से होकर शरीर में जाता है। हम यह पढ़ चुके हैं कि रुधिर हर अंग के ऊतकों को पोषक पदार्थ दे आता है और उनके विकारों को लेकर लौट आता है। जब रुधिर हृदय से निकलता है तब यह ऑक्सीजन और पोषक पदार्थों से लदा होता है। यह शुद्ध रुधिर लाल होता है और उन वाहिका से होकर जाता है, जिन्हें **धमनियाँ** (arteries) कहते हैं। धमनियों की बहुत-सी बड़ी-छोटी शाखाएँ होती हैं। सब शाखाओं से होता हुआ रुधिर बाल जैसी पतली-पतली नलियों में फैल जाता है। इन पतली नलियों को **केशिकाएं** (capillaries) कहते हैं। इन्हीं बारीक नलियों के सहारे रुधिर अंग-प्रत्यंग में पहुँचता है और ऊतकों को पोषक पदार्थ देता है। ऊतकों को पोषक पदार्थ देने के बाद जब वह उनके विकारों को लेता है तब वह मैले लाल रंग का हो जाता है और **शिराओं** (veins) से होकर हृदय में लौट आता है। (शिराएँ वे नलियाँ हैं, जो केशिकाओं के मिलने से बनती हैं) फिर हृदय रुधिर को फुप्फुस में भेजता है। वहाँ अशुद्ध रुधिर अपने विकार को बाहर जाने वाली हवा के साथ नाक के रास्ते बाहर भेज देता है और साँस के साथ आई हुई ऑक्सीजन से मिलकर फिर शुद्ध और लाल हो जाता है। इस तरह शुद्ध होकर रुधिर फिर हृदय में आता

है और हृदय से शरीर में चक्कर लगाने के लिए भेजा जाता है । यही संक्षेप में रुधिर के चक्कर लगाने की कहानी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस सारी क्रिया में हृदय का बहुत बड़ा हाथ है ।

हृदय (Heart)--साधारणतया हम जानते हैं कि हृदय बराबर धड़का करता है। धड़कन का अर्थ है हृदय रुधिर को पम्प कर रहा है, अपने बाहर निकाल रहा है। हृदय तब तक धड़कता है जब तक शरीर जीवित रहता है। हृदय की धड़कन बन्द होने के साथ ही शरीर मुर्दा हो जाता है। हृदय की धड़कन ही नाड़ी (pulse) में गति उत्पन्न करती है। हृदय ही वह यंत्र है जो रुधिर को सारे शरीर में भेजता है।

हृदय मनुष्य की अनैच्छिक (involuntary) पेशियों (muscles) से बना है। यह छाती के गड्ढे में दोनों फुप्फुसों के बीच में है। किसी भी आदमी का, हृदय आकार और लम्बाई-चौड़ाई में उसकी बन्द मुट्ठी की तरह होता है। कहा जाता है कि हृदय फेफड़ों के बीच में है, पर वह ठीक बीचोबीच नहीं है। उसका एक-तिहाई भाग दाहिनी ओर, दो-तिहाई भाग बाईं ओर झुका होता है। हृदय एक रेशेदार ऊतक (fibrous tissue) की बनी थैली में पड़ा रहता है। इसे हृदय की थैली (हृदयावरण, pericardium) कहते हैं। इस थैली की दीवार पतली पर दो तहों वाली होती है और इससे एक तरह का बहुत थोड़ा-सा रस निकलता है, जो हृदय को गीला रखता है और उसकी गतियों में सहारा देता है।

हृदय अन्दर से खोखला है। इसके भीतर का भाग एक खड़े मांस के पट (septum) से दो कोठरियों में बँटा हुआ है। एक कोठरी दाहिनी तरफ है और दूसरी बाईं तरफ, पर दोनों का आपस में लगाव नहीं होता, एक कोठरी दूसरी से बिल्कुल अलग है फिर हर कोठरी में दो खाने (कोष्ठ) रहते हैं। ऊपर के कोष्ठों को रुधिर पाने वाली कोठरियाँ (अलिन्द, auricles) और नीचे के कोष्ठों को रुधिर भेजने वाली कोठरियाँ (निलय ventricles कहते

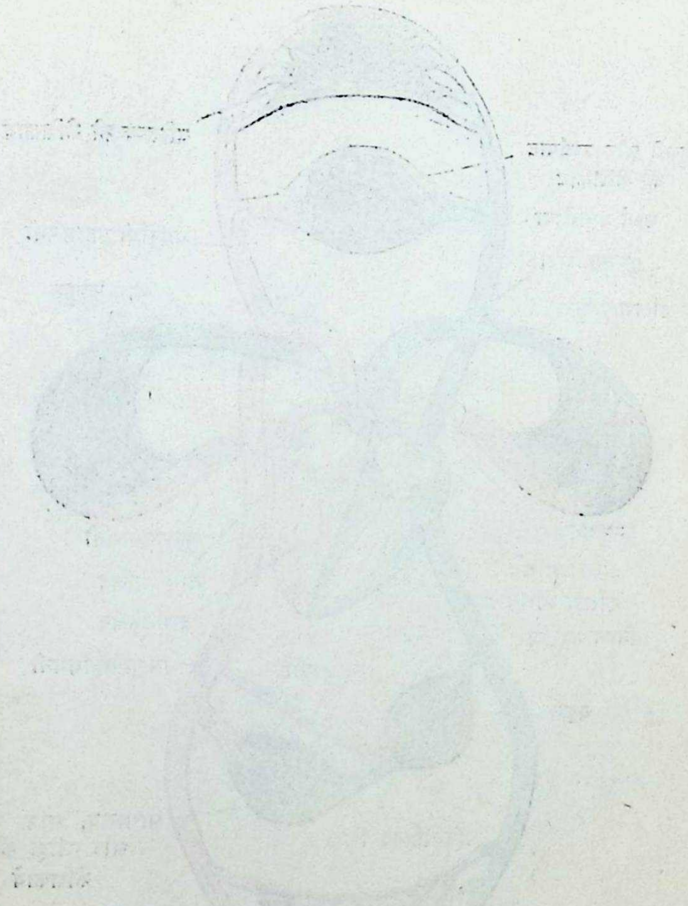

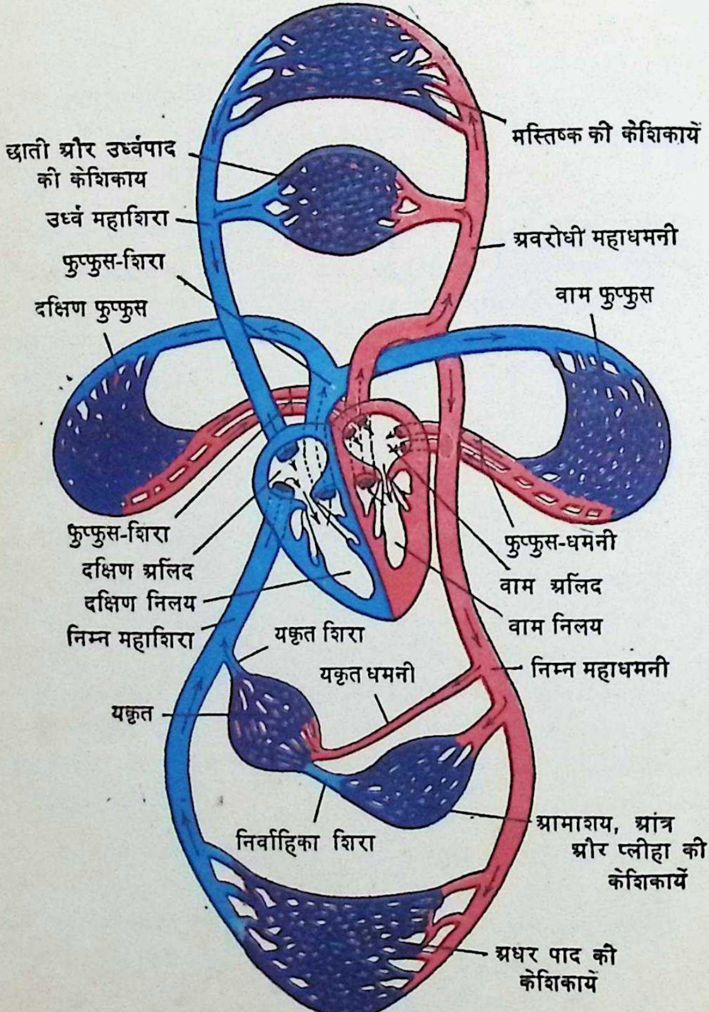

रुधिर परिसंचरण का मार्ग

हैं। इस तरह हृदय में चार छोटी कोठरियाँ या कोष्ठ हुए—दक्षिण अलिन्द (Right auricle), वाम अलिन्द (left auricle), दक्षिण निलय (right ventricle) और वाम निलय (left ventricle)। जिस पट द्वारा ऊपर का कोष्ठ नीचे के कोष्ठ से अलग रहता है उसमें पतले-पतले कपाट (valves) होते हैं।

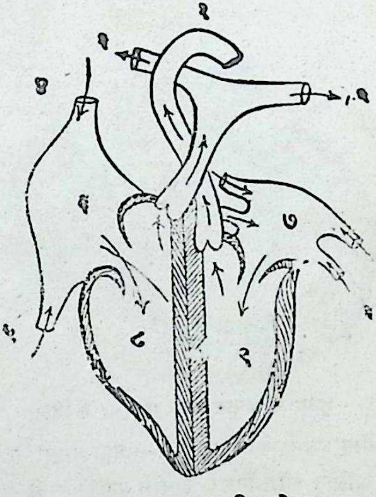

चित्र ५५—हृदय के अन्दर का प्रबन्ध चित्र से समझा जा सकता है

१—महा-धमनी, २—फुप्फुस धमनी, ३—फुप्फुस शिरा, तीर दिखाते हैं कि रुधिर हृदय में फेफड़ों से आ रहा है, ४—ऊर्ध्व महाशिरा, ५—निम्न महाशिरा, ६—दक्षिण अलिन्द, ७—वाम अलिन्द, ८—दक्षिण निलय, ९—वाम निलय।

ये किवाड़ रेशेदार ऊतक के बने हैं और इस तरह लगे हैं कि ये नीचे की ओर खुलते हैं, पर ऊपर की ओर नहीं। इससे यह होता है कि रुधिर अलिन्द से उतर कर निलय में आ जाता है, फिर उल्टा ऊपर को नहीं लौट सकता। दाहिनी ओर तीन तिकोनिए किवाड़ (त्रिवलन कपाट, tricuspid valve) होते हैं और

बाईं ओर केवल दो कोने के (द्विवलनी कपाट, bicuspid or mitral alve)। किवाड़ों से बने इस यंत्र को कपाट (valve) कहते हैं। इन कपाटों से लेकर निलयों की दीवालों तक मांस के छोटे-छोटे बन्धन चले गये हैं। ये बंधन इन कपाटों को इस तरह पकड़े रहते हैं कि उनका मुँह अलिन्द में नहीं

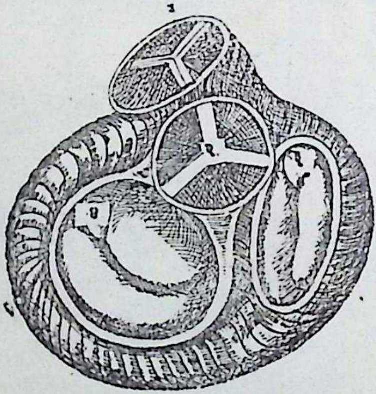

चित्र ५६—हृदय के कपाट बन्द अवस्था में दिखाए गये हैं

१—फुफ्फसीय धमनी के कपाट। २—महा-धमनी के कपाट।

३—वाम अलिन्द और निलय के बीच का द्विवलनी कपाट।

४—दक्षिण अलिन्द और निलय के बीच का त्रिवलन कपाट।

खुल सकता। जब अलिन्द सिकुड़ते हैं तो कपाट के कोने अलग-अलग हो जाते हैं और रुधिर सुगमता से निलय में उतर आता है। फिर जब रुधिर को बाहर निकालने के लिए निलय सिकुड़ते हैं तो उनके अन्दर के रुधिर के दबाव से कपाट के कोने ऊपर उठकर आपस में मिल जाते हैं, जिससे यह होता है कि रुधिर लौटकर निलय में नहीं जा सकता। यह आशंका हो सकती है कि ये कपाट आपस में मिलने के बदले कहीं अलिन्दों में न चले जायं और खुले ही रह जायं, पर ऊपर बताए गए मांस के सूक्ष्म बन्धनों के खिचाव से ये कपाट

अन्दर की तरफ नहीं जा पाते। इससे यह होता है कि रुधिर अलिन्दों में नहीं लौटता, बल्कि निलयों से रुधिर वाहिनियों द्वारा बाहर निकलता है।

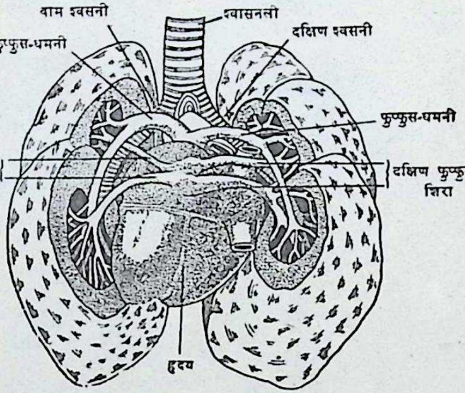

चित्र ५७--हृदय की बनावट (पीछे की ओर से)

हृदय का काम--अब हृदय के इन कोष्ठों का काम समझना आवश्यक है। अलिन्दों का काम है रुधिर को ग्रहण करना, अपने अन्दर लेना और निलयों का काम है रुधिर को बाहर निकालना। इसी आवश्यकता के अनुसार ये कोष्ठ बने भी हैं। अलिन्दों की दीवारें कुछ पतली होती हैं और निलयों की दीवारें उनसे मोटी। अलिन्द का काम केवल ऊपर से नीचे रुधिर को भेजना है, इसलिए वह बहुत मजबूत नहीं बना है। फिर वाम निलय की दीवारें दक्षिण निलय की दीवारों के दुगुनी-तिगुनी मोटी होती है। बात यह है कि वाम निलय का काम है शुद्ध रुधिर को सारे शरीर में भेजना, इसलिए इसकी

बनावट अधिक मजबूत है । निलयों में रुधिर अलिन्दों की अपेक्षा कुछ अधिक भरता है। हर निलय की समाई लगभग ७०-८० ग्राम के है । अलिन्द की समाई इससे कुछ कम है ।

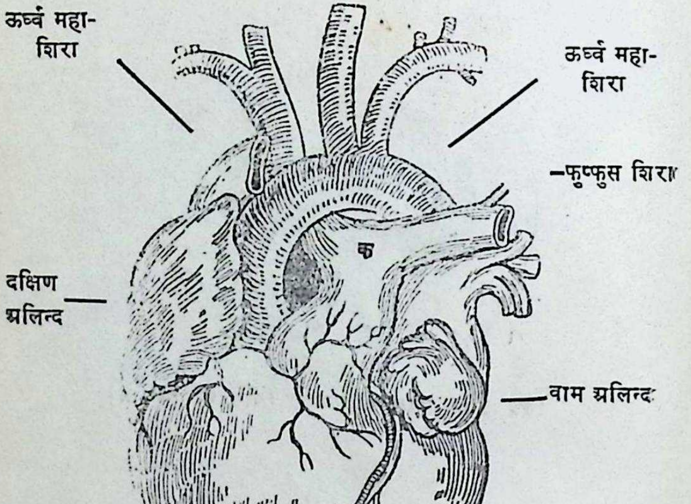

क—फुप्फुस शिरा
चित्र ५८—हृदय (सामने से)

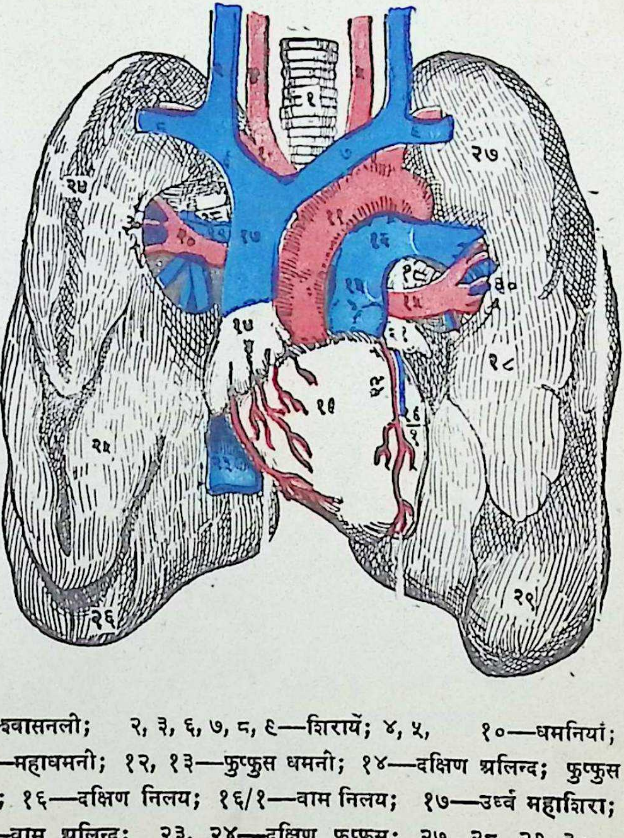

१—श्वासनली; २, ३, ६, ७, ८, ९—शिरायें; ४, ५, १०—धमनियां; ११—महाधमनी; १२, १३—फुप्फुस धमनी; १४—दक्षिण अलिन्द; फुप्फुस शिरा; १६—दक्षिण निलय; १६/१—वाम निलय; १७—उर्ध्व महाशिरा; २१—वाम अलिन्द; २३, २४—दक्षिण फुप्फुस; २७, २८, २९, ३०—वाम फुप्फुस (फुप्फुस हृदय और उनकी वाहिकायें चित्र, नं० १)

जब रुधिर सारे शरीर का चक्कर लगाकर ऊतकों के विकारों के साथ लौटता है तब वह पहले दक्षिण अलिन्द में आता है। इस कोष्ठ में रुधिर के आने के दो रास्ते हैं। यह बताया जा चुका है कि लौटने वाले अशुद्ध रुधिर की वाहिका को शिराएँ कहते हैं। दक्षिण अलिन्द में दो शिराओं से रुधिर भरता है। एक शिरा ऊपर की तरफ और दूसरी नीचे की तरफ से आती है। ऊपर वाली बड़ी शिरा (ऊर्ध्व महाशिरा, superior vena cava) सिर, ऊपर के अंग (दोनों भुजाओं) और छाती की तरफ से विकार-युक्त रुधिर इकट्ठा कर ले आती है। नीचे वाली निचली बड़ी शिरा (निम्न महाशिरा, inferior vena cava) बाकी अंगों से, जैसे उदर और टाँगों के भागों से, मैले, विकार से भरे रुधिर को इकट्ठा कर लाती है। (देखो चित्र ६०)।

अब इन दो शिराओं से आकर विकार-युक्त रुधिर दक्षिण अलिन्द में इकट्ठा हो जाता है, तब वह सिकुड़कर इस रुधिर को दक्षिण निलय में डाल देता है। इसका कारण यह है कि रुधिर को फुप्फुस में पहुँचकर फिर से शुद्ध हो जाना चाहिए और उसे फुप्फुस में भेजने का काम दक्षिण निलय ही कर सकता है। इस काम के लिए दक्षिण निलय से एक वाहिनी धमनी निकलती है (यह हम देख चुके हैं कि रुधिर ले जाने वाली वाहिनी को धमनी कहते हैं, यद्यपि धमनी में शुद्ध रुधिर बहता है, तो भी इस वाहिनी को भी, रुधिर को शुद्ध करने के लिए उसे फेफड़ों में ले जाती है, धमनी ही कहते हैं)। दक्षिण निलय से निकलने वाली इस धमनी को फुप्फुस वाली धमनी (फुप्फुस धमनी, Pulmonary artery) कहते हैं। इसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं, जिनमें से एक दाहिने फुप्फुस को और दूसरी बाएँ फुप्फुस को जाती है। जहाँ से यह फुप्फुस वाली धमनी शुरू होती है वहाँ उसके भीतर तीन आधे चन्द्रमा के आकार के किवाड़ों से बना एक कपाट (अर्ध-चन्द्र कपाट, semi-lunar valve) लगा रहता है, जिससे कोष्ठ से धमनी में जाने वाला रुधिर उल्टा नहीं लौट सकता है।

दक्षिण निलय के सिकुड़ने से रुधिर फेफड़ों वाली धमनियों से होकर फेफड़ों में पहुँचता है।

जब फेफड़ों में ऑक्सीजन के सम्पर्क से रुधिर फिर शुद्ध और लाल हो जाता है तब वाम अलिन्द में आता है। इस कोष्ठ में शुद्ध रुधिर के आने के लिए चार नलियां लगी हुई हैं। इन्हें फेफड़ों वाली शिराएं (फुप्फुस शिराएं, Pulmonary veins) कहते हैं (यद्यपि ये शुद्ध रुधिर से भरी होती हैं और

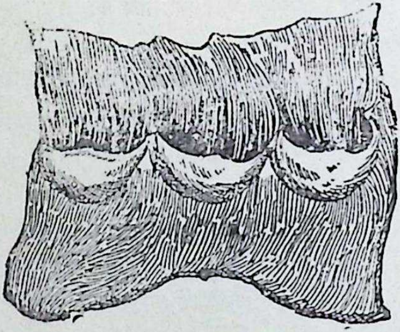

चित्र ५९--फुप्फुस धमनी के आरम्भ में आये अर्धचन्द्र कपाट

इन्हें धमनी कहना चाहिए, पर चूंकि ये हृदय में रुधिर ला रही हैं, इन्हें शिरा ही कहते हैं)। इन फेफड़ों वाली शिराओं में से दो दाहिने फेफड़े और दो बाएँ फेफड़े से आती हैं। ये शिरायें जहां वाम अलिन्द से मिलती हैं वहां इनके भीतर कोई कपाट नहीं होता।

जब इन चार शिराओं से आकर शुद्ध, चमकता हुआ लाल रुधिर वाम अलिन्द में इकट्ठा हो जाता है तो यह सिकुड़कर इस रुधिर को वाम निलय में डाल देता है। इस रुधिर को अब शरीर के और अंगों में पहुँचने के लिए रवाना होना चाहिए और यह काम वाम निलय द्वारा ही होता है। इस आवश्यक और कठिन काम के लिए वाम निलय के पिछले भाग से एक बड़ी मोटी नली निकलती है, जिसे बड़ी धमनी (महाधमनी, aorta) कहते हैं।

यहाँ भी आधे चन्द्रमा के आकार के किवाड़ों से बने एक कपाट का प्रबन्ध है। यह कपाट इस धमनी में वहाँ पर है जहाँ से वह आरम्भ होती है और इसके

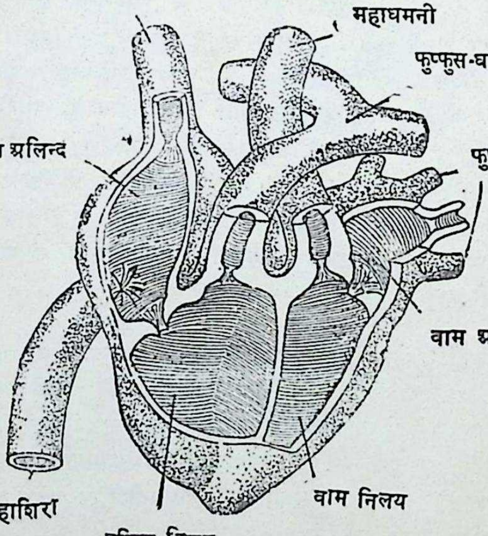

चित्र ६०—हृदय के अन्दर रुधिर के प्रवाह का मार्ग

यहाँ रहने से यह होता है कि रुधिर कोष्ठ से धमनी में जाता है, पर वापस नहीं आ सकता।[1] इस बड़ी धमनी के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि फेफड़ों वाली धमनी (जो दक्षिण निलय से निकलती है) को छोड़कर शरीर में जितनी धमनियाँ हैं वे सब इसी बड़ी धमनी से निकलती हैं।

---

१. कपाटों के कारण रुधिर उल्टा नहीं लौटता। कपाटों का प्रबन्ध इसीलिए है, पर कभी-कभी बीमारी के कारण कपाट खराब हो जाते हैं और तब रुधिर उल्टा आने लगता है।

वाम निलय के सिकुड़ने से रुधिर बड़ी धमनी में आता है और उसकी शाखा-प्रशाखाओं से होता हुआ शरीर के अंग-प्रत्यंग में पहुँचता है ।

रुधिर ले जाने वाली धमनी—यह बताया जा चुका है कि वाम निलय से महाधमनी (aorta) निकलती है । यह धमनी पहले ऊपर को जाती है । लगभग ५ सेंटीमीटर ऊपर उठने के बाद यह बाईं ओर को मेहराब की तरह मुड़ जाती है और नीचे जाते समय यह धमनी हृदय के पीछे रहती हैं । छाती के निचले भाग में पहुँच कर यह छाती और उदर के बीच वाली पेशी मध्यपट (Diaphragm) के एक छेद से निकल कर उदर में आ जाती है । उदर (abdomen) में कमर के चौथे मोहरे (कटि कशेरुक, Lumbar vertebra) के सामने यह धमनी दो बड़ी शाखाओं में बँटकर दोनों टाँगों में चली जाती है ।

आरम्भ ही में महाधमनी के ऊपर उठने वाले भाग से दो शाखाएं और निकलती हैं, जो हृदय को रुधिर पहुँचाती हैं। रुधिर को अपने अन्दर से पम्प करके सारे शरीर में भेजना हृदय का काम है, पर यह न भूलना चाहिए कि और अंगों की तरह हृदय को भी पोषक पदार्थों की आवश्यकता रहती है । ये पोषक पदार्थ इन्हीं हृदय वाली धमनियों (हृद्-धमनी, Coronary artery) से आये हुए रुधिर से हृदय को मिलते हैं ।

महाधमनी के मुड़े हुए मेहराबदार भाग से तीन बड़ी-बड़ी शाखाएँ निकलती हैं । इनमें से पहली सबसे बड़ी होती है । थोड़ी दूर ऊपर को जाकर यह छाती के भीतर ही दो शाखाओं में बँट जाती है । इनमें से एक शाखा दाहिने कन्धे, भुजा और हाथ को रुधिर पहुंचाती है और दूसरी गर्दन और सिर के दाहिने भाग में चली जाती है और रुधिर पहुँचाती है। यह हुई मेहराब से निकली पहली बड़ी शाखा की बात । मेहराब से निकली दूसरी शाखा से गर्दन और सिर के बाएँ भाग और तीसरी शाखा से बाईं ओर के कन्धे, भुजा और हाथ को रुधिर मिलता है।

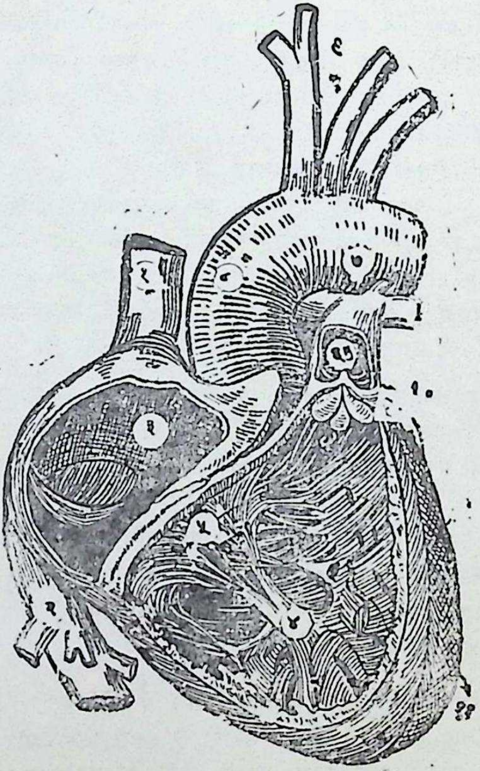

चित्र ६१—हृदय के कुछ भीतरी भाग

१—उर्ध्व महाशिरा, २—निम्न महाशिरा, ३—दक्षिण अलिंद, ४—पैपिली पेशी, ५—कपाट का प्रबन्ध, ६—फुप्फुस धमनी, ७,८,९—महाधमनी और उसकी शाखायें, १०—वाम अलिंद, ११—वाम निलय।

ऊपर कहा गया है कि अपने मेहराबदार भाग के बाद धमनी नीचे को उतरती है। नीचे जाने वाले भाग से बहुत-सी शाखाएँ निकलती हैं। छाती में शाखाएँ फेफड़ों, भोजन की नली (ईसोफेगस, Oesophagus), श्वासनली (Trachea) इत्यादि अंगों को रुधिर देती है। इन शाखाओं के अतिरिक्त कुछ शाखाएँ ऐसी हैं, जो पसलियों के बीच में पहुँच कर छाती की दीवारों को पोषक पदार्थ पहुँचाती हैं। जब महाधमनी के नीचे का भाग उदर में पहुँचता है तो उससे कई शाखाएँ फूटकर आमाशय, यकृत (liver), प्लीहा, आंत्र, वृक्क आदि उदर के अंगों को रुधिर से सींचती हैं। फिर प्रत्येक अंग की शाखा की दो शाखाएँ हो जाती हैं जिनमें से एक श्रोणि प्रदेश (pelvis) में जाती है और उससे अन्दर के अंगों को रुधिर पहुँचाती है। दूसरी शाखा बड़ी होती है, जो नीचे जांघ में उतर कर नीचे के अवयवों को रुधिर देती है।

इस तरह हमने महाधमनी का रास्ता देख लिया और यह भी जान लिया कि उससे कई शाखाएँ फूटी हैं। इन शाखाओं से भी कई छोटी-छोटी धमनियाँ निकलती हैं। सबसे छोटी धमनियाँ निरी आँखों से नहीं देखी जा सकतीं। उनको देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी की आवश्यकता पड़ती है। इन बहुत पतली धमनियों में बहता हुआ रुधिर इनसे पतली-पतली नलियों में पहुँचता है। इन्हीं नलियों को केशिकाएँ (capillaries) कहते हैं। जब तक रुधिर केशिकाओं में नहीं आ जाता तब तक वह किसी अङ्ग को पोषक पदार्थ नहीं दे सकता और न उनसे विकार ही ले सकता है।

केशिकाओं की दीवारों में पेशी नहीं होती। ये कोशिकाओं (cells) की एक तह से बनी होती हैं। कुछ केशिकाएँ तो इतनी पतली और कम चौड़ी होती हैं कि उनके भीतर केवल एक ही रुधिर कणिका आ-जा सकती है। केशिकाएँ अंग-प्रत्यंग में जाल की तरह फैली हुई हैं और प्रबन्ध ऐसा अच्छा है कि केशिकाओं की दीवारें या तो अंगों के कोशिओं के पास ही रहती हैं या उनसे बिल्कुल मिली रहती हैं। इसका फल यह होता है कि केशिकाओं में बहते हुए रुधिर का कुछ भाग, जिसे जीवद्रव्य कह सकते हैं, उनकी पतली दीवारों

से छन कर बाहर निकल जाता है और अंगों के कोशिकाओं से मिलता है--तभी ये कोशिकाएँ रुधिर के उस भाग से अपनी खुराक अतिरिक्त केशिकाओं

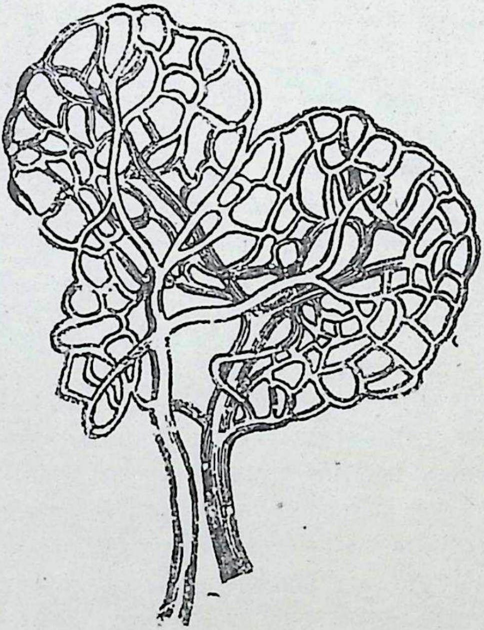

चित्र ६२--केशिकाओं का जाल। श्वेत दीखने वाली मोटी नली और केशिकाएँ शुद्ध रुधिर से भरी हैं। फिर इन्हीं केशिकाओं के मिलने से शिराएँ बनती हैं, जो जरा काली दीखती हैं।

के लाल रुधिर कणिकाओं से ऑक्सीजन भी लेते हैं (देखो चित्र ५४)। साथ ही कोशिकाओं के अन्दर की कार्बन डाइ-ऑक्साइड गैस, जो हर समय

बनती रहती है, रुधिर में मिल जाती है। इसके मिलने से केशिकाओं के अन्दर का रुधिर मैला हो जाता है।

शिराएँ (Veins)—हम यह जानते हैं कि हृदय से रुधिर महाधमनी और उसकी शाखाओं में वह कर अङ्ग-अङ्ग में पहुंचता है। हम यह भी जानते हैं कि शिराओं में वहकर रुधिर हृदय को लौटता है। अब प्रश्न यह है कि ये शिरायें कहाँ हैं ? इसको समझने के लिए यह जानना होगा कि अंगों की कोशिकाओं को रुधिर द्वारा पोषक पदार्थ देने के बाद केशिकाएँ एक-दूसरे से जुड़ने लगती हैं, जिससे कुछ मोटी और उससे अधिक मोटी नलियाँ बनती हैं। ये ही शिराएँ हैं। इनके अन्दर जो रुधिर बहता है उसमें ऑक्सीजन की कमी और कार्बन डाइ-ऑक्साइड गैस की अधिकता रहती है। यह रुधिर छोटी शिराओं से बड़ी शिराओं में बहता हुआ हृदय के दक्षिण अलिन्द में पहुँचता है और वहाँ से दक्षिण निलय में उतरकर फेफड़ों में शुद्ध होने के लिए भेजा जाता है।

धमनी और शिराओं के सम्बन्ध में जानने योग्य एक वात यह है कि धमनी पहले वड़ी रहती है और आगे चलकर उससे छोटी शाखाएँ निकलती है, पर शिराएँ पहले छोटी रहती हैं और आगे चलकर कई छोटी शिराओं के मिलने से बड़ी शिराएं बनती हैं। धमनी और उसकी शाखाओं से शुद्ध रुधिर अंगों में पहुँचता है, पर शिराओं से वही रुधिर अशुद्ध होकर उन्हीं अङ्गों से वापस आता है। धमनी की वहुत पतली शाखाओं और वहुत पतली-पतली शिराओं के वीच में जो वहुत पतली नलियों का जाल है वह केशिकाओं का जाल है। केशिकाओं की नलियाँ धमनी और शिर के बीच की चीजें हैं।

ऊपर कहा गया है कि छोटी-छोटी शिराओं के मिलने से वड़ी-बड़ी शिराएँ बनती हैं और इसी तरह अंग-प्रत्यंग से रुधिर विकारयुक्त होकर दो वडी शिराओं से दक्षिण अलिन्द में पहुँचता है। इसका सिलसिला इस तरह है। नीचे के अंग (टाँगों) की शिरा उदर में आकर अपनी तरफ के श्रोणि प्रदेश (pelvis) की शिरा से मिलती है। इसी तरह दोनों टांगों की शिराओं

ग्रौर श्रोणी प्रदेश (pelvis) की शिराग्रों के मिलने से दो बड़ी शिराएँ बन जाती हैं (ये बड़ी धमनी की ग्रन्तिम शाखाग्रों के पास पहती हैं) । ये दोनों ही शिराएँ जल्दी ही मिल जाती हैं ग्रौर इनके मिलने से निम्न महाशिरा (जिसका नाम पहले ग्रा चुका है) बनती है। उदर के ग्रङ्गों की छोटी-छोटी शिराएं इसमें ग्रा मिलती हैं । इसी से ज्यों-ज्यों यह शिरा ऊपर को जाती है, ग्रधिक मोटी हो जाती है । फिर यह हृदय के पीछे होकर एक छेद द्वारा मध्यपट (Diaphragm) को पार करती हुई छाती में चली जाती है ग्रौर तुरन्त ही दक्षिण ग्रलिन्द के नीचे के भाग में जा खुलती है । इसका ग्रर्थ यह है कि निम्न महाशिरा टाँग ग्रौर उदर के ग्रङ्ग से विकारयुक्त रुधिर को लाकर हृदय में पहुँचा देती है । इसी तरह सिर, गर्दन, दोनों भुजाएँ ग्रौर छाती के ग्रङ्गों से ग्राने वाली शिराग्रों के मेल से एक बड़ी शिरा बनती है जिसे ऊपरी बड़ी शिरा (जिसका नाम पहले ग्रा चुका है) कहते हैं। शिरा छाती में रहती है ग्रौर दक्षिण ग्रलिन्द के ऊपरी भाग में जा खुलती है। इसका ग्रर्थ भी यही हुग्रा कि ऊर्ध्व महाशिरा ऊपर के ग्रंगों से विकारयुक्त रुधिर को इकट्ठा कर हृदय में पहुंचा देती है । इस तरह जितना भी शुद्ध रुधिर हृदय में निलय से निकल कर महाधमनी ग्रौर उसकी शाखाग्रों से शरीर के विविध ग्रंगों में पहुँचता है, वह ग्रशुद्ध होने के बाद के ऊपरी ग्रौर निचली महाशिराग्रों द्वारा हृदय के दक्षिण ग्रलिन्द में लौट ग्राता है ।

रुधिर के हृदय से निकलकर सारे शरीर में चक्कर लगाने के बाद फिर हृदय ही में लौट ग्राने को रुधिर परिसंचरण या रक्त का दौरान कहते हैं । ग्रनुमान है कि एक पूरा चक्कर लगाने में रुधिर को लगभग १५ सेकेंड लगते हैं ।

रुधिर के इस चक्कर को संक्षेप में ग्रौर जल्दी से समझने के लिए यह जानना चाहिए कि रुधिर--

(१) बायें निलय से निकल कर महाधमनी ग्रौर उसकी शाखाग्रों में जाता है।

(२) महाधमनी की शाखा-प्रशाखाओं से सारे शरीर की कोशिकाओं में पहुँचता है।
(३) कोशिकाओं से छोटी शिराओं में आता है।
(४) फिर छोटी शिराओं से बड़ी शिराओं में आता है।
(५) इन दो बड़ी शिराओं से दक्षिण अलिन्द में पहुँचता है।
(६) दक्षिण अलिन्द से दक्षिण निलय में उतरता है।
(७) दक्षिण निलय से फेफड़ों वाली धमनी और उसकी शाखाओं में जाता है।
(८) फेफड़ों वाली धमनी की शाखाओं से फेफड़ों की केशिकाओं में पहुँचता है।
(९) फेफड़ों की केशिकाओं से चार फेफड़ों वाली शिराओं में जाता है।
(१०) फेफड़ों वाली शिराओं से वाम अलिन्द में पहुँचता है।
(११) वाम अलिन्द से वाम निलय में उतरता है और वहाँ से फिर महाधमनी द्वारा शरीर में भेज दिया जाता है।

कोष्ठों का सिकुड़ना और फैलना--हृदय से सारे शरीर में रुधिर भेजे जाने के सम्बन्ध में यह समझना आवश्यक है कि कोष्ठों के सिकुड़ने से ही रुधिर आगे को जाता है। जब एक कोष्ठ सिकुड़ कर रुधिर को आगे बढ़ा देता है तब वह फिर से फैलने लगता है। फैलते समय वह फिर रुधिर से भर जाता है और तब फिर उसको आगे ढकेलने के लिए सिकुड़ता है। इस तरह कोष्ठों के सिकुड़ने और फैलने की कार्यवाही जीवन भर जारी रहती है। दोनों अलिन्द एक साथ ही रुधिर से भरते हैं और एक साथ ही सिकुड़ कर रुधिर को नीचे उतारते हैं। इसी तरह दोनों निलय भी एक साथ ही रुधिर से भरते और एक साथ ही सिकुड़कर रुधिर को आगे बढ़ाते हैं।[1]

---

१. कभी-कभी हृदय की बीमारी की स्थिति में इस क्रिया में गड़बड़ी हो जाती है और एक कोष्ठ दूसरे से पहले सिकुड़ने लगता है।

पहले दोनों अलिन्द सिकुड़ते हैं, फिर दोनों निलय। इसके बाद ये सभी भाग फैलते हैं और तब हृदय थोड़ा-सा विश्राम करता है और फिर उसके चारों खाने सिकुड़ते और फैलते हैं। एक बार सिकुड़ने और फैलने में $\frac{१}{७२}$ मिनट के लगभग समय लगता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि हृदय एक मिनट में ७२ बार अन्दर रुधिर भरता है और उतनी ही बार उसे आगे बढ़ाता है।

नाड़ी या स्पंद (pulse)—जब हृदय सिकुड़ता है तो वह रुधिर को बड़े जोर से धमनियों में ढकेलता है। लचीली धमनियाँ रुधिर को ग्रहण करते समय फैलती हैं और फिर उसको आगे बढ़ाने के लिए सिकुड़ती हैं। धमनियों का फैलना और सिकुड़ना महाधमनी के आरम्भ-स्थान से ही प्रारम्भ हो जाता है और उसका सिलसिला एक लहर की तरह अन्त तक चला जाता है। यह नाड़ी (pulse) की धड़कन के रूप में मालूम होती है। नाड़ी दोनों कलाइयों में अँगूठों के नीचे तो मालूम होती ही है, पर और भाग में भी जहाँ धमनी शरीर की त्वचा के नीचे हड्डी के ऊर से निकलती है, मालूम होती है।

नाड़ी का सम्बन्ध धमनियों से ही है। शिराओं और केशिकाओं से नहीं है। जब धमनियों में रुधिर बहता है तो वह झोके के साथ आगे बढ़ता है। यही झोंका नाड़ी की धड़कन है। पर जब रुधिर केशिकाओं में आता है तो झोंका नहीं रहता। शिराओं में वह स्थिर होकर आगे को बहता है। यही कारण है कि कटी धमनी से रुधिर झोंके से बाहर निकलता है, पर एक कटी शिरा से वह स्थिरता के साथ बाहर आता है।

नाड़ी की धड़कन हृदय की ही धड़कन है। जन्म के बाद लगभग एक साल तक नाड़ी एक मिनट में लगभग १२० बार धड़कती है और तब धीरे-धीरे उसकी संख्या किशोरावस्था तक ७०-७५ बार हो जाती है।

यदि सूक्ष्मदर्शी से एक मेढक के जालीदार पैर को देखा जाय तो रुधिर धमनियों से बहता हुआ देखा जा सकता है।

रुधिर ले जाने वाली नालियों की बनावट—धमनियों की दीवारें मोटी, मजबूत और प्रत्यास्थ (Elastic) होती हैं और शिराओं की

दीवारें पतली और कुछ कमजोर। प्रत्यास्थ पेशी ऊतक (Muscular tissue) के अभाव से शिराएँ कट जाने पर चिपक जाती हैं, पर धमनियाँ कट जाने पर ज्यों की त्यों गोल बनी रहती हैं।

बहुत-सी शिराओं के भीतर कई स्थानों पर कपाट लगे हैं। इन कपाटों के किवाड़ जेब की तरह या आधे चन्द्रमा के आकार के होते हैं। इस से यह होता है कि रुधिर उलटा नहीं लौटता, बल्कि हृदय की ही ओर बहता आता है। यदि बाँह को जोर से दबाया जाय और दबाव हाथ की तरफ हो तो शिराओं में जहाँ पर कपाट लगे हैं वहाँ के भाग कुछ फूलकर ऊपर को उठ जायँगे। इस फूलने से ही मालूम होता है कि उन स्थानों पर कपाट हैं, जो रुधिर को लौटने से रोकते हैं।

केशिकाएँ जाल की तरह फैली रहती हैं। उनकी दीवारें बहुत ही पतली केवल कोशिका (Cells) से बनी होती हैं। इसी से उनसे छन-छन कर जीव-द्रव्य (plasma) रस निकलता है और कोशिका (Cells) को पोषक पदार्थ देता है। इसी से रुधिर के अन्दर की ऑक्सीजन कोशिका तक पहुँचती है और कोशिका की कार्बन डाइ-ऑक्साइड गैस रुधिर से मिल जाती है।

इन रुधिर की नलियों पर भी स्नायुयों का प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि शरीर के किसी विशेष भाग में अधिक रुधिर की आवश्यकता होती है और वहाँ धमनियों को अधिक रुधिर पहुँचाने के लिए बहुत फैलना पड़ता है। जब पेट में भोजन पचता रहता है तो पेट में अधिक रुधिर की आवश्यकता होती है। इसी तरह शरीर के और भाग भी जब वे आराम न करके काम में लगे होते हैं तो अधिक रुधिर खींचते है। अधिक रुधिर पहुँचाने का काम विशेष तंत्रिकाओं (Nerves) के सहारे होता है। इन तंत्रिकाओं (Nerves) में यह शक्ति है कि वे रुधिर की नलियों को आवश्यकतानुसार फैला सकते हैं या संकुचित कर सकते हैं।

रुधिर दाब (Blood pressure)—तुमने ऊपर पढ़ा है कि चक्कर लगाकर अशुद्ध रुधिर हृदय में आता है और हृदय शुद्ध रुधिर को महाधनी में

फेंकता है इसके लिए हृदय में बारी-बारी से संकोच और प्रसार हुआ करता है। जब हृदय के संकोच के कारण रुधिर बड़े वेग से धमनी की ओर बढता है तब धमनी की दीवार पर दबाव डालता है। इस रुधिर-दाब को प्रकुंचन दाब (Systolic pressure) कहते हैं। धमनियाँ इस दबाव के कारण फैल जाती हैं और रुधिर का प्रवाह आगे को निकल जाता है। इसी प्रकार की दशा आगे भी धमनियों की होती चली जाती है। परन्तु जब हृदय में विस्तार हो जाता है तब यह दबाव कम हो जाता है, इसे अनुशिथिलन दाब (Diastolic pressure) कहते हैं और धमनियों की दीवार फिर सिकुड़ कर पूर्ववत् हो जाती हैं और अपने अन्दर के रुधिर को दबाती हैं। यह क्रम हृदय के प्रत्येक संकोच और विस्तार के साथ होता रहता है। रुधिर द्वारा धमनियों की दीवाल पर निर्मित इस दाब को ही रुधिर-भार या रुधिर-दाब कहते हैं और यह रुधिर को शरीर में दूर स्थित केशिकाओं तक पहुँचाते रहने के लिए आवश्यक है।

यह रुधिर-दाब हृदय के पास की धमनियों में अधिक होता है, परन्तु ज्यों-ज्यों रुधिर का प्रवाह हृदय से दूरस्थ केशिकाओं में पहुँचता है त्यों-त्यों वह कम होता जाता है। कारण यह है कि केशिकाओं का क्षेत्रफल अधिक होता है, इसलिए उनमें भार कम हो जाना स्वाभाविक है। शिराओं में यह भार बिल्कुल नहीं रहता, क्योंकि केशिकाओं से रुधिर शिराओं में जाता है। वहाँ उसमें दबाव बिल्कुल नहीं होता। शिराओं में रुधिर धीमी, एक ही चाल से बहा करता है। इस प्रकार रुधिर-दाब के कारण हैं—हृदय का संकोच और प्रसार, धमनी की दीवार का लचीलापन और रुधिर की मात्रा। यदि धमनी की दीवार में इतना लचीलापन नहीं होता कि हृदय के संकोच के कारण रुधिर-वेग के अनुकूल फैलाव उसमें हो सके तो रुधिर का मार्ग अवरुद्ध होता है और रुधिर-दाब बढ़ जाता है। इसे उच्च रुधिर-दाब (High Blood pressure) कहते हैं।

आजकल डाक्टर रुधिर-दाब एक विशेष यंत्र से नापते हैं। साधारण भारतवासी का दबाव आयु+९० माना जाता है अर्थात् ३५ वर्ष की आयु में

३५+९०=१२५ होगा। रुधिर-दाब के १५५ से बढ़ जाने से अनेकानेक रोग हो जाते हैं। सामान्यतः प्रकुंचन दाब इस प्रकार का होता है :--

२५ वर्ष=११५—१२५, ४० वर्ष=१३५--१४५, ५० वर्ष से ऊपर =१४५—१५५। अनुशिथिलन दाब इससे काम होता है। स्वस्थ मनुष्य में यह अन्तर ४२—५० तक होता है। अनुशिथिलन दाब १०० से अधिक न होना चाहिए। हृदय घबड़ाना, चक्कर आना, भूख की इच्छा मर जाना, पक्षाघात (फालिज, paralysis) इत्यादि रुधिर-दाब बढ़ जाने से ही होते हैं। कभी-कभी मस्तिष्क की सूक्ष्म धमनियां फट जाती हैं और रुधिर मस्तिष्क में जम जाता है अथवा यह नाक से निकलने लगता है और मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। कुछ रोगों में, जैसे--चिन्ता, शोक में तथा कभी-कभी बीमारी अथवा कमजोरी के कारण रुधिर-दाब साधारण से कम हो जाता है। परन्तु वह साधारणतः घातक नहीं होता है।

हृदय की धड़कन पर तन्त्रिकाओं का प्रभाव--हृदय अपना काम आदमी की इच्छा से नहीं करता, वह तन्त्रिकाओं से संचलित होता है। तन्त्रिकाओं का प्रभाव इसी से जान पड़ता है कि जब कोई आवेश होता है तो हृदय आप ही आप तेजी से धड़कने लगता है। इसी तरह कभी-कभी धड़कन धीमी पड़ जाती है। हृदय के इस प्रकार कभी तेजी और कभी धीमी चाल से धड़कने का कारण भिन्न-भिन्न तन्त्रिकाओं का प्रभाव है। तन्त्रिकाओं की बातें आगे बताई जायेंगी।

रुधिर परिसंचरण के प्रभाव--रुधिर सारे शरीर का दौरा करता है यह बात सबसे पहले १७वीं सदी में विलियम हार्वे ने सिद्ध की। जो प्रमाण अब प्राप्त हैं वे ये हैं :—

(१) धमनी के कटने पर रुधिर झोंके से निकलता है। यह झोंका हृदय की धड़कन के कारण होता है।

(२) हृदय में जहां-जहां भी कपाट लगे हैं वे इसी ढंग से लगे हैं कि रुधिर अलिंद से निलय की दिशा में बहे, उल्टा न लौटे।

(३) किसी भी रुधिर वाहिका में यदि विष पड़ जाय (जैसा सांप के डँसने पर होता है) तो वह सारे शरीर में फैल जाता है।

(४) यदि किसी जीवित आदमी के शरीर पर कहीं किसी अंग पर डोरी बांध दी जाती तो यहाँ की धमनी ऊपर हृदय की तरफ फूल जाती है और रुधिर नहीं आने से दूसरी तरफ खाली हो जाती है, धमनी कटने पर हृदय की तरफ दवाव डालने से रुधिर बन्द हो जाता है।

(५) धमनी कट जाने से रुधिर की धार रुधिर के वहाव की ओर आती है, दूसरी ओर नहीं।

इसी तरह शिरा की प्रतिक्रिया हृदय की तरफ नहीं, बल्कि दूसरी तरफ होती है।

रुधिर परिसंचरण का प्रयोजन--रुधिर परिसंचरण की आवश्यकता शरीर के प्रत्येक अंग को हर समय पोषण मिलते रहने के लिए होती है। हमारा शरीर हर समय काम करता रहता है--सांस लेते रहना, भोजन को पचाना, आँख की पलक माँजना, वृक्क का हर समय शरीर के अन्दर के विकारों को निकालने में व्यस्त रहना इत्यादि सभी शरीर के काम हैं।

जब पेशियाँ गतिशील होती हैं तब उनको शक्ति की आवश्यकता होती है। हर समय कार्य करते रहने में हर समय शक्ति की आवश्यकता होती है और इसमें हर समय कुछ-न-कुछ कोशिकाएँ टूटा-फूटा करती हैं। उनका विष बाहर निकलने की आवश्यकता होती है और नई कोशिकाएँ बनने के लिए सामग्री भी पहुँचती रहनी चाहिए। रुधिर अपने परिसंचरण द्वारा शरीर की इन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

जो कुछ हम भोजन करते हैं वह आंत्रों में पचकर एक द्रव्य के रूप में हो जाता है। तब आंत्रों की दीवारों के अंकुर, रुधिर-वाहिनी और आक्षीर-वाहिनी (lacteal) उससे पोषक भाग को खींच लेती हैं और उस रुधिर में, जो भ्रमण करके लौट रहा है, मिला देती हैं। इस प्रकार बाहर से पोषक तत्त्व लेकर रुधिर हृदय और फुप्फुस से होते हुए शुद्ध रूप में पुनः शरीर में पहुँच जाता है और

शरीर के प्रत्येक भाग को उनकी आवश्यकता की सामाग्री पहुँचा देता है। इस यात्रा में वह कोशिकाओं को पोषक पदार्थ देता जाता है और उनसे दूषित पदार्थ बदले में लेता आता है और इन पदार्थों को वह जलाने या बाहर निकाल देने के प्रबन्ध में सहायक होता है।

शरीर में ताप बढ़ने पर आवश्यकता से अधिक ताप को बाहर निकालने में और ताप घटने पर उसे सुरक्षित रखने में रुधिर ही सहायक होता है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों (Endocrine glands) के **हार्मोन्स,** (harmones) भी रुधिर में मिलकर पूरे शरीर में वितरित होते हैं।

दुर्बल हृदय—हृदय शरीर का एक प्रधान अंग है। इसलिए साधारणतया प्रत्येक बालक स्वस्थ हृदय लेकर पैदा होता है। उसके खेल-कूद, व्यायाम से जितनी उसके शरीर की अन्य पेशियाँ दृढ़ होती हैं उतनी ही उसके हृदय की पेशियाँ भी दृढ़ होती हैं। परन्तु अगर वह खेल-कूद, व्यायाम से दूर रहता है तो स्वभावतः उसका शरीर दुर्बल हो जायगा और साथ ही हृदय भी। कुछ बच्चे जन्म से दुर्बल हृदय के होते हैं। उनमें रोने-चिल्लाने में दौरा आ जाता है, होंठ नीला पड़ जाता है और बेहोश हो जाया करते हैं। परन्तु ऐसे बालक कदाचित् २-४ सौ में एक-दो होते हैं। कुछ रोग होते हैं, जो हृदय को दुर्बल बना देते हैं। बात (rheumatism) और आतशक (syphilis) ऐसे दो रोग हैं जिनसे हृदय के कपाट कुछ मोटे हो जाते हैं जिस कारण वे ठीक से बन्द नहीं होते। इससे रुधिर परिसंचरण विकृत हो जाता है और कुछ समय में हृदय अनुशिथिल (dialate) हो जाता है, पाँव में सूजन आ जाती है और थोड़े से भी परिश्रम से साँस फूलने लगती है। ऐसी दशा में चन्द कदम चलना व एक सीढ़ी चढ़ना मुश्किल हो जाता है।

लसीका (Lymph)

हम यह देख चुके हैं कि अंगों की कोशिकाओं का पोषण रुधिर से नहीं बल्कि केशिकाओं की दीवारों से छन-छन कर निकले हुए जीवद्रव्य के कुछ भाग से होता है। इस भाग को लसीका कहते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि

कोशिकाएं कभी भी सीधे रुधिर के सम्पर्क में नहीं आतीं, वे लसीका के ही सम्पर्क में आती हैं और उसी से पोषक पदार्थ पाती हैं। लसीका में वे पदार्थ घुले रहते हैं, जिनकी कोशिकाओं को आवश्यकता रहती है जैसे--शकर, प्रोटीन, खनिज, लवण, वसा इत्यादि। ये पोषक पदार्थ लसीका से निकल कर कोशिकाओं को पोषण प्रदान करते हैं। कोशिकाओं के विकार जैसे; यूरिया, यूरिक अम्ल, कार्बन डाइ-ऑक्साइड इत्यादि भी लसीका में घुल जाते हैं।

यह ऑक्सीजन वहां कैसे पहुँचता है ? इसका भी प्रबन्ध है। जैसा पहले बतलाया जा चुका है कि केशिकाओं की दीवार इतनी पतली होती है कि वह रुधिर के लाल कणिका को इस पार छोड़ कर पोषणयुक्त लसीका को बाहर की कोशिकाओं तक निकल जाने देती है। उसी प्रकार रुधिर कणिका को केशिकाओं में छोड़कर ऑक्सीजन भी लसीका के साथ कोशिकाओं तक पहुँचता है।

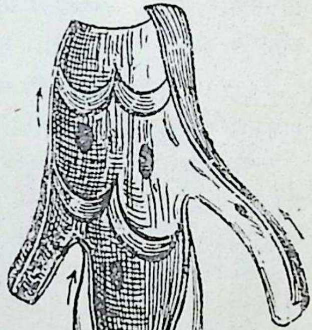

चित्र ६३--एक खुली शिरा अन्दर अर्द्ध चन्द्रमा के आकार का कपाट है

कोशिका (cells) को खूराक देने और उनके विकार ले लेने के बाद लसीका यूरिया, यूरिक अम्ल, कार्बन डाइ-ऑक्साइड आदि से लद जाती है और एक नये मार्ग में लौट आती है।

हर एक अंग में रुधिर की केशिकाओं के अतिरिक्त कुछ और कोशिकाएँ भी हैं। इन्हें लसीका कोशिकाएँ (lymphatic capillaries) कहते हैं। यह लसीका इन्हीं कोशिकाओं में चली जाती है। इन कोशिकाओं के परस्पर मिलने से लसीका की पतली-पतली वाहिकाएँ बनती

हैं। कई पतली लसीका वाहिका (lymphatic vessels) के आपस। में मिलने से बड़ी-बड़ी लसीका वाहिनी (lymphatic ducts) बनती हैं। शरीर के सभी अंगों से इकट्ठा होकर लसीका दो वाहिनियों में आ जाता है, जिनमें से एक बड़ी और दूसरी छोटी होती है। बड़ी लसीका वाहिनी, जिसे छातीवाली वक्षीय वाहिनी (thoracic duct) कहते हैं, गर्दन के बायें भाग में पहुँच कर गर्दन, कंधा और भुजा की शिराओं के संगम में जा मिलती है। दूसरी वाहिनी गर्दन की दाहिनी तरफ की शिरा में मिल जाती है। इस तरह लसीका रुधिर से ही निकलती है और सारे शरीर का लसीका इकट्ठा होकर दो वाहिनियों के रास्ते रुधिर में ही जा मिलता है।

वसा (fat) की कोशिकाओं तक पहुँचने के सम्बन्ध में कुछ विशेषता है। पाचक तन्त्र में हम पढ़ आये हैं कि आंत्रों के अंकुर पाचक रस के आवश्यक भाग को खींचकर रुधिर में मिला देते हैं। इन्हीं अंकुरों में आक्षीर वाहिनी (lacteal) भी होती है, जो वसा को लेकर लसीका वाहिका (lymphatic vessels) में जाती हैं और अन्त में वक्षीय वाहिनी (thoracic duct) में डाल देती है। वसा के पचने में विशेषता यह है कि यह

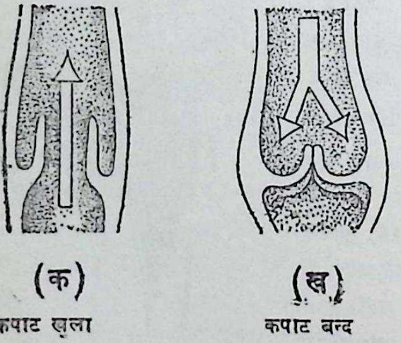

चित्र ६४—कपाटों की क्रिया

छोटी आंत्र से सीधे रुधिर में नहीं जाती; वह पहले लसीका में और फिर रुधिर में जाती है। रुधिर से वसा कोशिकाओं तक पहुँच जाती है। कोशिकाओं में पहुँच कर वसा जल जाती है और शरीर को शक्ति देती है। अधिक वसा भविष्य के लिए इकट्ठी हो जाती है और ऐसे समय जब हमको बिना भोजन के रह जाना पड़ता है तब यह वसा जलती और शक्ति देती है।

लसीका कोशिका बहुत अंशों में शिराओं की तरह होती है। किन्तु इस वाहिका की दीवारें और भी पतली होती हैं। इसी से खाली रहने पर ये वाहिका चिपकी रहती हैं और ढूंढ़ने पर जल्दी नहीं मिलतीं।

लसीका की वाहिका के सम्बन्ध में यह भी जानना चाहिए कि प्रायः वे ग्रंथियों से होकर निकलती हैं। इसका ढंग यह है कि वाहिका ग्रंथि के एक सिरे या किनारे से जुड़ जाती है और दूसरे किनारे या सिरे के एक-दूसरी नई वाहिका के रूप में निकलती हैं। लसीका पहली वाहिका से ग्रथि में पहुँचती और दूसरी वाहिका से बाहर निकलती है। बगल (कांख), जांघ के गड्ढे और गर्दन आदि कई अंगों में ये ग्रंथियां रहती हैं। ये **लसीका ग्रंथियाँ** (lymphatic glands) कहलाती हैं।

इन ग्रंथियों का काम है लसीका के अन्दर के विकारों को अपने में रख लेना और फिर उनको नष्ट कर देना, जिससे रोग उत्पन्न न हो। फोड़ा होने की स्थिति में प्रायः ये ग्रंथियाँ फूल जाती हैं, जिसका अर्थ यह है कि वे रोग के कीड़ों को अपने अन्दर रख लेती हैं और आगे बढ़ने नहीं देतीं। इन ग्रंथियों में एक प्रकार के **श्वेत रुधिर कणिका** (white corpuscles) भी बनते हैं, जो रुधिर में पहुंच जाता है।

रुधिर के परिसंचरण का आवश्यक काम शरीर में आप ही आप होता रहता है। साधारण स्वास्थ्य की दशा में उसके लिए आदमी को तनिक भी ध्यान नहीं देना पड़ता। फिर जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया है, मनुष्य का कर्तव्य है कि अच्छे भोजन से तथा खुली हवा में रहकर रुधिर को अच्छी स्थिति में रखे।

प्रश्न

१—रक्त-परिभ्रमण के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो? इसका महत्त्व क्या है? (ब० हि० यू० १९४२)

२—चित्र की सहायता से रक्त-संचालन-तन्त्र को समझाओ। (उ० प्र० १९४२)

३—श्वेत रक्तकण को बहुधा 'रक्त के सैनिक' भी कहते हैं। क्या यह नाम उपयुक्त है? क्यों? (उ० प्र० १९४३,१९४८)

४—रक्त के भिन्न-भिन्न अवयवों का वर्णन करो। शरीर-संचालन में प्रत्येक की क्या उपयोगिता है? रक्त द्वारा भोजन के पोषक-तत्त्व शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में किस प्रकार पहुँचते हैं। (ब० हि० यू० १९४३)

५—चित्र की सहायता से हृदय की बनावट तथा उसके कार्य समझाओ। (उ० प्र० १९४४ पं० यू० १९४६)

६—हृदय की (क) बनावट, (ख) स्थान तथा (ग) कोष्ठों के सम्बन्ध में क्या जानते हो? हृदय के कार्यों को समझाओ। (उ० प्र० १९४४)

७—रक्त-परिभ्रमण की आवश्यकता शरीर के लिए क्यों होती है? रक्त के मार्ग में जो-जो क्रियायें होती हैं उनका वर्णन करो। (ब० हि० यू० १९४४, उ० प्र० १९४९)

८—रक्त जमने की क्रिया का वर्णन करो। इसकी क्या उपयोगिता है? (पं० यू० १९५०)

९—लसीका किसे कहते हैं और कोशिकाओं को पोषण पहुँचाने में उसका क्या काम पड़ता है और किस प्रकार?

१०—लसीका, कोशिकाओं और वाहिका तथा ग्रंथियों की उपयोगिता के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो?

११—हृदय की बनावट तथा कार्य चित्र द्वारा समझाइये। शरीर में रक्त किस प्रकार शुद्ध होता है? (उ० प्र० १९७१)

१२—संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये :—रक्त की बनावट (उ० प्र० १९७१)

१३—हृदय की बनावट चित्र द्वारा समझाइये और रक्त-परिभ्रमण का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। (उ० प्र० १९६९)

१४—निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये :—

(क) हेमोग्लोबिन (Haemoglobin) (उ० प्र० १९६९)

(ख) रक्त के कार्य (उ० प्र० १९७०)

अध्याय ६

श्वसन-तन्त्र

(THE RESPIRATORY SYSTEM)

निश्वसन और निःश्वसन

(INSPIRATION AND EXPIRATION)

श्वसन की जरूरत—रुधिर और उसके परिसंचरण सम्बन्धी विषयों को जानकर यह बात बहुत कुछ समझ में आ गई होगी कि **साँस लेना या निश्वसन** (Inspiration) और **साँस निकलना या निःश्वसन** (Expiration) क्यों आवश्यक है। संक्षेप में, अन्दर जाने वाली साँस का काम है फेफड़ों में साफ हवा पहुँचाना। उससे जो ऑक्सीजन मिलती है वह रुधिर को शुद्ध करती है। इसी तरह बाहर जाने वाली साँस का काम है रुधिर के अन्दर के विकार को कार्बन डाइ-ऑक्साइड के रूप में बाहर निकाल फेंकना। रुधिर शरीर के लिए आवश्यक है और रुधिर की सफाई और अच्छाई बहुत कुछ साँस लेने और निकालने पर निर्भर है।

वस्तुतः विकारों को बाहर निकालने के कई प्रबन्ध हैं और ये प्रबन्ध भिन्न-भिन्न अंगों में होते हैं। जब रुधिर परिसंचरण करता हुआ उन अंगों में पहुँचता है तो वे रुधिर के अन्दर से विकारों को ले लेते हैं और उन्हें मूत्र तथा स्वेद (sweat) के साथ शरीर के बाहर निकाल देते हैं। साँस के साथ विकार निकालने का प्रबन्ध फुप्फुसों (lungs) के सहारे होता है और वह तभी होता है जब रुधिर फेफड़ों में पहुँचता है। इसी तरह मूत्र के साथ विकार निकालने का काम वृक्क (kidneys) से और पसीना (स्वेद, sweat) के साथ विकार निकालने का काम त्वचा (skin) के सहारे होता है।

शरीर के अन्दर जितनी भी गतियां होती हैं उन सबके कारण कोशिकाएं टूटती-फूटती हैं और ऊतकों और कोशिका में कई तरह की रासायनिक क्रियायें होती हैं, इनमें बहुत से पदार्थ शरीर के अन्दर बनते हैं, जो हानिकारक होते हैं और जिसका शरीर के बाहर निकल जाना ही अच्छा है। कार्बन डाइ-ऑक्साइड एक ऐसा पदार्थ है, जो शरीर में बहुतायत से बनता है। बात यह है कि ऊतकों में कार्बन की मात्रा रहती है और जब गतियों के कारण ऊतकों की कोशिकाएँ टूटती-फूटती हैं तो कार्बन डाइ-ऑक्साइड तैयार होती है। इसके बाहर निकलन का प्रबन्ध हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं। जब कोशिकाओं की पतली दीवारों से छन-छन कर रुधिर कोशिका में मिलता है तो रुधिर की ऑक्सीजन कोशिका को मिल जाती है और कोशिका की कार्बन डाइ-ऑक्साइड रुधिर में पहुँच जाती है जिससे रुधिर का रंग मैली स्याही लिए हुए सा हो जाता है। शरीर का परिसंचरण कर और इस विकार के कारण मैला होकर रुधिर हृदय के दक्षिण अलिन्द में आता है। वहाँ से दक्षिण निलय में उतर कर वह साफ होने के लिए फेफड़ों में जाता है। फेफड़ों में ही ऑक्सीजन भरी साफ हवा आती है और उसके सम्पर्क से रुधिर फिर शुद्ध हो जाता है। हवा के साथ आई हुई ऑक्सीजन रुधिर में मिल जाती है और रुधिर के साथ आई हुई कार्बन डाइ-ऑक्साइड बाहर जाने वाली हवा के साथ शरीर से बाहर निकल जाती है। साँस की क्रिया इसलिए होती रहती है कि शरीर में बराबर ही ऑक्सीजन पहुँचा करे और कार्बन डाइ-ऑक्साइड उसके साथ बाहर निकल जाया करे।

हवा—श्वसन-क्रिया की आवश्यक सामग्री हवा है। हवा अन्दर जाती और बाहर आती है। इसलिए हवा के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातों को जानना चाहिए। हवा कई गैसों के सम्मिश्रण से बनती है। शुद्ध हवा में लगभग ७९%नाइट्रोजन और २१%ऑक्सीजन रहती है। इनके अतिरिक्त उसमें कुछ पानी की भाप (water vapour) और नाम मात्र की कार्बन डाइ-ऑक्साइड भी रहती है। यह तो हुई शुद्ध हवा की बात पर जब फेफड़ों में

पहुँचे हुए रुधिर को ऑक्सीजन देकर और उससे विकार लेकर हवा बाहर आती है तो उसमें बहुत से परिवर्तन हो जाते हैं। इस तरह सांस द्वारा ली और निकाली गई हवा में बहुत भेद रहता है। बाहर निकली हवा में ऑक्सीजन की मात्रा केवल १६-१७% रह जाती है और कार्बन डाइ-ऑक्साइड की मात्रा लगभग ४% बढ़ जाती है। नीचे की सारिणी से निश्वसन (Inspiration) और निःश्वसन (Expiration) हवा की निष्पत्ति का अन्तर मालूम हो जायगा—

	निश्वसन की हवा में प्रतिशत	निःश्वसन की हवा में प्रतिशत
नाइट्रोजन	७९·००	७९·००
ऑक्सीजन	२०·९६	१६·६०
कार्बन डाइ-ऑक्साइड	·०४	४·५०
पानी की भाप	थोड़ी-सी	अधिक

बाहर निकाली गई हवा साँस ली हुई हवा से अधिक गरम होती है। उसकी गर्मी लगभग वही होती है, जो शरीर की होती है।

बाहर निकाली गई हवा में कार्बन डाइ-ऑक्साइड का पता एक प्रयोग से चल सकता है। एक प्याले में चूने का थोड़ा साफ पानी और शीशे की एक लम्बी (ट्यूब) के एक सिरे को उसमें डुबो कर दूसरे सिरे से फूंको। पानी धीरे-धीरे दूध के रंग का हो जायगा। इस परिवर्तन का कारण है श्वास की कार्बन डाइ-ऑक्साइड और चूने का प्रयोग, जिससे खड़िया (चाक) बनती है।

बाहर निकाली गई हवा में पानी की भाप भी रहती है। इसका पता किसी शीशे या स्लेट के टुकड़े पर सांस निकालने से चलेगा। उसके ऊपर भी भाप-सी जम जाती है। ऐसी हवा गरम भी होती है, यह हम हथेली पर सांस निकाल कर किसी समय अनुभव कर सकते हैं।

श्वसन-अंग--नाक के रास्ते द्वारा हवा चलकर फेफड़ों में पहुँचती है। हवा के जाने और आने के रास्ते को सांस का रास्ता (श्वसन मार्ग, Respiratory passage) कहते हैं। इसके पांच भाग हैं :—

(१) नासाद्वार (nostrils)--हवा इन्हीं सूराखों से अन्दर घुसती है। इस सम्बन्ध में स्मरण रखना चाहिए कि सांस खींचने का अंग नाक है, न कि मुंह। मुंह से सांस लेना ठीक नहीं।

(२) ग्रसनी (pharynx)--नासाद्वार से हवा ग्रसनी में उतरती है।

(३) कंठ (larynx)--गले से हवा कंठ में आती है। कंठ स्वासनली का ऊपरी भाग है।

(४) श्वासनली (trachea)--कंठ के बाद ही श्वासनली नामक हवा की नली है। हवा कंठ के स्वासनली में जाती है। श्वासनली की लम्बाई लगभग १२ सेमी होती है।

(५) श्वसनी (bronchus)--स्वासनली आगे चलकर दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है इसे श्वसनी (bronchi) कहते हैं। ये ही फेफड़ों में हवा ले जाती हैं। स्वासनली से हवा इन श्वसनी में आती है। एक नली दाहिने फेफडे में जाती है और दूसरी बाएँ में।

सांस लेने और फेंकने के अंगों में फेफड़े बहुत आवश्यक हैं, पर ये ऊपर बताये गये अंग कम आवश्यक नहीं हैं। सबसे पहली बात यह है कि हवा नासाद्वार से होकर अन्दर जाती है। इससे यह होता है कि नाक की झिल्ली के सम्पर्क में आकर हवा गरम हो जाती है, फिर नाक के बालों से छनकर हवा के अन्दर की धूल के कण बाहर ही रह जाते हैं। इन्हीं दो बातों के कारण यह आवश्यक है कि सांस नाक से ली जाय, न कि मुँह से। मुंह खाने के लिए है, न कि सांस लेने के लिए। मुंह में दांत इत्यादि खाने-चबाने के प्रबन्ध है। नाक से सांस लेने के प्रबन्ध में बाल पैदा कर दिए गये हैं। इसी कारण नाक के बाल कटवाए नहीं जाते। लोग कहते भी हैं कि अमुक सज्जन, अमुक सज्जन की नाक के बाल हैं अर्थात् अति प्यारे हैं।

यह पीछे बताया गया है कि हवा नासाद्वार से होकर ग्रसनी में जाती है और ग्रसनी से कंठ और श्वासनली में। यदि हम गर्दन में सामने की तरफ ठीक बीच में टटोलें तो एक कड़ी और लम्बी चीज मालूम होती है। जब हम कुछ निगलते हैं तो यह ऊपर उठती और फिर नीचे को गिरती हुई दिखाई देती है। यही कंठ और श्वासनली है। ऊपरी मोटे और चौड़े भाग को कंठ

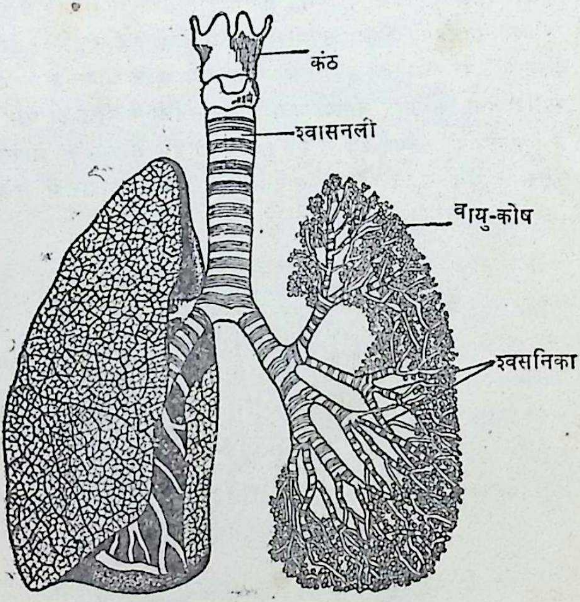

चित्र ६५--कंठ, श्वासनली और फेफड़ा। सबसे ऊपर कंठ है। नीचे श्वासनली जो दो श्वसनी में बँट कर दोनों फेफड़ों में आ गयी है। एक फेफड़े के ऊपर फुप्फुसावरण है और दूसरा फुप्फुसावरण रहित दिखाया गया है। इसमें कई छोटी-छोटी श्वसनिका दीखती हैं।

(larynx) कहते हैं और नीचे के भाग को श्वासनली (trachea)। श्वासनली से एक नली छाती की हड्डी (उरोस्थि, sternum) के पीछे होकर छाती के भीतर जाती है। इसकी लम्बाई लगभग ११ सेमी और चौड़ाई-गोलाई २·५ सेमी से कुछ कम होती है। यह नली बिल्कुल गोल नहीं होती है। इसका अगला भाग तो गोल अवश्य होता है, पर पीछे का भाग जो ग्रसिका (oesophagus) से मिला रहता है, सपाट होता है।

श्वासनली की दीवार उपास्थि से बनी होती है। उपास्थि के छल्ले एक दूसरे के ऊपर रखे रहते हैं। पीछे की ओर ये छल्ले आपस में जड़े नहीं होते, क्योंकि जैसा कि ऊपर बताया गया है, श्वासनली के पीछे का भाग चपटा होता है। छल्लों की संख्या १६ से २० तक होती है। सब छल्ले आपस में योजी ऊतक से बँधे रहते हैं। श्वासनली की भीतरी दीवार में श्लेष्मल-झिल्ली (mucous membrane) रहती है।

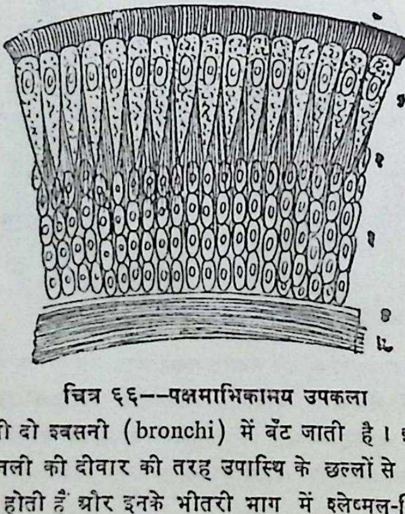

चित्र ६६--पक्ष्माभिकामय उपकला

श्वासनली दो श्वसनी (bronchi) में बँट जाती है। इन नलियों की दीवारें श्वासनली की दीवार की तरह उपास्थि के छल्लों से बनी और योजी ऊतक से गठी होती हैं और इनके भीतरी भाग में श्लेष्मल-झिल्ली रहती हैं।

इसमें भी बाल की तरह बहुत छोटे-छोटे पदार्थ होते हैं, जो **पक्ष्माभिका** (cilia) कहलाती हैं। ये बाल बहुत सावधान होते हैं। यदि किसी तरह धूल श्वासनली में पहुँच जाती है तो ये उसको गले में लौटा देते हैं। वहाँ से यह खाँसी के सहारे बाहर फेंक दी जाती है। यदि किसी वस्तु की एक बूंद भी इस नली में चली जाती है तो श्लेष्मल-झिल्ली की पक्ष्माभिका अत्यन्त उत्तेजित हो जाती है और जोर से खाँसी आ जाती है। जब तक वह वस्तु बिल्कुल निकल नहीं जाती, पक्ष्माभिका शान्त नहीं होती और खाँसी रुकती नहीं।

दाहिनी श्वसनी दाहिने फुप्फुस से और बाईं श्वसनी बाएँ फुप्फुस से सम्बन्ध रखती है। फुप्फुस में घुसते ही हर एक नली की कई शाखाएँ हो जाती हैं और फिर हर एक से और भी छोटी-छोटी शाखाएँ फूटती हैं। इन शाखाओं को **श्वसनिका** (Bronchioles) कहते हैं।

फुप्फुस या फेफड़े (Lungs)--फेफड़ दो हैं--दाहिना और बायाँ। ये दोनों छाती के गड्ढे में दाहिनी और बाईं तरफ हैं। इनका रंग कुछ नीला-पन लिए भूरा होता है। जन्म से पहले फेफड़ों का रंग गहरा लाल और तुरन्त उत्पन्न हुए बच्चे के फेफड़ों का रंग गुलाबी लाल होता है। दाहिना फेफड़ा बाएं से कुछ चौड़ा और भारी होता है। फेफड़ा कुछ-कुछ गावदुमी होता है--एक ओर पतला और कम चौड़ा, पर दूसरी ओर मोटा और अधिक चौडा। इनका चौड़ा भाग मध्यपट से ऊपर होता है। यह हम पढ़ चुके हैं कि इसी पेशी से छाती का भाग उदर के भाग से अलग रहता है।

फेफड़े ऊपर से चिकने और चमकीले होते हैं और दबाने से स्पंज की तरह मालूम होते हैं। हर एक फेफड़े के ऊपर एक पतली झिल्ली का खोल (फुप्फुसावरण, pleura) चढ़ा रहता है। यह फुप्फुसावरण दोहरा होता है। इसका एक स्तर फेफड़े की पीठ से बिल्कुल लगा रहता है, इसे **आन्तर फुप्फुसावरण स्तर** कहते हैं और दूसरा स्तर छाती की भीतरी दीवार से। इसे **बाह्य फुप्फुसावरण स्तर** कहते हैं।

फुप्फुस में रुधिर का साफ होना--पीछे बताया जा चुका है कि फेफड़े में घुसते ही हर श्वसनी की कई सूक्ष्म शाखाएँ हो जाती हैं। इनमें से हर एक को श्वसनिका कहते हैं। हर श्वसनिका में हवा के फूले-फूले थैले (वायु-कोश, Air Sac) लगे रहते हैं और हर वायु-कोष में हवा की सूक्ष्म कोठरियाँ (कूपिका, Alveoli) होती हैं। इस तरह फेफडों में कूपिकाएँ हैं और हर कूपिका का लगाव बाहर की हवा से रहता है। असंख्य नलिकाओं में लगी हुई असंख्य कूपिकाओं के कारण जो भाग हवा के सम्पर्क में आता है वह शरीर के सारे बाहरी स्तर से पचपन गुना बड़ा है।

वायु-कोश की दीवारें कोशिकाओं से बनी होती हैं। फेफड़े के हर भाग में रुधिर और लसीका वाहिनियाँ केशिकाएँ और तन्त्रिका तंतु रहते हैं। ये

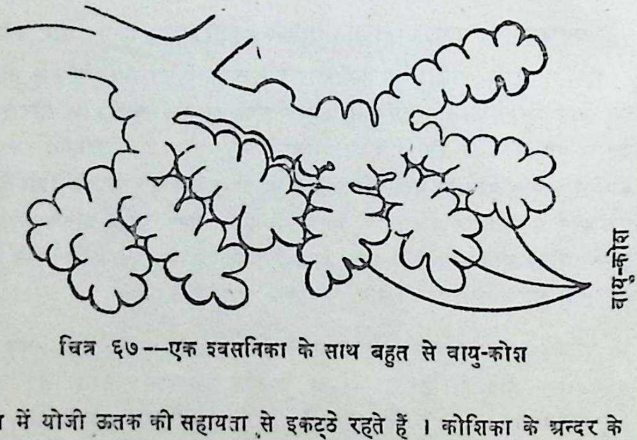

चित्र ६७--एक श्वसनिका के साथ बहुत से वायु-कोश

आपस में योजी ऊतक की सहायता से इकट्ठे रहते हैं। कोशिका के अन्दर के रुधिर और कूपिका की हवा के बीच में केवल कोशिका और कूपिकाओं की पतली दीवारें रहती हैं। ये इतनी पतली होती हैं कि इनमें से गैस आ-जा सकती है। इसलिए कोशिकाओं का रुधिर कूपिका से ऑक्सीजन ले लेता है।

ओर कार्बन डाइ-ऑक्साइड दे देता है (देखो चित्र ६७)। इस तरह फफड़ में गैसों की अदला-बदली हो जाती है। यह हम जानते हैं कि सांस द्वारा ली हुई हवा में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक रहती है ओर चक्कर लगाकर वापस आये रुधिर में कार्बन डाइ-ऑक्सइड का भाग अधिक रहता है। बाहर से आई ऑक्सीजन रुधिर में पहुँच जाती हैं जिससे कोशिकाओं के अन्दर का रुधिर साफ ओर लाल होकर फेफड़ों की शिराओं से बहता हुआ हृदय के वाम अलिन्द में पहुँचता है। उधर रुधिर से निकल कर हवा में पहुँचती हुई कार्बन डाइ-ऑक्साइड निकलती साँस के साथ बाहर फेंक दी जाती है।

श्वसन की क्रिया-विधि—फेफड़ों के अन्दर हवा का जाना ओर फिर बाहर निकलना सांस की क्रिया (श्वसन, respiration) है। इस तरह इसके दो भाग हैं--

(१) हवा नासाद्वार से होकर फफड़ों में घुसती है जिससे छाती फूलकर पहले से बड़ी हो जाती है। यह सांस लेना (निश्वसन inspiration) है।

(२) थोड़ी देर में हवा नासाद्वार से बाहर निकलती है। छाती, जो सांस लेते समय फूली थी, ज्यों की त्यों हो जाती है। सांस लेते समय फेफड़े भी फूलते हें। ये अब सिकुड़ जाते है। हवा के बाहर निकलने की क्रिया को (नि:श्वसन, expiration) कहते हैं।

सांस की एक पूरी क्रिया में एक बार सांस लेना ओर एक वार सांस निकालना दोनों होते हैं, अर्थात् दोनों क्रियाओं से एक पूरी सांस होती है। जवान आदमी १ मिनट में १८ वार सांस लेता है। अब यह देखना है कि ये दोनों क्रियाएं कैसे होती हैं।

(१) **निश्वसन**—जब हम हवा भीतर खींचते हैं तो छाती की समाई अधिक हो जाती है, वह फूलती है। मध्यपट, जो मेहराव की तरह है ओर जिसके बीच का भाग ऊपर उठा रहता है, सिकुड़ता है ओर दबकर उदर

(Abdomen) की ओर चपटा हो जाता है । इधर पसलियाँ (Ribs) अपने बीच स्थिर एक प्रकार के सिकुड़ने से ऊपर को उठती हैं। पसलियों के साथ ही उरोस्थि (sternum) भी ऊपर सामने की तरफ उठती है । इन सब गतियों से छाती फैल जाती है । जैसे-जैसे वह फैलती है हवा फेफड़ों से घुसती जाती है । वायु-कोश फैल जाते हैं और फेफड़े फलकर कुछ बड़े हो जाते हैं ।

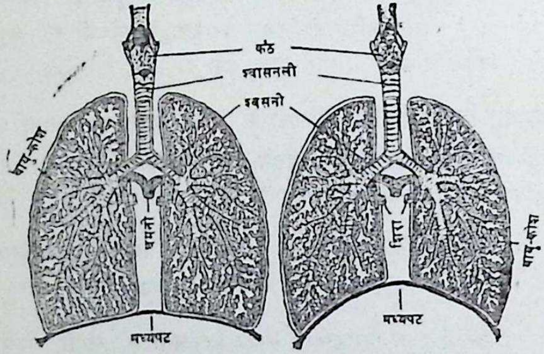

निश्वसन के पश्चात् नि:श्वसन के पश्चात्

चित्र ६८--फेफड़ों का दूसरा दृश्य

(२) नि:श्वसन--पसलियों के बीच की दूसरी प्रकार की पेशियाँ सिकुड़ने लगती हैं जिससे छाती का आकार छोटा होने लगता है। मध्यपट भी अपनी पहले जैसी स्थिति में आने लगता है । इससे भी छाती के अन्दर का स्थल छोटा होने लगता है । छाती का भीतरी स्थल छोटा होने से फेफड़े सिकुड़ने लगते हैं और उनमें से कुछ हवा निकल जाती है । इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि साँस निकलने पर भी फेफड़ों में हवा रह जाती है। हवा का कुछ ही भाग बाहर निकलता है ।

साधारण साँस और गहरी साँस—इन दोनों में यह भेद है कि गहरी साँस में अधिक हवा खींची जा सकती है, जिससे शरीर के अन्दर ऑक्सीजन की मात्रा अधिक आ सकती है। एक पूरी साँस से फुप्फुस में

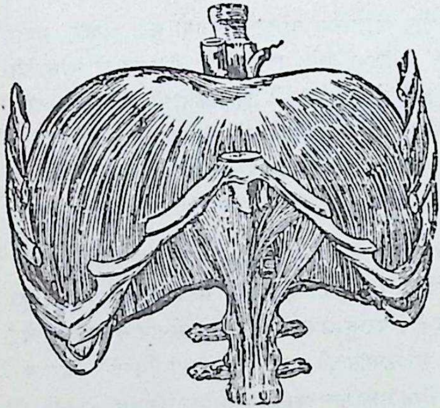

चित्र ६६--मध्यपट जिसके बीच का भाग ऊपर उठा है

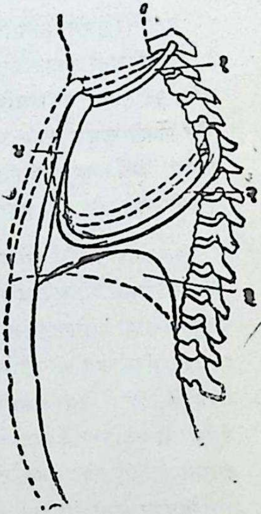

चित्र ७०--पसलियाँ उरोस्थि और मध्यपट की गति । १,२--पसलियाँ, ३--मध्यपट, ४--उरोस्थि

४५०-५०० घन सेमी हवा समाती है। एक बार सांस लेने में एक जवान आदमी लगभग ७५ घन सेमी हवा खींचता है और सांस निकालने में उतनी

ही हवा बाहर निकालता है । इसका अर्थ यह हैं कि बाहर से आने वाली हवा और बाहर जाने वाली हवा के कारण फेफड़ों के हवा का केवल छठा भाग बदलता है। एकबारगी सारी हवा नहीं निकल जाती और न एकबारगी बिल्कुल नई हवा फेफड़ों में भरती रहती है । यह अच्छा ही है, क्योंकि इससे फेफड़ों के अन्दर की गर्मी में कोई अचानक परिवर्तन नहीं हो पाता ।

यह तो हमने जान लिया कि साधारण सांस में कितनी हवा अन्दर आती है और कितनी बाहर जाती है । किन्तु यदि गहरी सांस ली जाय तो सांस लेते समय २५० घन सेमी अधिक हवा फेफड़ों में भरी जा सकती है और इसी तरह सांस फेंकते समय २५० घन सेमी अधिक हवा फेफड़ों से निकली जा सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक सांस के द्वारा तिगुने से कुछ अधिक ही ऑक्सीजन शरीर को प्राप्त हो जाता है ।

अब गहरी सांस का लाभ समझ में आ जायगा। यही नहीं कि इससे साधारण सांस की अपेक्षा फेफड़े अधिक फूलते हैं, उनमें अधिक हवा भरती है और साथ ही अधिक निकलती है । परन्तु अभ्यास हो जाने से हर समय वायु से अधिक ऑक्सीजन खींचते रहने की फुप्फुस की प्रकृति बन जाती है। जैसे व्यायाम करने से पेशियां उसी समय के लिए नहीं फूल जातो वरन् हर समय के लिए ऐसी हो जाती हैं। बताने की आवश्यकता नहीं कि गहरी सांस की आदत डालनी चाहिए और सुबह, दोपहार, शाम कुछ मिनटों तक साफ हवा में गहरी सांस अवश्य लेनी चाहिए । खिलाड़ी बिना चेष्टा के ही गहरी सांस लिया करता है । परन्तु बैठे रहने वालों की आदत बिगड़ जाती है। इसी से कई तरह की बिमारियां होती हैं ।

बैठने, खड़े होने, चलने के ढङ्ग से भी फुप्फुसों पर प्रभाव पड़ता है और उनकी पूरी सांस खींचने की शक्ति घट-बढ़ सकती है। बालक-बालिका आगे झुक कर बैठते हैं या झुककर चलते हैं उनका फुप्फुस दबा रहता है और जितनी वायु उसमें समा सकती हैं उतनी वह अपनी सांस से नहीं खींच सकता। यदि बचपन में ऐसी आदत पड़ गई तो आयु बढ़ने पर यह आदत नहीं सुधर

सकती । इसलिए बैठते समय गर्दन सीधी और वक्ष कुछ आगे को निकला रहना चाहिए । खड़ा होने और चलने में भी ऐसा ही रहे । लिखते समय कापी और नेत्र के बीच में ३५ सेमी और पढ़ते समय ४५ सेमी का अन्तर होना चाहिए। झुककर, टेढ़े बैठकर लिखना-पढ़ना या चलना बड़ी हानिकारक आदतें हैं। इससे हड्डियाँ भी टेढ़ी हो जाती हैं ।

व्यायाम और साँस—आराम से लेटा हुआ मनुष्य प्रति मिनट लगभग १२०० घन सेमी वायु अन्दर लेता है और बैठा हुआ मनुष्य २४०० घन सेमी ग्रहण करता है, चलने पर २६०० घन सेमी और दौड़ने पर ७५०० घन सेमी प्रति मिनट वायु ग्रहण करता है । इस प्रकार एक दिन में एक व्यक्ति १३० घन मीटर वायु सांस के साथ निकालता है । व्यायाम और खेल से और सबसे अधिक नाव खेने से सांस की क्रिया बढ़ जाती है ।

किसी भी परिश्रम के अवसर पर सांस की क्रिया क्यों तेज हो जाती है ? बात यह है कि बढ़ी हुई गति के कारण पेशियां अधिक ऑक्सीजन ग्रहण करती हैं और साथ ही उनमें कार्बन डाइ-ऑक्साइड उत्पन्न होती है । इस तरह रुधिर में कार्बन डाइ-ऑक्साइड की अधिक मात्रा हो जाने से मस्तिष्क में सांस सम्बन्धी केन्द्र पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है जिससे उनकी विशेष पेशियों में गति होती है और सांस की क्रिया अधिक तेज हो जाती है । इस तेजी से दो बातें होती हैं—(१) अधिक ऑक्सीजन अन्दर जाती है और रुधिर साफ होता है और (२) शिराओं के अन्दर लौटते रुधिर का परिसंचरण बढ जाता है । केवल अधिक हवा ही अन्दर नहीं आती, बल्कि सांस लेते समय अधिक रुधिर फैले हुए फेफड़ों में खिचता है और सांस फेंकते समय अधिक रुधिर फेफड़ों से निकलता है ।

साँस पर तन्त्रिकाओं का प्रभाव--हम ध्यान दें या नहीं, साँस की क्रिया बराबर जारी रहती है । मध्यपट और पसलियों के बीच की पेशियों की तन्त्रिकाओं की प्रेरणा बराबर पहुँचती रहती है । इन तन्त्रिकाओं

का सम्बन्ध मस्तिष्क के विशेष भाग से है और इस भाग का स्वाभाविक संबंध फेफड़ों में है ।

प्रश्न

१—शुद्ध वायु से क्या तात्पर्य है ? इसका प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर किस प्रकार पड़ता है ? श्वासोच्छ्वास के अवयवों का वर्णन करो और यह बतलाओ कि वे किस प्रकार रक्त को शुद्ध करते हैं ।

(ब० हि० यू० १९४२)

२—श्वासोच्छ्वास की क्रिया तथा उसकी उपयोगिता समझाओ । इस क्रिया में किन-किन अवयवों को कार्यशील होना पड़ता है ?

३—प्रश्वास द्वारा निकाली हुई वायु की निष्पत्ति बतलाओं ।

(पं० यू० १९४६)

४—हमें क्यों नाक से साँस लेनी चाहिए, मुँह से नहीं ?

(उ० प्र० १९४८)

५—श्वास-तंत्र के अवयवों का वर्णन चित्र की सहायता से करो और यह भी लिखो कि हम श्वास कैसे लेते अथवा निकालते हैं ।

(उ० प्र० १९४८)

६—वक्षस्थल में कौन से अवयव हैं ? चित्र द्वारा स्पष्ट करो ।

(पं० यू० १९५०)

७—श्वासोच्छ्वास-तंत्र से क्या समझते हो ? यह किस प्रकार रक्त की गन्दगी को बाहर निकालता है ?

(उ० प्र० १९५२)

अध्याय ७

उत्सर्जन-तंत्र

(THE EXCRETORY SYSTEM)

वृक्क और उनके काम

यह हमें मालूम हो गया है कि नित्यप्रति की गतियों में ऊतकों को बनाने वाली कोशिकाएँ टूटती-फूटती रहती हैं। साथ ही यह भी होता है कि नई-नई कोशिकाएँ बनती रहती हैं, जो पुरानी कोशिकाओं की जगह लेती रहती हैं। पुरानी कोशिकाओं के नष्ट होने और नई कोशिकाओं के बनने की क्रिया बराबर जारी रहती है।

कोशिकाओं के नष्ट होने की क्रिया से कई तरह के हानिकारक पदार्थ बनते हैं। वृक्क इन्हें धो-बहाकर लसीका शिराओं में होकर बहने वाले रुधिर में पहुँचा देता है। इन हानिकारक पदार्थों का शरीर के बाहर निकल जाना आवश्यक है, नहीं तो शरीर में विष फैल जाने के कारण मृत्यु हो सकती है। ये हानिकारक पदार्थ फुप्फुस, वृक्क और त्वचा के रास्ते निकल जाते हैं। रुधिर के अन्दर की कार्बन डाइ-ऑक्साइड गैस और पानी की भाप (जो हानिकारक पदार्थ हैं) किस तरह फेफड़ों के सहारे शरीर के बाहर निकाली जाती हैं, यह हम पढ़ चुके है। यहाँ यह बताया जायगा कि वृक्क द्वारा किस तरह कुछ और हानिकारक पदार्थ मूत्र के रूप में निकाले जाते हैं। त्वचा द्वारा जो सफाई की क्रिया होती है वह आगे बतलाई जायेगी।

वृक्क—जिस अंग में मूत्र बनता है उसे वृक्क (kidney) कहते हैं। वृक्क दो हैं—एक दाहिना, दूसरा बाँया। ये मेरुदंड (vertebral column) की दाहिनी ओर बाईं ओर सबसे अन्तिम पसलियों के सामने रहते हैं। इस तरह शरीर के अन्दर उनका स्थान काफी ऊँचाई पर है। उसका रंग गहरा भूरा होता

है और उनके चारों ओर विशेषकर उनके पीछे, चर्बी रहती है। हर एक वृक्क के ऊपरी सिरे पर एक छोटी-सी ग्रन्थि रहती है, जिसे उपवृक्क कहते हैं। उपवृक्क के सम्बन्ध में हम आगे पढ़ेंगे।

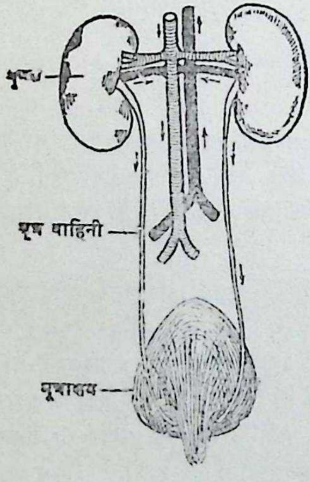

चित्र ७१—ऊपर के चित्र में दो सेम के बीज की तरह वाले अंग दोनों वृक्क हैं। सबसे नीचे का अंग मूत्राशय है। दोनों वृक्क से दो नलियाँ निकल कर सामने तक आती हैं। ये मूत्रवाहिनी हैं। बीच की बड़ी श्वेत नली धमनी और बड़ी काली नली शिरा।

वृक्क का आकार सेम या लोबिए के बीज की तरह होता है। उसकी लम्बाई १० सेमी व चौड़ाई ६ सेमी होती है। सेम के बीज की ही तरह वृक्क की दोनों तरफ की पीठ उभरी होती है और साथ ही उसका बाहरी किनारा भी उभरा होता है। उसका भीतरी किनारा, जो मेरुदंड की तरफ रहता है, बीच में दबा होता है। इसी दबे हुए भाग पर वृक्क की धमनी उसके अन्दर प्रवेश करती है और यहीं पर उसकी शिरा बाहर आती है। (चित्र ७१ देखो)। यहीं से मूत्र की नली (मूत्रवाहिनी, ureter) निकलती है और नीचे जाकर पेशाब की थैली (मूत्राशय, bladder) से जुड़ जाती है। मूत्राशय पेशियों की बनी एक थैली है। यह श्रोणिप्रदेश में रहती है। मूत्राशय में मूत्र वृक्क से मूत्रवाहिनी द्वारा आकर इकट्ठा हुआ करता है। जब मूत्राशय मूत्र से भर जाता है तो सिकुड़ता है और (मूत्र-मार्ग, urethra[1]) से बाहर निकलता है। यह पूछा जा सकता है

१. स्त्री-पुरुष के मूत्र-मार्ग अलग-अलग होते हैं।

कि मूत्र हर समय क्यों नहीं टपका करता ? कारण यह है कि जहाँ मूत्र-मार्ग शुरु होता है वहाँ मूत्राशय की दीवार का मांस सिकुड़ कर छेद को बन्द किए रहता है।

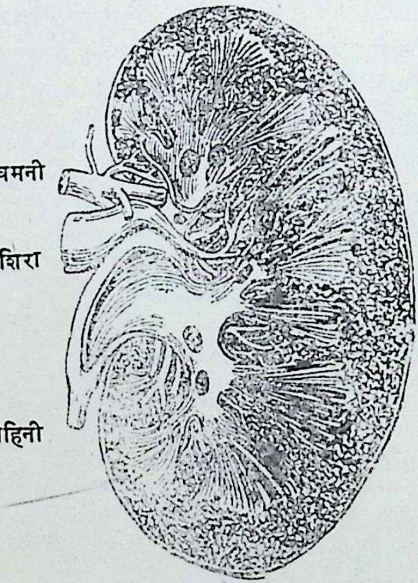

चित्र ७२--लम्बाई में काटा हुआ एक वृक्क का आधा भाग, इसमें मीनारों की ओर मूत्रवाहिनी के ऊपरी चौड़े भाग को देखो।

जब मूत्र त्याग करने की आवश्यकता होती है तो मांस ढीला पड़ जाता है और रास्ता खुल जाता है। उसी से निकल कर मूत्र, मूत्र-मार्ग में आता है और बाहर निकल जाता है।

मूत्र में बहुत अधिक भाग पानी और कुछ अंश रासायनिक पदार्थों का रहता है। ये पदार्थ उस पानी में घुले रहते हैं। फिर इसमें कुछ भाग यूरिया और यूरिक एसिड नामक दो नाइट्रोजन-मिश्रित पदार्थों का होता है। स्वस्थता की स्थिति में मूत्र में न तो शकर रहती है न प्रोटीन, पर कुछ विशेष बीमारियों की स्थिति में ये चीजें थोड़ी-बहुत मात्रा में उसमें पायी जाती हैं। मूत्र का रंग स्वस्थता की स्थिति में गेहूं की डंडी के रंग से जरा गहरा होता है, पर बीमारी में इसका पीलापन बढ़ जाता है और प्रायः कुछ ललाई भी आ जाती है।

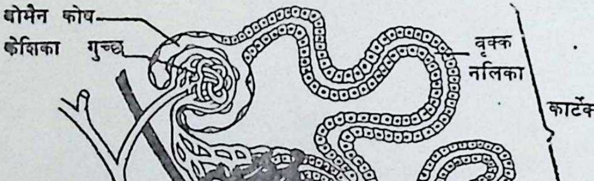

चित्र ७३—एक वृक्क नलिका

वृक्क की बनावट—यदि हम एक वृक्क को लेकर उसे चाकू से एक किनारे से सिरे तक अनुदैर्घ्य (longitudinal section) काटें तो कटा हुआ भाग

सब का सब एक तरह का नहीं दिखाई देगा । उसका भीतरी (पी के पास का) भाग ऊपर-बीच के भाग की अपेक्षा हल्के रंग का होता है। बीच का अर्थात् ऊपरी) भाग कई **मीनार** (pyramids) जैसे भागों में बँटा रहता है। इन मीनारों की चोटियाँ (चित्र ७२ देखो) मूत्रवाहिनी की तरफ रहती हैं और उनकी नलियाँ नीचे वृक्क की पीठ की तरफ। इन मीनारों की चोटियों में बहुत-से सूक्ष्म छेद होते हैं, जो वृहत् नलियों के मुँह हैं।

सच पूछा जाय तो वृक्क बहुत-सी पतली-पतली नलियों का समूह है। नलियाँ बहुत लम्बी, पर बहुत कम चौड़ी होती हैं, इन्हें **वृक्क नलिका** (uriniferous tubules) कहते हैं। इनके अतिरिक्त वृक्क में धमनी, शिराएं, केशिका लसिकावाहिनी भी होती हैं।

वृक्क नलिका के आरम्भ का भाग मोटा और गोला होता है और वृक्क पीठ की तरफ रहता है। यह फूला हुआ शिरा बीच में से दबा रहता है। इसे **बोमन संपुट या बोमैन कोष** (Bowman's capsule) कहते हैं और इस दबे भाग में रुधिर केशिकाओं का गुच्छा रहता है। इसे रुधिर गुच्छिका या केशिका गुच्छ कहते हैं।

यह ऊपर बताया गया है कि नलिका बहुत लम्बी होती हैं। हर नलिका फूले हुए भाग से आरम्भ होकर कई मोड़-तोड़ खाने के बाद एक दूसरी नलिका से जा मिलती है, जो इसी तरह मोड़ खाती हुई वृक्क के किसी और भाग से आई है। इस तरह कई नलिकाओं के मिलने से एक बड़ी वाहिनी बन जाती है। फिर बड़ी वाहिनी दूसरी वाहिनियों से जा मिलती है। वृक्क की मीनारें उन्हीं वाहिनियों के समूह हैं। पतली मीनारों के आरम्भ के फूले हुए शिरे और मुड़े हुए भाग मीनारों के बाहर वृक्क की पीठ के ओर वाले भाग में रहते हैं। मीनारों की चोटियों में जो छेद होते हैं वे बड़ी-बड़ी वाहिनियों के मुंह हैं। मूत्र इन्हीं छेदों से निकलकर मूत्रवाहिनी में आता है।

मूत्र-तंत्र--वृक्क दो हैं और मूत्रवाहिनी भी दो हैं। हर मूत्रवाहिनी की लम्बाई २५ से ३० सेमी होती है। उसका ऊपरी शिरा चौड़ा (टोपी के

भीतरी भाग की तरह खुला हुआ) रहता है और वृक्क से जुड़ा रहता है। नीचे का शिरा पतला रहता है। वह श्रोणि प्रदेश में मूत्राशय (urinary bladder) से जुड़ा रहता है। ऊपर के चौड़े भाग की कई शाखाएँ होती हैं। हर छोटी शाखा के मुंह में वृक्क की एक मीनार की चोटी रहती है। मीनारों से मूत्र इन नलिकाओं के चौड़े भाग में पहुँचता और उसमें से होकर मूत्रवाहिनी में जाता हैं।

वृक्क में रुधिर की सफाई—बड़ी धमनी के शाखाओं से रुधिर दोनों वृक्क में पहुँचता है। भीतर पहुँच कर इस धमनी की अनेक शाखाएँ हो जाती हैं। एक-एक शाखा हर एक नलिका के फैले हुए भाग में जाती है। इसी से होकर रुधिर केशिकाओं के झुंड में पहुँचता है। केशिका की दीवारों से रुधिर का कुछ पानी जैसा अंश चू जाता है और वह नली की दीवार में से होकर उसके भीतर पहुँच जाता है। नली का फूला हुआ शिरा छन्ने का काम करता है। उन्हीं छन्नों से रुधिर का कुछ पतला भाग छन जाता है।

केशिका के झुण्ड से रुधिर एक नली के रास्ते बाहर निकलता है। इस नलिका द्वारा रुधिर अब उन केशिकाओं में पहुँचता है, जो जाल के रूप में नलिका के बचे हुए भाग के चारों ओर फैली हुई हैं। ये केशिकाएँ नलिका कोशिका (cells) से मिलती रहती हैं। नलिका के कोशिका (cells) का यह स्वाभाविक गुण है कि वे उस लसीका में से, जो उनके पास चू जाता है, यूरिया और यूरिक एसिड इत्यादि पदार्थ ले लें और उसको फिर नलिका के भीतर पहुँचा दें। नलिका के भीतर पहुँचकर ये पदार्थ उस पानी में (जो पीछे के फूले भाग से आता है) घुल जाते हैं। यह पानी, जिसमें बेकार और हानिकारक पदार्थ मिले रहते हैं, पतली-पतली नलिकाओं में बहता हुआ बड़ी-बड़ी नलिकाओं में पहुँचता है, जो मीनारों में रहती हैं। फिर मीनारों की चोटियों के छेद में से निकल कर यह पानी मूत्रवाहिनी के ऊपरी चौड़े भाग में पहुँचता है। यह पानी जैसा पदार्थ मूत्र (urine) है। वृक्क में धमनियों से जो रुधिर आता है उसमें यूरिया, यूरिक एसिड आदि बेकार पदार्थ अधिक रहते हैं, पर वृक्क से

शिराओं के रास्ते जो रुधिर लौटकर बाहर जाता है, उसमें ये पदार्थ कम होते हैं। इसका अर्थ है कि वृक्क में रुधिर की सफाई होती है और उसके अन्दर का बहुत-सा हानिकारक पदार्थ मूत्र के रूप में बाहर निकल जाता है।

इस तरह हमने देख लिया कि वृक्क के कारण शरीर का एक बड़ा काम सधता है। ऐसा न सोचना चाहिए कि यूरिया और यूरिक एसिड जैसे हानिकर पदार्थ वृक्क में बनते हैं। ये पदार्थ हृदय और मांसपेशियों में तैयार होते हैं—वृक्क तो केवल इनको छानकर अलग कर देते हैं।

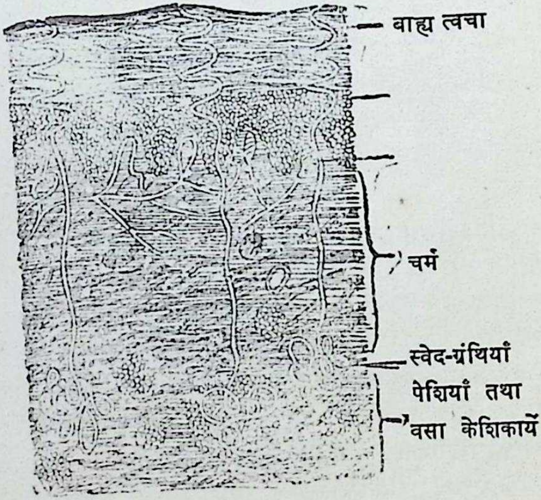

चित्र ७४—त्वचा में दो परत होती हैं—
(१) बाह्य त्वचा (अधिचर्म, Epidermis) और
(२) चर्म (Dermis)।

त्वचा और उसका काम

त्वचा सारे शरीर को ढके रहती है और भीतर की मांसपेशियों की रक्षा करती है। त्वचा बेकार वस्तुओं को शरीर से दूर करती है, शरीर के ताप (temperature) को ठीक दशा में रखती है और छूने या छूये जाने का अनुभव करती है।

(१) बाह्य त्वचा (अधिचर्म, Epidermis) के तह की मोटाई शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में एक-सी नहीं है। इसकी मोटाई तलवे पर १/८ सेमी है और चेहरे पर १/८० सेमी। बाह्य त्वचा (अधिचर्म, Epidermis) कड़ी होती है और उसका सबसे ऊपर का स्तर ऐसा होता है कि उसमें कोशिकाओं का कोई रूप नहीं मालूम पड़ता और कोई मींगी नहीं होती कि बराबर कोशिकाओं का पता चल सके। उसमें केवल कुछ रेखाएँ जैसी वस्तु दिखलाई पड़ती हैं। ये भीतरी कोशिकाओं की रक्षा करती हैं और बराबर घिसती रहती हैं। घिस जाने पर भीतर से दूसरी कोशिकाएँ आ जाती हैं। ऊपरी त्वचा के नीचे की तहों में उस रंग के कण होते हैं, जिसमें हमारा शरीर गोरा या सांवला दिखाई पड़ता है।

रंग देने वाले वर्णक (pigment) की संख्या यूरोप-निवासियों के शरीर में बहुत कम होती है, इसलिए उनका शरीर गोरा दिखाई देता है। हब्शियों में रंग देने वाले वर्णक की संख्या बहुत अधिक होती है, इसलिए उनका शरीर काला दीखता है। रंग देने वाले कण प्राकृतिक हैं। प्रकृति, जलवायु के अनुसार इन वर्णकों का परिमाण घटाती-बढ़ाती रहती है। ये वर्णक गर्म देशों में रहने वाले लोगों के शरीर में अधिक मात्रा में होते हैं, क्योंकि प्रकृति शरीर की गर्मी से रक्षा करना चाहती है। काला शरीर अधिक गर्मी सहन कर सकता है, गोरे शरीर पर गर्मी का अधिक असर पड़ता है यही कारण है कि भारत में अँगरेजों को भारतीयों की अपेक्षा अधिक गर्मी लगती है।

बाह्य त्वचा में रुधिरवाहिकाएँ नहीं होतीं। इसके भीतर जो कोषाणु होते हैं, वे अपना पोषण लसीका से पाते हैं, जो त्वचा से धीरे-धीरे निकला

करता है । चर्म (dermis) में वहुत ही कम, एक प्रकार से नहीं के वरावर, तन्त्रिका सूत्र हैं । यही कारण है कि कभी-कभी वाह्य त्वचा के कट जाने पर भी हमें पीड़ा नहीं मालूम होती ।

जव हम वाह्य त्वचा की सतह को आवर्धक लेन्स (magnifying lens) से देखते हैं तो उस पर वहुत ही छोटे-छोटे छिद्र या रंध्र (pores) दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं छिद्रों या रंध्रों से शरीर के अन्दर का कुछ विकार पसीने के रूप में वाहर निकलता है ।

शरीर के अन्दर दो गड्ढे हैं (जैसे मुंह इत्यादि) ; उन पर एक पतली गुलावी श्लेष्मल-झिल्ली (mucous membrane) चढ़ी रहती है । इस झिल्ली का सम्वन्ध होठों और पलकों इत्यादि के किनारे के मांस-पेशियों से है। यह झिल्ली अधिचर्म या वाह्यत्वचा की तरह प्रभावित नहीं रहती । यदि इस पर किसी प्रकार की दवा या रासायनिक पदार्थ पड़ जाता है तो यह तुरन्त ही प्रभावित हो उठती है । यही कारण है कि जो दवा अधिचर्म या वाह्यत्वचा पर मले जाने पर भी कोई असर पैदा नहीं करती, वह आंत्र में पड़ जाने या जिह्वा पर रखने पर शीघ्र ही घुल जाती है या कुछ और प्रभाव डालती है ।

(२) चर्म (Dermis) अधिचर्म के नीचे रहती है और योजी ऊतक (connective tissues) से वनी होती है। त्वचा की वनावट आवश्यकतानुसार वदल जाती है । नीचे के भाग की कोशिका साधारण आकार की होती हैं, परन्तु जैसे-जैसे ये चर्म के स्थान को लेने के लिए ऊपर तक आती-जाती हैं, इनके आकार में परिवर्तन होता है । ये चौखुटे, छःखुटे तथा चपटे होकर चर्म के स्थान तक पहुँचते हैं । नीचे ये कुछ ढीले रहते हैं और उनमें थोड़ी वसा भी रहती है, परन्तु ऊपरी भाग में जीवन-रहित होकर चपटे और कड़े हो जाते हैं । इसका कारण यह है कि ऊपर आने में त्वचा-कोशिकाओं को अधिक संघर्ष सहना पड़ता है जिससे उनका रूप वदल जाता है ।

त्वचा के नीचे दूसरे ऊतक होते हैं। इनमें वसा की मात्रा अधिक रहती है। ये शरीर के भीतरी भागों के गड्ढों को भरते हैं जिससे शरीर भरा-पूरा

मालूम होता है। त्वचा के नीचे जो ऊतक होते हैं वे ढीले होते हैं। इसी से हम चिकोटी काट सकते हैं। इनमें जो वसा रहती है वह शक्ति का संचय करती है और शरीर की गर्मी को अन्दर बनाए रखती है। वसा एक ऐसा पदार्थ है कि उसमें से गर्मी बाहर नहीं निकल सकती है। त्वचा में तन्त्रिका-जाल, रुधिरवाहिनी और लसिकावाहिनी का अच्छा प्रबन्ध रहता है। इसके ऊपरी स्तर पर उँगलियों की तरह के उभार होते हैं। (चित्र ७४ में वाह्य त्वचा के नीचे देखो), जो एक कतार से निकले रहते हैं। इन्हें पैपिला (pepilae) कहते हैं। प्रत्येक पैपिला में रुधिर की केशिकाओं का एक गुच्छा होता है और एक अंडाकार स्नायु-समूह भी रहता है। इस स्नायु-समूह का सम्बन्ध स्पर्श से है। शरीर के ऐसे भागों में जो स्पर्श से बहुत जल्द प्रभावित हो उठते हैं; (जैसे हथेली, तलुवे) इनमें ये पैपिल बहुत होते हैं। इन भागों में वाह्यत्वचा बहुत पतली होती है।

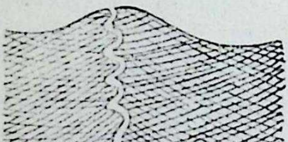

चित्र ७५---स्वेद निकालने वाली ग्रंथियाँ और उसकी नली

स्वेद की ग्रंथियाँ--त्वचा में दो तरह की ग्रंथियाँ होती हैं।

(१) तेव ग्रंथि (sebaceous glands)—ये बालों की जड़ों में होती हैं।

(२) स्वेद ग्रंथि (sweat glands)--इनसे पसीना निकलता है। यह पहले बताया जा चुका है कि चर्म में जो छोटे-छोटे सूराख हैं वे स्वेद नलिका से मिले हुए हैं। स्वेद ग्रंथि वास्तव में एक नलिका है, जिसके नीचे का भाग साँप की तरह गेंडुरी मारे रहता है। यह त्वचा के निचले भाग में रहता है और रुधिर की केशिकाओं से घिरा होता है। जब रुधिर इन

केशिकाओं में होकर बहता है तो इन ग्रंथियों की केशिकाएँ छनकर आये हुए लसीका में से कुछ पानी, यूरिया और कई तरह के नमक ले लेते हैं। यही पानी जैसा पदार्थ पसीना है, जो ग्रंथियों वाली लम्बी नली से होकर बाह्यत्वचा पर पहुँचा जाता है। स्वेद त्वचा पर आते ही उड़ जाता है पर यदि यह अधिक मात्रा में रहता और बूंद-बूंद होकर त्वचा पर इकट्ठा होता है तब नहीं उड़ पाता। जो स्वेद बिना हमारे जाने ही त्वचा पर से उड़ जाय उसे अदृश्य स्वेद (invisible perspiration) कहते हैं, क्योंकि हमें उसका ज्ञान नहीं रहता किन्तु जो स्वेद बूंद के रूप में त्वचा पर दिखाई पड़ता है और उड़ नहीं पाता उसे दृश्य स्वेद (visible perspiration) कहते हैं। स्वेद का अधिक और कम निकलना मौसम और व्यायाम का काम करने पर निर्भर है।

स्वेद के कई गुणों में से एक गुण यह है कि वह शरीर को एक ही तरफ के ताप की दशा में रखता है। जब गर्मी के दिनों में या कठिन परिश्रम के बाद शरीर के अन्दर गर्मी उत्पन्न हो जाती है तो स्वेद निकलने लगता है। इस स्वेद के कारण शरीर को ठंडक मिलती है। इस तरह स्वेद गर्मी में शरीर को ठंडक पहुँचाता है। गर्मी में और परिश्रम के काम करने पर त्वचा के आस-पास की रुधिर की कोशिकाएँ फैलती हैं और रुधिर तेजी से बहने लगता है। इसी से स्वेद-ग्रंथियों को काफी सामान मिलता है और वे अधिक मात्रा में स्वेद निकालने लगती हैं।

त्वचा से लाभ (१) रक्षा—त्वचा बाहरी रोग के जीवाणुओं से तथा अन्य विषैले पदार्थों से शरीर की रक्षा करती है।

(२) त्वचा शरीर का तापमान नियन्त्रित करती है। शीत-प्रधान देशों में जहाँ पानी भी जाता है, शरीर के अन्दर का तापमान ९८·४ से घटता नहीं, क्योंकि शरीर के अन्दर जो ऊष्मा होती है वह इसके कारण बाहर की ठंडक के सम्पर्क में आकर नष्ट नहीं होने पाती। शरीर की आवश्यकतानुसार त्वचा उसे अन्दर रोक लेती है। गर्मी में स्वेद-ग्रन्थियों के कारण शरीर अधिक गरम नहीं होने पाता है।

(३) संवेदना--जैसा बताया जा चुका है त्वचा के अन्दर ऐसे नाड़ी-ऊतक हैं कि स्पर्श से ये मस्तिष्क को तुरन्त सूचना पहुँचा देते हैं ।

(४) विष-त्याग--चर्म (Dermis) से स्वेद-ग्रंथि द्वारा शरीर का विष निकलता रहता है । जैसे फुप्फुस में विष जला करता है अथवा वृक्क से मूत्र द्वारा निकला करता है, उसी प्रकार चर्म (Dermis) से स्वेद द्वारा विष निकला करता है ।

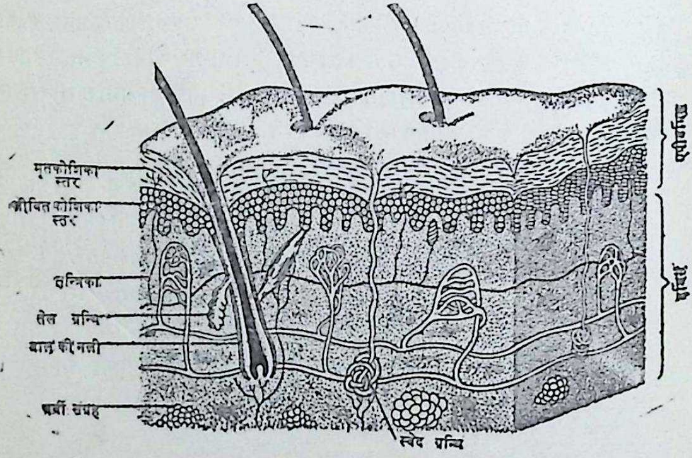

चित्र ७६--त्वचा का एक अंश--बाल के अंकुर, तेल-ग्रंथि और बालों से सम्बन्ध रखने वाली पेशियों को देखो ।

नाखून और बाल--ये बाह्यत्वचा के बढ़े हुए भाग हैं । इनमें बाह्य-त्वचा वाले कोशिकाओं की आकृति बदल जाती है, जिससे वे कड़े हो जाते हैं । नाखून की जड़ में चर्म होता है उसके पास रुधिर की नलियाँ होती हैं और बाह्यत्वचा की कोशिकाएँ जो इन्हें ढँके रहती हैं, बहुत शीघ्र बढ़ती रहती हैं । इस तरह बढ़कर जो कोशिकाएँ बनती हैं वे कड़ी हो जाती हैं और बाहर निकलती हैं । इसी तरह नाखून बढ़ता रहता है ।

बाल भी वाह्यत्वचा के उभार हैं। हर एक बाल के नीचे एक लम्बा और बहुत पतला सूराख होता है और उसके जड़ के निकट एक ग्रन्थि होती है। इसी ग्रन्थि को तेल-ग्रन्थि कहते हैं। इसमें से तेल की तरह एक पदार्थ निकलता रहता है, जो बाल के जड़ को सींचता और मुलायम रखता है।

हर एक बाल की जड़ में एक अनैच्छिक मांस-पेशी लगी रहती है। इसी मांस-पेशी के सिकुड़ने से हमारे रोंगटे खड़े होते हैं।

सफाई—त्वचा की स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि तेल-ग्रंथियों से जो तेल त्वचा पर आ जाता है उसके कारण स्वेद सूखते रहने से मैल एकत्र हो जाती है जिससे त्वचा-रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मल के कारण त्वचा विष-त्याग और श्वास-कर्म के लिए भी असमर्थ हो जाती है। इसलिए शरीर को मलकर प्रतिदिन स्नान करना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। सप्ताह में एक बार गरम पानी के स्नान से मैल शीघ्र दूर हो जाती है। ठंडे जल के स्नान से स्फूर्ति आती है, परन्तु, बच्चे और बूढ़े गरम जल से स्नान कर सकते हैं। गरम पानी के स्नान से थकान दूर हो जाती है, क्योंकि इससे रुधिर का प्रभाव बढ़ जाता है। गरम जल से स्नान के अंत में ठंडे जल से स्नान करने से स्फूर्ति आ जाती है। स्नान के पहले तेल की मालिश से लाभ होता है, परन्तु मालिश का अर्थ केवल तेल चुपड़ लेना न समझा जाय। स्नान के बाद शरीर इतना पोंछ डालना चाहिए कि त्वचा कुछ लाल हो जाय।

साबुन लगाकर स्नान का रिवाज बढ़ रहा है। परन्तु अब विशेषज्ञों का मत हो रहा है कि साबुन त्वचा पर से तेल को पूर्णतया नष्ट कर देता है जो हानिकारक है। यदि कभी-कभी लगाया जाय तो अच्छा है। साबुन शरीर पर अच्छे प्रकार का लगाना चाहिए, अन्यथा उससे लाभ को अपेक्षा हानि अधिक होती है। खराब साबुन शरीर के तेल को नष्ट कर देता है और त्वचा को सूखा खुरदुरा बना देता है।

शारीरिक ताप का नियन्त्रण—जिन मुख्य ऊतकों में गर्मी उत्पन्न होती है उनमें **रासायनिक** (chemical) परिवर्तन होते रहते हैं। जैसे;

मांस-पेशियों, स्वेद-ग्रन्थियों और तान्त्रिका केन्द्रों में रासायनिक परिवर्तन उस समय होते हैं, जब कि कार्बन डाइ-ऑक्साइड बनती है और गर्मी भी निकलती है इसलिए मांस-पेशियां, ग्रन्थियां और मस्तिष्क जितना ही काम करेंगे, उतनी ही अधिक गर्मी उत्पन्न होगी। गर्मी का अधिक या कम उत्पन्न होना भोजन के पदार्थों पर निर्भर है। तेल और घी खाने से जो गर्मी उत्पन्न होती है वह प्रोटीन की गर्मी से दुगुनी अधिक होती है। कार्बोज की गर्मी प्रोटीन के बराबर ही है। इसी से जाड़े और कठिन परिश्रम करने के दिनों में घी, तेल और मेवा-मिष्ठान्न अधिक खाये जाते हैं, जिससे शरीर में अधिक गर्मी उत्पन्न हो।

जिस प्रकार शरीर में एक ओर गर्मी उत्पन्न होती रहती है उसी प्रकार दूसरी ओर गर्मी निकलती भी रहती है। इस प्रकार शरीर का तापमान सदा ९८·४° फारेनहाइट बना रहता है। शरीर की गर्मी आस-पास की हवा के ठंडी होने के कारण निकलती है। शरीर हवा से अधिक गर्म होता है, इसलिए जब हवा शरीर को छूती है, तब वह गर्मी खींच लेती है। पसीने के भाप बनने के कारण शरीर से गर्मी निकलती है।

शरीर के तापमान का सम रहना गर्मी उत्पन्न होने और निकलने पर निर्भर है। गर्मी को उत्पन्न करना और निकालना कुछ सीमा तक मनुष्य के हाथ में है। कुछ लोग व्यायाम कर और ऊनी कपड़े पहिन कर शरीर को गर्म रखते हैं किन्तु शरीर के ताप का प्रबन्ध अधिकतर तन्त्रिका-तन्त्र (nervous-system) पर निर्भर है। शरीर में रुधिर का घटना-बढना तन्त्रिकाओं और रुधिरवाहिनी पर निर्भर है। इन्हीं के द्वारा स्वेद-ग्रंथियां भी संचालित होती हैं। यही कारण है कि ठंडे देशों में त्वचा पीली पड़ जाती है, जिससे ठंडक बढ़ने पर शरीर से अधिक गर्मी न निकले। कपड़ा पहिन कर भी हम शरीर की गर्मी को निकलने से रोकते हैं। जाड़े में काफी कपड़ा पहिनने को नहीं होता तो शरीर में कँपकँपी पैदा हो जाती है, क्योंकि मांस-पेशियां सिकुड़-सिकुड़ कर गर्मी उत्पन्न करने लगती हैं।

शरीर का तापमान मालूम करने के लिए एक प्रकार का यन्त्र होता है, जिसे थर्मामीटर कहते हैं। उसमें ६०° से ११०° तक निशान बने होते हैं। आदमी के शरीर का **मानक ताप** (Normal Temperature) ९८·४° फारेनहाइट रहता है। तापमान कम से कम ९५° तक जा सकता है और अधिक से अधिक १०८° तक। इससे कम होने या अधिक होने पर मृत्यु हो जाती है।

तापमान के लेने का साधारण नियम यह है कि थर्मामीटर को मुंह में जिह्वा के नीचे लगाकर होठ बन्द कर लिया और इस दशा में कम से कम १ मिनट रहने दिया। बहुधा थर्मामीटर ½ मिनट के होते हैं। परन्तु १ मिनट रखने में किसी प्रकार की भूल का डर नहीं रह जाता। मुंह में थर्मामीटर लगाने के पूर्व मरीज को ठण्डी या गर्म चीजें खिलाना या पिलाना ठीक नहीं है अन्यथा उसके सही तापमान का पता नहीं चल सकेगा। जब मरीज की ऐसी दशा हो कि मुंह में थर्मामीटर नहीं लगाया जा सके तो बगल में लगाते हैं। परन्तु बगल को खूब पोंछकर पहले सुखा लेना चाहिए। बगल में कम से कम ३ मिनट तक थर्मामीटर अवश्य लगा रहने देना चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि थर्मामीटर बगल में त्वचा से छूता रहे। बहुत छोटे बच्चों में मलाशय पर थर्मामीटर लगाते हैं। कभी-कभी बड़े मरीजों में भी यह आवश्यकता पड़ सकती है।

शरीर का तापमान शरीर के प्रत्येक अङ्ग में एक-सा होता है। रुधिर का दौरा इस ताप को ठीक रखता है। शरीर का ताप व्यायाम करने से बढ़ सकता है। ठंडक या गर्मी का मालूम होना शरीर के ताप पर निर्भर नहीं है, क्योंकि प्रायः लोगों को जब कि ज्वर चढ़ा होता है, जाड़ा मालूम पड़ता है और लोग ठंड से कांपने लगते हैं। इसका कारण त्वचा में रुधिर की नलियां हैं। जब ये नलियां भरी रहती हैं और रुधिर का दौरा तेज हो जाता है, उस समय गर्मी मालूम पड़ती है और जब ये खाली हो जाती हैं और सिकुड़ जाती हैं उस समय ठंडक लगती है।

प्रश्न

१—मलोत्सर्ग सम्बन्धी अंग क्या-क्या हैं ? संक्षेप में उनके कार्य और शरीर के लिए उनकी उपयोगिताओं का वर्णन करो ।
(उ० प्र० १९४२, १९५०)

२—वृक्क की बनावट तथा उसके कार्यों का वर्णन करो ।
(रा० १९४२, १९४५)

३—वृक्क की रचना चित्र द्वारा समझाओ । वृक्क के कार्यशील न होने से कौन-कौन से रोग उत्पन्न होते हैं ?
(उ० प्र० १९४६)

४—त्वचा की बनावट चित्र द्वारा समझाओ तथा उसके कार्यों का वर्णन करो । (रा० १९४४, उ० प्र० १९५०)

५—त्वचा को स्वच्छ न रखने से शरीर को क्या हानियाँ पहुँचती हैं ?
(उ० प्र० १९४३)

६—त्वचा में कौन-कौन से भाग होते हैं ? शरीर के लिए त्वचा के महत्त्व को समझाओ । (उ० प्र० १९४४)

७—त्वचा शरीर के ताप का नियंत्रण किस प्रकार करती है, चित्र द्वारा त्वचा की रचना स्पष्ट करो और उसमें पायी जाने वाली भिन्न-भिन्न ग्रन्थियों का वर्णन करो ।

८—निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए ।
(क) स्वेद ग्रंथियाँ (Sweat glands) (उ० प्र० १९६९)

९—विसर्जन संस्थान किसे कहते हैं ? यह कौन-कौन से होते हैं ? किसी एक का सचित्र वर्णन कीजिये । (उ० प्र० १९७०)

———

अध्याय ८

तन्त्रिका-तन्त्र

(THE NERVOUS SYSTEM)

सामान्य परिचय

शरीर के अन्दर तन्त्रिका-तन्त्र (nervous system) कितना आवश्यक है यह पहले बताया गया है। वास्तव में यही तन्त्र अन्य तन्त्रों का नियमित संचालन करता है। यह तो तुम जानते हो कि शरीर के हर एक अंग का एक मुख्य काम है, जिसे वही अंग अच्छी तरह कर सकता है दूसरा नहीं, जैसे; आमाशय का काम है भोजन पचाना, हृदय का काम है रुधिर को पम्प करना, फुप्फुस का काम है ऑक्सीजन ग्रहण करना इत्यादि। इन सब कामों को उचित रीति से करने के लिए शरीर में तन्त्रिका-तन्त्र है। इस तन्त्र के संचालन से शरीर में तरह-तरह की गतियाँ होती हैं। ग्रंथियों से आवश्यक रस निकलते हैं; सोचने-समझने, सुख-दुख का अनुभव करने और किसी काम के लिए संकल्प करने की क्रियाएँ होती हैं। जिस तरह एक शक्तिशाली शासक अपने किले में बैठा हुआ अपने राज्य के सभी भागों पर शासन और उसका संचालन करता है—वहाँ से सभी तरह की खबरें बराबर पाता रहता है और हर आवश्यक काम के लिए अपने आदेश भेजता है—उसी तरह तन्त्रिका-तन्त्र का मुख्य केन्द्र मस्तिष्क तन्त्रिकाओं द्वारा शरीर के सभी भागों की सभी छोटी-बड़ी बातों को जानता है और उनका उचित नियंत्रण और संचालन करता है।

तन्त्रिका-तन्त्र के तीन भाग—तन्त्रिका-तन्त्र तीन भिन्न-भिन्न एक दूसरे से सम्बन्ध रखने वाले तन्त्रों से बना है। पहला तो बीच का तन्त्रिका-तन्त्र है। इसे केन्द्रीय तन्त्रिका-तंत्र (central nervous system) कहते

हैं और इसको प्रमस्तिष्क मेरुतंत्र (cerebrospinal system) भी कहते हैं। दूसरा अनुकंपी तन्त्रिका-तंत्र (sympathetic nervous system) इसको परिधीय तंत्रिका-तंत्र (peripheral nervous system) भी कहते हैं और तीसरा स्वाधीन तन्त्रिका-तंत्र (autonomous nervous system) कहते हैं।

(१) केन्द्रीय तन्त्रिका-तंत्र के भाग हैं—मस्तिष्क (brain), रीढ़-रज्जु (spinal cord) और तन्त्रिकाएँ जो मस्तिष्क और रीढ़-रज्जु से निकलकर शरीर के विविध अंगों में जाती हैं। ये तन्त्रिकाएँ विशेषकर त्वचा, अनुभवशील (दुःख-सुख समझने वाले) अंगों और ऐच्छिक (voluntary) पेशियों में फैली हुई हैं।

(२) अनुकंपी तन्त्रिका-तंत्र—यह मस्तिष्क तथा रीढ़-रज्जु से निकली तन्त्रिकाओं से बनता है। ये तन्त्रिकायें दो प्रकार की होती हैं—(क) कपाल या क्रेनियल तंत्रिकायें (cranial nerves)। ये मस्तिष्क से निकलती हैं। ये मस्तिष्क से निकल कर मेरुदंड के दोनों ओर चलकर श्रोणि (pelvis) तक जाती हैं। (ख) रीढ या स्पाइनल तन्त्रिकायें (spinal nerves) ये रीढ़-रज्जु से निकलती हैं। क्रेनियल तन्त्रिकाओं की तरह रीढ़ या स्पाइनल तन्त्रिकायें भी पृष्ठीय तथा अधर मूलों से निकलती हैं। मेरुदंड के बाहर निकलने से पहले ही पृष्ठीय तथा अधर तन्त्रिकायें आपस में जुड़ जाती हैं। इसीलिये सभी रीढ़ तन्त्रिकाय मिश्रित होती हैं। पृष्ठमूल की तन्त्रिकाओं में एक फूला हुआ भाग होता है जिसको पृष्ठ मूल गुच्छिका (dorsal root ganglion) कहते हैं। ये गुच्छिकायें, तन्त्रिका कोशिकाओं (neurons) में बनी होती हैं।

(३) स्वाधीन तन्त्रिका-तंत्र—ऐसा हो सकता है कि जो खबरें या आदेश या प्रेरणाएँ स्वाधीन-तन्त्र की तन्त्रिकाओं द्वारा हृदय, आमाशय या आंत्रों की अनैच्छिक (involuntary) पेशियों तक या ग्रंथियों तक पहुँचती हैं वे केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र से निकली हों, पर चूंकि उन्हें ऐसी पेशियों या अंगों पर पहुँचना होता है जो मनुष्य की इच्छा के वश में नहीं हैं वे स्वाधीन तन्त्रिका

तन्त्र की तन्त्रिकाओं से होकर उन पेशियों या अंगों तक पहुँचती हैं। इस तन्त्रिका-तन्त्र के सम्बन्ध में एक आवश्यक बात है कि यह उन क्रियाओं को नियंत्रित और संचालित करता है जिनकी क्रियाओं पर मस्तिष्क का कोई अधिकार नहीं होता है। जैसे—आहार नली का कार्य, हृदय का स्पंदन, वृक्क तथा अनेक ग्रंथियों का कार्य।

तन्त्रिका-कोशिकाएँ (Neurons)—तन्त्रिका-तन्त्र तन्त्रिका कोशिकाओं तथा तन्त्रिका-तंतु (nervous tissues) से बने हैं। शरीर के कोशिकाओं की यह विशेषता पहले बतलाई गई है कि जिस काम को उन्हें करना होता है उसी के अनुसार उनकी बनावट में भी परिवर्तन हो जाता है और प्रत्येक भाग का जो काम है उसका प्रत्येक कोशिका वही काम करता है। तन्त्रिका-कोशिका की बनावट में यही बात देखने में आयेगी।

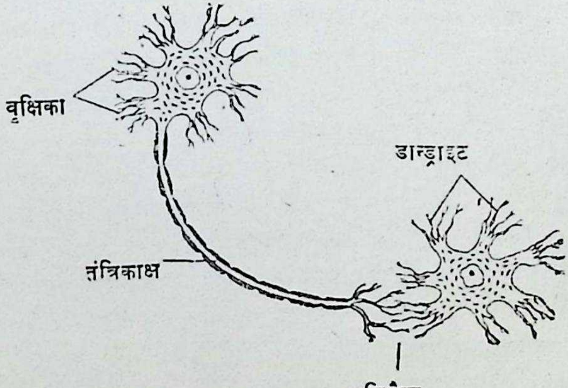

चित्र ७७—चालक स्नायु का एक कोषाणु

इनकी बनावट मुख्यतः साधारण कोशिकाओं के ही समान है अर्थात् इनमें भी केन्द्र और उसे घेरता हुआ जीव-द्रव्य है परन्तु विशेषता यह है कि इनके

चारों ओर सूत्र (fibre) निकलते हैं। जिनके केवल दोनों ओर सूत्र निकलते हैं उनको द्विध्रुवीय (bipolar) कहते हैं, परन्तु जिनमें अधिक कोने होते हैं, जिनसे सूत्र निकलते हैं, उनको **बहुध्रुवी** अथवा **बहुकोणीय** (multipolar or multiangular) कहते हैं। मस्तिष्क में ही कई आकार की कोशिकाएँ पाई जाती हैं।

प्रमस्तिष्क (cerebrum) के **धूसर द्रव्य** (grey matter) की कोशिकाएँ त्रिकोणीय होती हैं और इनके प्रत्येक कोण से सूत्र निकलते हैं। यह सूत्र शाखाओं-प्रशाखाओं में विभाजित होकर जाल जैसा वना लेते हैं। इन शाखाओं-प्रशाखाओं को **वृक्षिका** (dendron) कहते हैं। वृक्षिका द्वारा ही उत्तेजनाएँ कोशिकाओं की ओर जाती हैं।

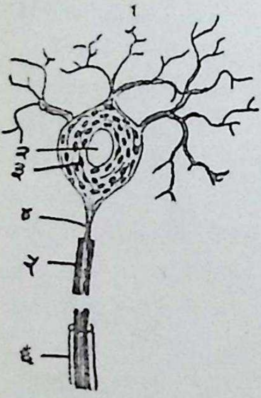

चित्र ७८--तन्त्रिका कोशिका
१--वृक्षिका, २--केन्द्रक,
३--कोशिका द्रव्य, ४-तंत्रिकाक्ष
५--मज्जा-आच्छद
६--बाह्यावरण

परन्तु इन कोशिकाओं के एक ओर एक ऐसी शाखा होती है जिसमें प्रशाखाएँ नहीं निकलतीं और इसी के द्वारा कोशिकाओं में उत्पन्न हुई उत्तेजनाएँ वाहर की ओर जाती हैं। ये **तंत्रिकाक्ष** (axon) कहलाते हैं। तन्त्रिकाक्ष एक लम्बी शाखा होती है और म्यान की तरह की एक खोल से ढंकी रहती है। इस खोल को **मज्जा-आच्छद** (medullary sheath) कहते हैं। जब वृक्षिका पर मज्जा-आच्छद और वाह्यावरण चढ़ जाते हैं और वह सम्पूर्ण सूत्र वन जाता है तव इसको तन्त्रिका-सूत्र कहते हैं। वृक्षिका, तन्त्रिकाक्ष और कोशिका का मुख्य भाग ये तीनों मिलकर ऐसे सम्बन्ध रखते हैं कि अगर इनमें से कोई विभक्त हो जाय तो उसका कार्य वन्द हो जाता है। इस इकाई को **तन्त्रिका-कोशिका** (neuron) कहते हैं।

सूक्ष्मदर्शी से देखने से मालूम होगा कि केन्द्रीय और स्वाधीन तन्त्रिका-तन्त्रों की रचना दो प्रकार के पदार्थों से हुई हैं। एक प्रकार का पदार्थ **घूसर द्रव्य** (grey matter) भूरे रंग का होता है और दूसरे प्रकार का पदार्थ **स्वेत-द्रव्य** (white matter) स्वेत रंग का होता है। भूरा द्रव्य तन्त्रिका-कोशिकाओं का बना होता है और श्वेत द्रव्य इन कोशिकाओं से निकलने वाले सूत्रों का बना होता है और जैसा तुम पढ़ोगे घूसर द्रव्य मस्तिष्क और रीढ़-रज्जु में पाया जाता है। अर्थात् वहाँ का **तन्त्रिका ऊतक** (nervous tissues) कोशिकाओं का बना होता है और उन्हीं से निकले हुए सूत्रों से शेष श्वेत द्रव्य के ऊतक बने होते हैं।

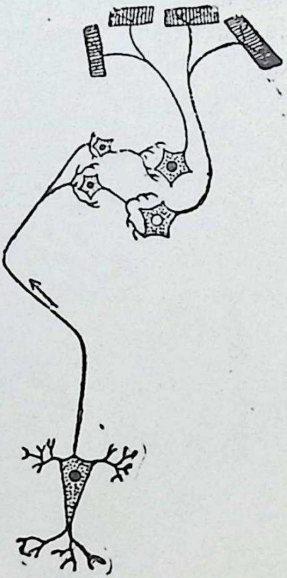

चित्र ७९--संचालन-मार्ग

इस प्रकार अब हम देखेंगे कि तन्त्रिका-तन्त्र **तन्त्रिका-कोशिकाओं** (neurons) का एक समूह है। परन्तु तन्त्रिका-कोशिका के अन्तर्गत वृक्षिका और तंत्रिकाक्ष के काम में एक अन्तर है जो हमें जान लेना चाहिए। वृक्षिका द्वारा उत्तेजना कोशिकाओं में पहुँचती है और कोशिकाओं में जो उत्तेजना उत्पन्न होती है वह तन्त्रिकाक्ष द्वारा बाहर जाती है। परन्तु एक कोशिका से उत्तेजना दूसरे कोशिका में कैसे जाती है, इस सम्बन्ध में भी एक विशेषता है। ऐसा नहीं है कि एक कोशिका का तन्त्रिकाक्ष दूसरे के वृक्षिका से छू जाता हो और इस प्रकार एक दूसरे में उत्तेजना पहुँचती हो। वास्तव में एक कोशिका का तन्त्रिकाक्ष बहुत लम्बा चला जाता है और छोटी-छोटी शाखाओं में अन्तर होता है और दूसरे कोशिका के

केन्द्र इन शाखाओं के निकट तक आते हैं और पेड़ की टहनियों के समान उलझ जाते हैं, परन्तु संयुक्त नहीं होते। इनके बीच में कुछ अन्तर रह जाता है। इस अन्तर को अन्तर्ग्रंथन (synapse) कहते हैं।

पेज १८३ के चित्र ७९ से यह स्पष्ट हो जायगा कि वृहत् मस्तिष्क के घूसर द्रव्य से चली उत्तेजना कोशिका के तन्त्रिकाक्ष अर्थात् तन्त्रिका-सूत्र द्वारा दूसरी कोशिका तक पहुंचती है। वहाँ कोशिका के तन्त्रिकाक्ष द्वारा यह आगे की कोशिका के वृक्षिका तक पहुँचती है। परन्तु तन्त्रिकाक्ष का शिरा उन वृक्षिका से छू नहीं जाता जिनके द्वारा यह उत्तेजना दूसरी कोशिकाओं को देता है। इस प्रकार रास्ते के समस्त स्टेशन पार करती हुई वह उत्तेजना पेशी तक पहुँच जाती है।

तन्त्रिकाएँ--अब हमें मालूम हो गया कि एक तन्त्रिका कई पतते-पतले तन्त्रिका-सूत्रों से बनती है। ये तन्त्रिका-सूत्र तन्त्रिका-कोशिका से निकलते हैं और **योजी ऊतक** (connective tissue) के सहारे एक दूसरे से अच्छी तरह

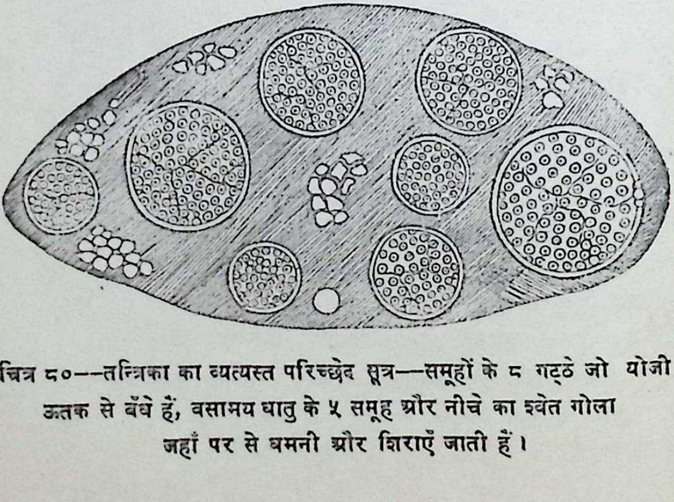

चित्र ८०--तन्त्रिका का व्यत्यस्त परिच्छेद सूत्र--समूहों के ८ गट्ठे जो योजी ऊतक से बँधे हैं, वसामय धातु के ५ समूह और नीचे का श्वेत गोला जहाँ पर से धमनी और शिराएँ जाती हैं।

मिले और बँधे होते हैं। बहुत से तन्त्रिका-सूत्रों के ऊपर चर्बीदार पदार्थ का एक खोल चढ़ा होता है जिसे **मज्जा आच्छद** (medullary sheath) कहते हैं। इस आवरण के अन्दर भी एक आवरण चढ़ा होता है जिसे वाह्यावरण कहते हैं। किन्तु कुछ तन्त्रिका-सूत्र ऐसे भी हैं (विशेषकर तन्त्रिका-तन्त्र वाले) जिन पर यह मज्जा आच्छद नहीं होता।

इस प्रकार यदि स्नायु (ligament) को लम्बाई में चीर दें तो उसके अन्दर अनेक सूत्र अलग-अलग किये जा सकते हैं और यदि उसे वेड़ा काट दें तो उसमें कितने ही सूत्रों के समूह दिखलाई पड़ेंगे। इसमें से प्रत्येक सूत्र पर एक आवरण दिखलाई पड़ेगा और प्रत्येक समूह पर भी एक आवरण दिखलाई पड़ेगा। इसी प्रकार कई समूहों के ऊपर एक आवरण होगा जो एक तन्त्रिका वनाएगा।

यह हम पढ़ चुके हैं कि तन्त्रिकाओं के सहारे मस्तिष्क को बाहरी खबरें पहुँचती हैं और मस्तिष्क से चली प्रेरणाएँ और आदेश भिन्न-भिन्न अङ्गों की पेशियों तक आती हैं। इस विचार से तन्त्रिकाएँ दो तरह की हैं। एक वे जो रीढ़-रज्जु और मस्तिष्क के तन्त्रिका केन्द्रों (nerve centres) की तरफ जाती हैं और समाचार पहुँचाती हैं। इन्हें **अभिवाही** (afferent) तन्त्रिकाएं कहते हैं। दूसरी जो तन्त्रिका-केन्द्रों से चलकर किसी पेशी या ग्रंथि तक आती और उसे मस्तिष्क का आदेश देती हैं, इन्हें **अपवाही** (efferent) तन्त्रिकाएँ कहते हैं। अभिवाही तन्त्रिकाओं में बहुत से ऐसे हैं, जिनके कारण किसी तरह की **संवेदना** (sensation) का बोध होता है या किसी तरह की चेतना का अनुभव होता है; जैसे देखना, छू जाना, सूंघना इत्यादि। इन्हें **संवेदी** (sensory) तन्त्रिका कहते हैं। फिर अपवाही तन्त्रिकाओं में बहुत से ऐसे हैं जिनकी प्रेरणा से पेशियों से किसी तरह की गति होती है। ये **गति सम्बन्धी** (motion) तन्त्रिकाएँ हैं। यदि किसी अपवाही तन्त्रिकाओं की प्रेरणा से किसी ग्रंथि में रस उत्पन्न होता है तो उसे रसोत्पादिनी तन्त्रिका कहते हैं और यदि किसी ऐसी ही तन्त्रिका के कारण रुधिर ले जाने वाली वाहिनी चौड़ी या सँकरी होती हैं तो

उन्हें वाहिका प्रेरक (Vasomotor) तन्त्रिका कहते हैं। इस तरह यह स्पष्ट है कि सभी अपवाही तन्त्रिकाएँ केवल गति-सम्बन्धी नहीं हैं और न सभी अपवाही तन्त्रिकाएँ केवल संवेदी।

कुछ तन्त्रिकाएँ केवल संवेदी हैं और कुछ केवल गति सम्बन्धी (motion) किन्तु अधिकांश तन्त्रिकाएँ मिली-जुली (मिश्रित) प्रकार की हैं। उनमें संवेदी और गति सम्बन्धी दोनों तरह के सूत्र रहते हैं और वे दोनों ओर प्रेरणाएँ ले जा सकते हैं।

एक प्रेरणा एक सेकेंड में लगभग १३० मीटर तक पहुँचाती है, जब तक कि प्रकाश या बिजली की गति इससे लाखों गुना तेज होती है।

मस्तिष्क

मस्तिष्क केन्द्रीय तन्त्रिका-तन्त्र का एक आवश्यक भाग है। यह हम पढ़ चुके हैं कि मस्तिष्क खोपड़ी के अन्दर सुरक्षित रहता है, परन्तु खोपड़ी के भीतर मस्तिष्क तीन झिल्लियों से ढँका रहता है। इन झिल्लियों को मस्तिष्क के ऊपर के आवरण कहते हैं। **बाह्य आवरण** (दृढ़ तानिका, duramater) मोटा और मजबूत होता है। यह अत्यन्त घने ऊतकों का बना होता है। बीच का आवरण (ऐरक्नायड, arachnoid) अत्यन्त पतला और कोमल होता है। नीचे का आवरण (मृदुतानिका, piamater) और भी पतला और मस्तिष्क से चिपका रहता है। मृदुतानिका को मस्तिष्क से अलग करना बहुत कठिन है। हम आगे पढ़ेंगे कि मस्तिष्क में बहुत से उभार और विदरे (**उभार और गड्ढे** fissure) हैं। मृदुतानिका मस्तिष्क के अन्दर विदरों में घुसा रहता है बाकी दो आवरण विदरों में नहीं घुसते, बल्कि ऊपर ही रहते है। बीच के आवरण के ऊपर और नीचे एक तरह का थोड़ा-सा तरल पदार्थ रहता है जिससे यह बीच वाला आवरण (ऐरक्नायड) पानी की गद्दी का काम करता है। उछलने-कूदने जैसी गतियों में इस पानी की गद्दी के कारण मस्तिष्क में चोट नहीं पहुँचती। मृदुतानिका में बहुत-सी रुधिर वाहिनियां रहती हैं और वे रुधिर से

भरी रहती हैं। क्योंकि मृदुतनिका के मस्तिष्क से चिपका रहने के कारण मस्तिष्क के अन्दर प्रविष्ट भी रहता है। अतः इसी कारण मस्तिष्क को बराबर रुधिर मिलता रहता है।

मस्तिष्क के चार मुख्य भाग हैं--

(१) बड़ा मस्तिष्क (प्रमस्तिष्क, cerebrum)--जो मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है और मस्तिष्क को ऊपर की तरफ से देखने से दिखाई देता है।

(२) छोटा मस्तिष्क (अनुमस्तिष्क, cerebellum)—जो प्रमस्तिष्क के पिछले भाग के नीचे रहता है और मस्तिष्क की नली को देखने से दिखाई देता है।

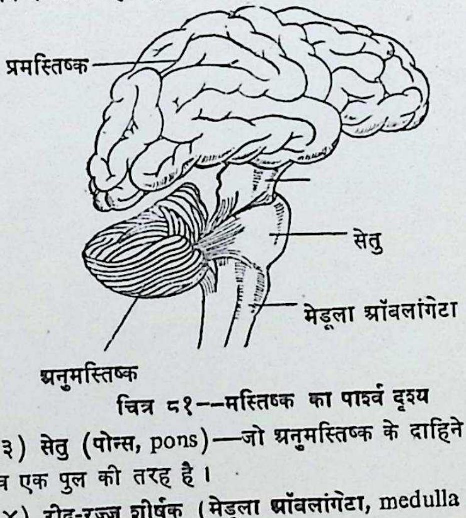

चित्र ८१--मस्तिष्क का पार्श्व दृश्य

(३) सेतु (पोन्स, pons)—जो अनुमस्तिष्क के दाहिने और बाएँ भाग के बीच एक पुल की तरह है।

(४) रीढ़-रज्जु शीर्षक (मेडूला ऑबलांगेटा, medulla oblongata)—जो पोन्स के नीचे एक लम्बा अंग है, रीढ़-रज्जु शीर्षक के भाग से रीढ़-रज्जु का आरम्भ होता है।

(१) प्रमस्तिष्क—मस्तिष्क के इस भाग में कुल मस्तिष्क के भार का ८७·५% भाग रहता है। मस्तिष्क के दो टुकड़े हैं। इन दोनों के बीच में एक दरार (विदर, fissure) रहता है। विदर के दोनों तरफ प्रमस्तिष्क के जो

भाग हैं वे दाहिने और वाएं प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध (cerebral hemispheres) कहलाते हैं। यदि ये दोनों प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध एक-दूसरे से बिल्कुल अलग कर दिये जायें तो इस विदर की नली में इन दोनों प्रमस्तिष्क गोलार्द्धों को जोड़ती हुई एक चौड़ी श्वेत चीज दिखाई देगी। वह श्वेत चीज भी तन्त्रिका ऊतक से बना हुआ भाग है और महासंयोजक पिंड (corpus callosum) कहलाती है।

बाहर से देखने से प्रमस्तिष्क पर बहुत-सी धारियां दीखती हैं, जिनके कारण कहीं उभरे हुए और कहीं गहरे भाग दीखते हैं। जिस तरह हल चलाने से खेत में नालियां बन जाती हैं, जिनके बीच मिट्टी उभरी हुई मेड़ें रहती हैं उसी तरह प्रमस्तिष्क पर बहुत-सी नालियां (गहराइयां) होती हैं और इनके बीच-बीच में मस्तिष्क के भाग उभरे रहते हैं। इन विदरों (fissures) के बीच उभरे भागों को संवलन (convolutions) कहते हैं (चित्र ८१ में देखो)। मस्तिष्क की विदर की गहराई का बुद्धि से बहुत घना सम्बन्ध है। बुद्धिमान मनुष्यों में ये विदर मंद बुद्धि वालों के मस्तिष्क की अपेक्षा ज्यादा गहरी होती हैं।

ऊपर बताया गया है कि तन्त्रिका ऊतक दो तरह के पदार्थों से बनी है-- धूसर द्रव्य (Grey matter) और श्वेत द्रव्य (white matter)। प्रमस्तिष्क में धूसर द्रव्य बाहर रहता है और श्वेत द्रव्य को ढंके रहता है। धूसर द्रव्य (Grey matter) श्वेत द्रव्य (White matter) के चारों तरफ इस तरह लगा रहता है जैसे आम के फल में बीज के ऊपर गूदा रहता है। बाहर वाले धूसर भाग को वल्कुट (cortex) कहते हैं। वल्कुट की मोटाई बुद्धिमानों में मंद बुद्धि वालों की अपेक्षा अधिक होती है। धूसर द्रव्य का भाग तन्त्रिका-कोशिकाओं से बनता है और भीतर का श्वेत द्रव्य का भाग इन कोशिकाओं के निकले तंत्रिका सूत्रों से। ये सूत्र वल्कुट से निकलते है या वल्कुट में जाते हैं। ये सूत्र मस्तिष्क की कोशिकाओं से निकल कर रीढ़-रज्जु में भी जाते हैं। इस प्रकार असंख्य सूत्र मस्तिष्क में स्थित है। श्वेत द्रव्य इन्हीं सूत्रों का बना है। बाहरी धूसर द्रव्य के भाग में भी कहीं-कहीं श्वेत द्रव्य के केन्द्र पाये जाते हैं। वैसे ही धूसर द्रव्य

के समूह श्वेत द्रव्य में पाये जाते हैं। इन समूहों को मस्तिष्क का केन्द्र कहते हैं। ये केन्द्र मस्तिष्क के अलग-अलग कामों से सम्बन्ध रखते हैं। प्रत्येक भाग, जो एक विशेष काम के लिए निश्चित है, एक केन्द्र (centre) कहलाता है।

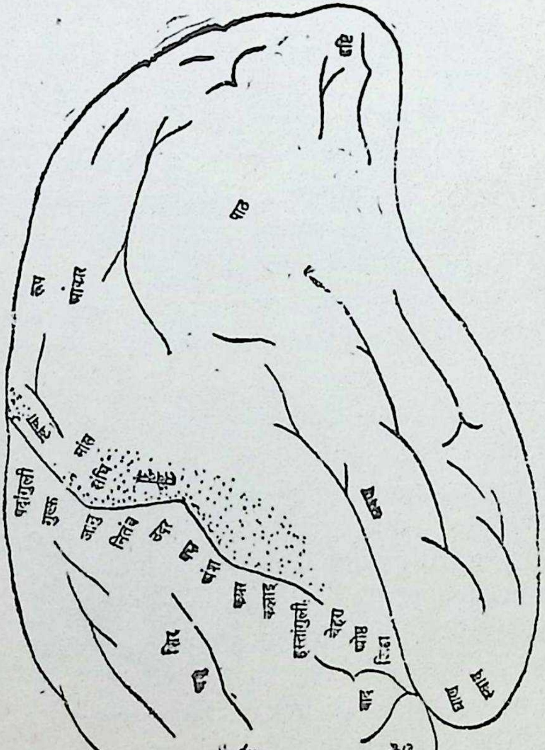

चित्र ८२—मस्तिष्क के गोलार्द्ध का पार्श्व दृश्य। जिन स्थानों का विशेष अंग या क्रिया से सम्बन्ध है वहां उनके नाम लिखे हैं।

केन्द्रों के नाम उनके काम के अनुसार रखे हैं, जैसे;—दृष्टि केन्द्र (जिसका देखने से सम्बन्ध है), श्रवण केन्द्र (जिसका सुनने से सम्बन्ध है), घ्राण केन्द्र (सूंघना), स्वाद केन्द्र इत्यादि। (चित्र ८२ से यह ज्ञात होगा कि कौन केन्द्र कहाँ है।)

चित्र ८२ के अगले भाग (जहाँ मानस लिखा है) के पीछे एक ऊपर-नीचे की तिरछी टेढ़ी रेखा के आगे ये केन्द्र दिखलाये गए हैं। यह बीच की टेढ़ी विभक्त करने वाली रेखा वास्तव में एक विदर है। इस विदर का अगला भाग प्रेरक क्षेत्र (motor area) कहलाता है और पीछे का भाग संवेदी क्षेत्र (sensory area)। वैज्ञानिक प्रयोगों से देखा गया है कि प्रेरक क्षेत्र के केन्द्रों में विद्युत् द्वारा उत्तेजना पैदा करने से उन सम्बन्वित अंगों की पेशियों में संकोच पैदा होता है। इसी प्रकार संवेदी सूचनाएँ भी उस विदर के पीछे के सम्बन्वित भाग में प्राप्त होती हैं। दृक्, श्रवण, घ्राण, स्वाद आदि के केन्द्र संवेदी भाग में होते हैं। प्रत्येक गोलार्द्ध भीतर से खोखला होता है। इस तरह प्रमस्तिष्क में दो कोष्ठ होते हैं; एक दाहिना दूसरा बायाँ।

प्रमस्तिष्क के काम—प्रमस्तिष्क के काम अनेक और बहुत जटिल हैं। संवेदन, विचार-शक्ति, स्मरण-शक्ति, संकल्प-बल, कार्य करने की प्रेरणाएँ, भाव सभी का सम्बन्ध प्रमस्तिष्क से है। यही बुद्ध और ज्ञान का केन्द्र है और इसी के द्वारा हम सोचते, सीखते, समझते, निर्णय करते और बातों को स्मरण रखते हैं। इसी के द्वारा हम अपने आसपास की चीजों का निरीक्षण करते और उनका ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसी से हम संकल्प और विचारमय क्रियाएँ करते हैं। मस्तिष्क के इसी भाग में मनोभाव (emotions) भी जैसे; प्रेम, घृणा, भय, हर्ष विषाद उदय होते हैं।

जैसा ऊपर कहा गया है इसके अलग-अलग भाग अलग-अलग कामों के लिए नियत हैं। कुछ भाग ऐसे हैं जिसमें संवेदनाएँ बाहरी समाचार पहुँचाती हैं। ये संवेदी केन्द्र हैं। कुछ भागों से प्रेरणाएँ निकलती हैं। ये चालक केन्द्र हैं।

प्रमस्तिष्क का काम श्रौर उसकी उपयोगिता जानवरों पर किए गए प्रयोगों श्रौर मनुष्य के रोगों के निरीक्षण से निश्चित की गई है। नीचे दिये गये उदाहरण से इन प्रयोगों श्रौर उनके फलों का कुछ पता चलेगा :—

(क) यदि एक मेंढक का प्रमस्तिष्क नष्ट हो जाता है तो वह साधारणतया बैठा रहता है, सांस लेता है। यदि मुंह में कुछ खाद्य पदार्थ रखा जाय तो उसे निगल लेता है—स्वत: खाने की चेष्टा नहीं करता है। यदि वह पीठ के बल रख दिया जाय तो घूम कर फिर बैठ जाता है श्रौर यदि पानी में छोड़ा जाय तो तैरने लगता है। यदि उसको श्रकेला छोड़ दिया जाय श्रौर कुछ छेड़-छाड़ न की जाय तो वह तब तक बैठा रहेगा जब तक मर न जाय। इससे यह मालूम होता है कि वह (प्रमस्तिष्क के न रहने पर) श्रपनी इच्छा से कोई भी काम नहीं करता बल्कि उन प्रेरणाश्रों से प्रेरित होकर काम करता है जो बाहर से रीढ़-रज्जु श्रौर रीढ़-रज्जु-शीर्षक के द्वारा श्राती हैं श्रौर उसे प्रेरित करती हैं। श्रपनी इच्छा के श्रनुसार स्वयं काम कर सकना प्रमस्तिष्क के सहारे ही होता है।

परन्तु यह प्रयोग छोटे जीवों पर ही किये जा सके हैं। बड़े जीव, जैसे; बन्दर, कुत्ता श्रादि प्रमस्तिष्क के निकाल देने से मर जाते हैं।

(ख) यदि किसी के सिर पर ऐसी चोट लगे कि उसका प्रभाव मस्तिष्क तक पहुँच जाय तो वह बेहोश पड़ा रहता है। श्रगर सेवा-सुश्रूषा से सदमा दूर हो गया तो वह श्रादमी फिर होश में श्रा जाता है, किन्तु यदि चोट बहुत गहरी है तो वह बेहोशी की दशा में ही मर जाता है।

(ग) कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि सिर में गहरी चोट श्रा जाने से होश में श्राने के बाद भी वह श्रादमी पुरानी बातों को भूल जाता है, श्रपने सगे-सम्बन्धियों को भूल जाता है। क्योंकि चोट में वह भाग, जो स्मृति रखता है, नष्ट हो गया था।

(घ) कुछ बच्चों का प्रमस्तिष्क जन्म से ही छोटा रहता है। फलस्वरूप वे मन्द बुद्धि वाले होते हैं। इसके विपरीत बुद्धिमान श्रौर ज्ञानसम्पन्न मनुष्यों

का मस्तिष्क बराबर बड़ा पाया जाता है। जिस तरह खेल-कूद और व्यायाम से हाथ-पैर की पेशियां पुष्ट होती हैं उसी तरह सोचने-विचारने और पढ़ने से मस्तिष्क बड़ा और परिष्कृत होता है। जो लड़कपन से ही अच्छी तरह पढ़ता-लिखता है वह अपने प्रमस्तिष्क को परिपुष्ट करता है और उसकी मस्तिष्क सम्बन्धी शक्तियां जीवन भर उसके काम आती हैं।

(च) शराब इत्यादि के व्यवहार से मस्तिष्क के इस भाग पर बुरा प्रभाव पड़ता है और नशेबाज की बुद्धि और संकल्प-बल का धीरे-धीरे ह्रास होता है। कभी-कभी जोरदार नशे में आदमी बेहोश मुर्दे की तरह गिर भी जाता है।

(२) अनुमस्तिष्क--छोटा मस्तिष्क (अनुमस्तिष्क) प्रमस्तिष्क से बहुत छोटा होता है और उसके पीछे की तरफ रहता है। उसका आकार एक ऐसे चिपके गोले से, जिसकी चौड़ाई अधिक रहती है और मोटाई कम, बहुत मिलती है। उसकी पीठ पर भी बरार या विदर (fissure) होती हैं, जो प्रमस्तिष्क की दरार या विदर (fissure) से अधिक गहरी होती है और पास-पास तथा अधिक समान्तर रहती हैं। मस्तिष्क मृदुतानिका (piamater) अनुमस्तिष्क के भागों तक में अच्छी तरह अन्दर पहुंचा होता है। अनुमस्तिष्क में भी धूसर द्रव्य बाहर रहता है और श्वेत द्रव्य को ढके रहता है। धूसर द्रव्य का पतला-सा स्तर श्वेत भाग के अन्दर प्रविष्ट भी हो जाता है। वहाँ जाकर वह वृक्ष की डालियों के समान इधर-उधर फैल जाता है।

अनुमस्तिष्क भी बहुत आवश्यक काम करता है। उसी के कारण शरीर में ठीक तरह से गतियां होती हैं। गतियों के ठीक रहने से शरीर में समता और सन्तुलन रहता है। किसी शराबी के लड़खड़ाने का यही कारण है कि उसका अनुमस्तिष्क शराब से विवश रहता है। पेचीदे और नाजुक कामों में पेशियों का सन्तुलन (balancing) अनुमस्तिष्क के ही सहारे होता है। चित्रकारी और बाजा बजाना जैसे कठिन काम अनुमस्तिष्क के संचालन से होते हैं। मस्तिष्क के इसी भाग से संवेदी खबरें पेशियों, जोड़ और नलियों से आती हैं और इसी भाग से चालक प्रेरणाएं भेजी जाती हैं, जिससे टहलने,

दौड़ने जैसे कठिन कामों में पेशियों की गति ठीक हो पाती है। चलने में शरीर की लगभग दो सौ पेशियाँ काम करती हैं। कोई खिचती हैं तो कोई ढीली होती हैं, कोई आगे झुकती हैं तो कोई पीछे जाती हैं। इन सब में संतुलन देकर दृढ़तापूर्वक चलने या दौड़ने की सामर्थ्य मनुष्य में अनुमस्तिष्क देता है। यदि अनुमस्तिष्क को चोट लगे या उसमें किसी तरह की खराबी आ जाय तो सिर में चक्कर आता है और शरीर की समता और संतुलन-शक्ति जाती रहती है।

कदाचित् तुमने कोई ऐसा आदमी देखा हो जिसको अपने शरीर पर काबू नहीं हो। कोई चीज घुमाना या पकड़ना चाहता है, परन्तु छू नहीं सकता, हाथ इधर का उधर चला जाता है। खड़ा होना चाहता है तो सारे शरीर में कँपकँपी होने लगती है। बिना सहारे खड़ा नहीं हो सकता। यह सब रोग अनुमस्तिष्क के रोगी होने के कारण होते हैं। ऐसे लोगों में बुद्धि का ह्रास नहीं होता। ज्ञानेन्द्रियाँ पहले जैसी काम करती हैं, पाचन में भी कोई बाधा नहीं पड़ती, केवल शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है।

अनुमस्तिष्क का दाहिना भाग प्रमस्तिष्क के बाएं भाग का और बायाँ भाग दाहिने भाग का सहकारी है। शरीर के बाएं भाग की गतियों का प्रमस्तिष्क के दाहिने भाग से और दाहिने भाग की गतियों का प्रमस्तिष्क के बायें भाग से सम्बन्ध है।

सेतु या पोन्स (Pons)—अनुमस्तिष्क के सामने पुल के मेहराब की तरह मुड़ा हुआ श्वेत रंग का जो भाग है उसे **सेतु या पोन्स** (pons) कहते हैं। यह मेडूला ऑबलांगेटा (Medulla oblongata) के ऊपर से निकलता है और अनुमस्तिष्क के दोनों भागों को मिलाय रखता है। प्रमस्तिष्क के तन्त्रिका-सूत्र पोन्स से होकर ही जाते हैं और यही प्रमस्तिष्क के दाहिने और बाएँ गोलार्द्ध से आये हुए तन्त्रिका-सूत्र एक दूसरे को पार करते हैं। दाहिने गोलार्द्ध से आये हुए तन्त्रिका-सूत्र पोन्स के बाएँ भाग से होते हुए शरीर के बाएँ भाग की पेशियों तक पहुँचते हैं और बाएँ गोलार्द्ध से आए हुए तन्त्रिका-सूत्र पोन्स के दाहिने

भाग से होते हुए शरीर के दाहिने भाग की पेशियों तक पहुँचते हैं। इससे यह होता है कि अगर दाहिने गोलार्द्ध (अनुमस्तिष्क) में कुछ खराबी होती है तो शरीर के बाएँ भाग में लकवा होता है या इच्छाधीन गतियाँ वन्द हो जाती हैं और यदि बाएँ गोलार्द्ध में खराबी हो तो शरीर के दाएँ भाग की गतियाँ रुक जाती हैं। पोन्स के ठीक सामने पीयूष-ग्रंथि (pituitary glands) है, जिसका वर्णन आगे आएगा।

(४) मेडूला ऑबलांगेटा (Medulla oblongata)—पोन्स के पीछे और उससे लगा हुआ खोपड़ी के अन्दर रहने वाला मस्तिष्क का जो भाग है उसको मेडूला ऑबलांगेटा (Medulla oblongata) कहते हैं। इस अंग के नीचे के भाग से रीढ़-रज्जु आरम्भ होती है। अनुमस्तिष्क के दोनों भागों के बीच में रहने वाला स्नायु-पदार्थ का बना यह गोलाकार अंग (मेडूला ऑबलांगेटा) रीढ़-रज्जु को मस्तिष्क से मिलाता है। मस्तिष्क के दूसरे भागों में धूसर द्रव्य बाहर रहता है और श्वेत द्रव्य भीतर। मेडूला ऑबलांगेटा में श्वेत द्रव्य बाहर रहता है और धूसर द्रव्य अन्दर।

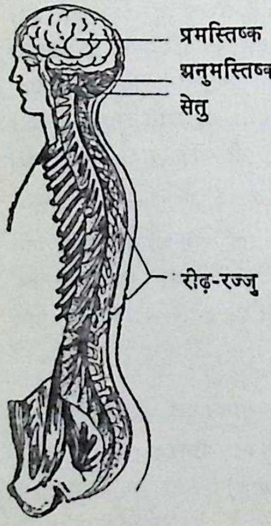

चित्र ८३—मस्तिष्क और रीढ़-रज्जु

मेडूला ऑवलांगेटा एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अंग है क्योंकि जितने भी तन्त्रिका सूत्र रीढ़-रज्जु से निकल कर मस्तिष्क को जाते हैं वे सभी मेडूला ऑवलांगेटा से होकर जाते हैं। इसी में शरीर की कई आवश्यक क्रियाओं, जैसे—साँस लेना, रुधिर-परिसंचरण, निगलना इत्यादि के केन्द्र स्थित हैं। मस्तिष्क के इस भाग (मेडूला ऑवलांगेटा) में चोट लगने से उसी समय मृत्यु हो जाती है।

मस्तिष्क से निकलने वाली तन्त्रिकाएँ (कपाल तन्त्रिका, (Cranial Nerves)—मस्तिष्क के निचले भाग की स्नायु से १२ जोड़े निकलते हैं। उसकी गिनती सामने से पीछे को पहली, दूसरी, तीसरी इत्यादि होती है। ये स्नायु छोटे-छोटे छेदों से होकर खोपड़ी से निकलती हैं और सुख-दुःख अनुभव करने वाली (ज्ञान) इन्द्रियों या पेशियों या सिर की त्वचा में फैल जाती हैं। मस्तिष्क की बहुत-सी तन्त्रिकाएँ संवेदी हैं, कुछ गति संबंधी भी हैं और कुछ मिली-जुली हैं (रीढ़-रज्जु से जितनी तन्त्रिकाएँ निकलती हैं वे सभी मिली-जुली हैं अर्थात् संवेदी और चालक दोनों ही हैं)। प्रथम छः मस्तिष्क तन्त्रिकाएं प्रमस्तिष्क के निचले भाग से निकलती हैं। शेष छः मेडूला ऑवलांगेटा के पार्श्वों से निकलती हैं। मस्तिष्क से निकलने वाली तन्त्रिकाओं के १२ जोड़े इस तरह हैं :—

पहले जोड़े का सम्बन्ध गन्ध से है। घ्राण तन्त्रिका (olfactory nerves) कहलाती हैं। ये संवेदी तन्त्रिकाएँ हैं और इनका आरम्भ मस्तिष्क के घ्राण केन्द्र से होकर अन्त नाक की श्लेष्मा-झिल्ली में होता है। इनसे गन्ध का अनुभव होता है।

दूसरा जोड़ा दृक् तन्त्रिका (optic nerves) का है। ये दृक् तन्त्रिकाएँ हैं और आँख के गोले तक जाती हैं। ये मस्तिष्क की निचली सतह पर ठीक पीयूष ग्रंथि के सामने एक दूसरे को पार करती हैं।

तीसरे, चौथे और छठें जोड़ों का सम्बन्ध आँख की गति से है। ये चालक तन्त्रिकाएँ हैं और पेशियों में पहुँचती हैं जो आँख को चारों तरफ घुमाती-फिराती हैं। पेशियाँ छः हैं, चार सीधी और दो तिरछी। दो तिरछी पेशियों

में से एक संचालन चौथा जोड़ा (चक्रक तन्त्रिका, trochlear nerves); चार सीधी पेशियों में से बाहरी सीधी पेशी का संचालन छठा जोड़ा (अपचालिनी तन्त्रिका, abducent nerves) और बाकी चार पेशियों का संचालन तीसरा

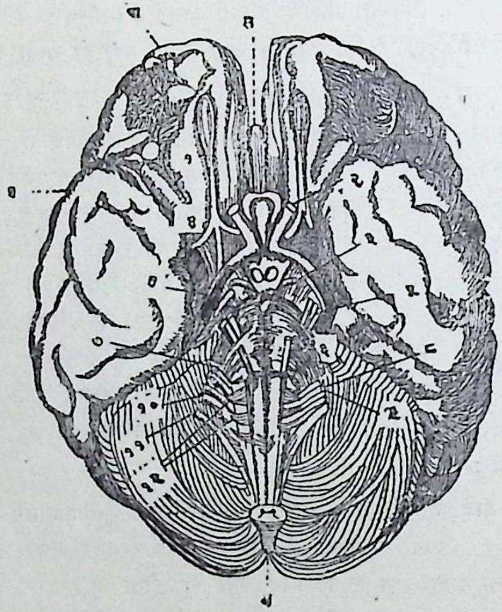

चित्र ८४—मस्तिष्क का अधर दृश्य

स—महासंयोजक पिंड, प—रीढ़-रज्जु, अ—मस्तिष्क का पूर्व खंड, व—मध्य या पार्श्व खंड, ३—पश्चिम खंड, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११ और १२ वीं तन्त्रिकाएं निकलती हुई दिखाई गई हैं।

जोड़ा (अक्षिप्रेरक तन्त्रिका, oculomotor nerves) करता है। आंख के गोले की मुख्य चालक तन्त्रिका इसी तीसरे जोड़े की तन्त्रिका है (आंख के प्रकरण में दिया चित्र देखो)।

पांचवा जोड़ा मिली-जुली तन्त्रिकाओं का है। इनकी तीन बड़ी-बड़ी शाखाएं हैं जिनमें से एक संवेदी है और नेत्र, नासिका, मुंह, दांत और गाल के आस-पास के भागों में फैलती हुई जिह्वा के सामने के भाग में समाप्त हो जाती है। इसी तन्त्रिका के कारण चेहरा और दांत इत्यादि के दर्दों का वोध होता है और इसी से स्वाद का भी अनुभव होता है। पांचवें जोड़े की दो शेष शाखाएं चालक तन्त्रिकाओं की हैं और उन पेशियों तक जाती हैं, जो भोजन चवाते समय जवड़ों को घुमाती-फिरती हैं। इस जोड़े का नाम त्रिक् तन्त्रिका (trigeminal nerves) है।

सातवां जोड़ा आनन-तन्त्रिका (facial nerves) का है। इनका संबंध चेहरे की पेशियों की गति से है।

आठवें जोड़े का सम्वन्ध सुनने से है। वे श्रवण तन्त्रिका (auditory nerves) हैं और भीतरी कान को जाती हैं।

नवां जोड़ा मिली-जुली तन्त्रिकाओं का है। इसकी एक शाखा संवेदी है और जीभ के पिछले हिस्से में फैली रहती है। वह स्वाद- की तन्त्रिका है। दूसरी शाखा चालक है और कंठ की पेशियों को संचालित करती है, जिनके सहारे निगलने की क्रिया होती है। इस जोड़े का नाम जिह्वाग्रसनी तन्त्रिका (glosso-pharyngeal nerves) है।

दसवां जोड़ा भी मिली-जुली तन्त्रिकाओं का है, जो फेफड़े, हृदय, यकृत और आमाशय को जाता है। वहुत भागों में फैले रहने के कारण ये वेगस तन्त्रिका (vagus nerves) कहलाती हैं, चूंकि यह श्वसन और पाचन से सम्वन्धित अङ्गों को जाती है इसलिए इसे फुप्फुस जठर-तन्त्रिका (Pneumo-gastric nerves) भी कहते हैं।

ग्यारहवां जोड़ा चालक तन्त्रिकाओं का है, जो गर्दन की कुछ पेशियों की गति से सम्बन्ध रखती हैं। इन्हें रीढ़-सहायक तन्त्रिका (spinal accessory nerves) कहते हैं।

बारहवाँ जोड़ा भी चालक तन्त्रिकाओं का है। जीभ के नीचे की पेशियों से सम्बन्धित रहने के कारण अधोजिह्वा तन्त्रिका (hypoglossal nerves) कहलाती है।

रीढ़-रज्जु

रीढ़-रज्जु तन्त्रिका ऊतक के बनी हुई बेलन के आकार की एक रस्सी की तरह की चीज हैं। यह अनुमस्तिष्क के नीचे महारंध्र (foramen magnum)

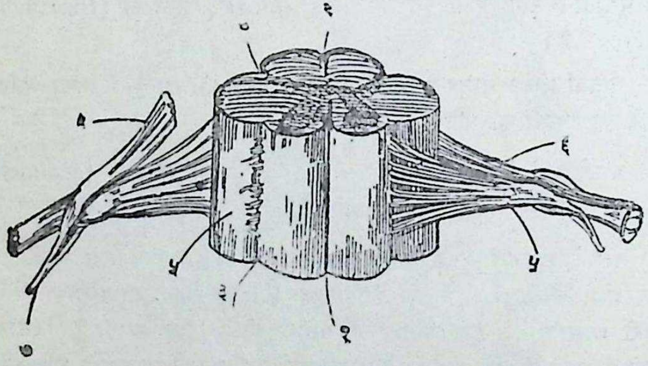

चित्र ८५—१—समाने की विदर, २—पीछे की विदर, ३—वह स्थान जहाँ से रीढ़-तन्त्रिका की अघर मूल निकलती है, ४—वह स्थान जहाँ पृष्ठ मूल निकलती है, ५—अघर मूल, ६—पृष्ठ मूल

से आरम्भ होकर रीढ़ की नली कशेरुक नाल (spinal of vertebral canal) में नीचे उतरती है और कूल्हे के दूसरे कशेरुक के पास समाप्त हो जाती है। यहाँ पर तन्त्रिकाओं का गुच्छा-सा फैल जाता है। मस्तिष्क की तरह रीढ़-रज्जु भी तीन आवरणों से ढँकी है। रीढ़-रज्जु की लम्बाई लगभग ४५ सेमी होती है। रीढ़-रज्जु की अगली पीठ पर ठीक बीचोबीच में एक विदर होती है। पिछली पीठ भी ठीक बीचोबीच में दबी रहती है। इन दोनों विदरों के

इधर-उधर रीढ़-रज्जु के एक ही जैसे दो बराबर भाग होते हैं। इन भागों को पार्श्वार्द्ध कह सकते हैं। इन दोनों भागों के बीच में एक नली है जिससे तंत्रकीय नाल (neural canal) कहते हैं और जो मस्तिष्क से मिली रहती है। रीढ़-रज्जु के दोनों बगलों (ऊपर कहे भागों) से थोड़ी-थोड़ी दूर पर तन्त्रिकाएँ निकलती हैं। इन तन्त्रिकाओं के ३१ जोड़े होते हैं। इन्हें रीढ़-तन्त्रिकाएँ कहते है। हर एक रीढ़-तन्त्रिका दो मूल—पृष्ठमूल (dorsal root) और अधरमूल (ventral root) से निकलती है। दोनों मूल रीढ़-रज्जु के पास ही एक दूसरे से मिल जाती हैं, दोनों के मेल से पूरी तन्त्रिका बनती है। पृष्ठमूल पर एक छोटा-सा उभार होता है इसको पृष्ठीय गुच्छिका (dorsal ganglion) कहते हैं। यहाँ पर वे कोशिकाएँ रहती हैं जिनमें तन्त्रिका द्वारा संवेदनी सूत्र (sensory fibre) आकर रीढ़-रज्जु में जाते हैं (देखो चित्र ८५)।

रीढ़-तन्त्रिकाओं के विषय में यह जानना चाहिए कि ये मिश्रित मिली-जुली तन्त्रिकाएँ हैं, अर्थात् हर एक तन्त्रिका के कुछ सूत्र संवेदी हैं और कुछ चालक।

इस प्रकार प्रत्येक तन्त्रिका में चालक और संवेदी (sensory) दोनों प्रकार के सूत्र होते हैं और दोनों मूलों से निकलने वाले सूत्र कशेरुकाओं के अन्तर के रंध्र से निकलने के पहले ही आपस में मिल जाते हैं।

यह बताया गया है कि प्रत्येक रीढ़-तन्त्रिका के दो मूल (roots) हैं। अधरमूल (ventral root) के तार रीढ़-रज्जु के भीतर से निकलते और अङ्गों की ओर जाते हैं। इनका सम्बन्ध पेशियों की गति से है, इसलिए ये चालक हैं पृष्ठमूल (dorsal root) के तार अङ्गों की ओर से रीढ़-रज्जु के भीतर घुसते हैं। इनसे अङ्गों की खबर मिलती है, संवेदन (sensation) का ज्ञान होता है—इसलिए संवेदी हैं।

रीढ़-रज्जु में (मस्तिष्क के विपरीत) श्वेत द्रव्य (white matter) बाहर है और धूसर द्रव्य (grey matter) भीतर (श्वेत द्रव्य धूसर को बिल्कुल

ढँके और घेरे रहता है। घूसर भाग में कोशिकाएँ और श्वेत में उनसे निकले हुए सूत्र होते हैं)।

अन्दर रहने वाला घूसर भाग अँग्रेजी भाषा के एच (H) अक्षर के आकार से बहुत कुछ मिलता है। घूसर भाग के या यों कहिए कि H के, दो मुड़े हुए अगल-बगल के **पृष्ठीय** (dorsal) भाग हैं, जो एक पुल सरीखे अंश से मिले रहते हैं। प्रत्येक **पृष्ठीय** (dorsal) भाग मुड़ा रहता है। उसका अधर (ventral) सिरा मोटा और छोटा रहता है और पृष्ठीय सिरा लम्बा-पतला। **अधर** (ventral) सिरा (**अधर-शृंग,** ventral horn) और पृष्ठीय सिरा (**पृष्ठीय-शृंग,** dorsal horn) कहलाता है। ऊपर बताया गया है कि हर एक रीढ़-तन्त्रिका की दो मूल होती हैं, पृष्ठीय और अधर। तन्त्रिकाओं की अधर मूल अधर शृंग से निकलती हैं और जैसा कि कहा गया है उनसे निकले तार अंग-अंग की पेशियों तक जाते हैं। ये चालक हैं। पृष्ठीय मूल अधर शृंग से जुड़ती है। इस मूल में आये हुए तन्त्रिका-सूत्र अंगों से आते हैं और संवेदन का बोध कराते हैं। यह संवेदी तन्त्रिका-सूत्र है। संवेदी तन्त्रिका-सूत्र को पृष्ठीय शृंग तक पहुँचने के लिए **पृष्ठीय गुच्छिका** (dorsal ganglion) में आना पड़ता है, यह तुमको पहले बताया जा चुका है (देखो चित्र ८५)।

रीढ़-रज्जु का घूसर द्रव्य बनावट में मस्तिष्क के घूसर द्रव्य की तरह है। वह भी तन्त्रिका कोशिकाओं (neuron) और उनके निकले सूत्रों से बना है। रीढ़-रज्जु का श्वेत द्रव्य ऐसे तन्त्रिका सूत्रों से बना होता है, जो चर्बीदार त्वचा से ढँके होते हैं। ये सूत्र मस्तिष्क के विविध भागों से आते हैं और शरीर के विविध भागों में जाते हैं—इस तरह ये मस्तिष्क से शरीर में प्रेरणाएँ ले जाते हैं। शरीर के दाहिने भाग से सूत्र मस्तिष्क के बाएँ भाग में जाते हैं और शरीर के बाएँ भाग के सूत्र मस्तिष्क के दाहिने भाग में जाते हैं।

यदि किसी तन्त्रिका (रीढ़) के चालक सूत्र की मूल (root) कट जाय या नष्ट हो जाय तो उससे सम्बन्ध रखने वाली पेशी की गति रुक जाती है,

पर यदि उसी अंग में सुई चुभाई जाय या उस पर कोई गर्म चीज रखी जाय तो संवेदन का बोध होता है। इसी तरह यदि किसी तरह संवेदी सूत्र की मूल नष्ट हो जाय तो उसे उससे सम्बन्धित अंग में पेशियों की गति होगी, पर उसमें सुई चुभाने पर संवेदन का बोध नहीं होगा। मिश्रित तन्त्रिका की यही विशेषता है।

रीढ़ रज्जु के काम—यह बात समझ में आ गयी होगी कि रीढ़-रज्जु के श्वेत द्रव्य के बनाने वाले तन्त्रिका-सूत्र और धूसर द्रव्य में स्थित तन्त्रिका केन्द्र बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

श्वेत द्रव्य में ही वह शक्ति है जिससे, मस्तिष्क से और मस्तिष्क में, प्रेरणाएँ और खबरें आती-जाती हैं। शरीर के दाहिने हिस्से की खबरें मस्तिष्क के बाएँ भाग में पहुँचती हैं और शरीर के बाएँ भाग की खबरें मस्तिष्क के दाहिने भाग में पहुँचती हैं। मस्तिष्क से प्रेरणाओं के आने का भी ऐसा ही तिरछा-तिरछा प्रबन्ध रहता है। यदि रीढ़-रज्जु में बीमारी या चोट-चपेट से कोई खराबी उत्पन्न हो तो प्रेरणाओं का आना-जाना बन्द हो जाय। रीढ़-रज्जु में जहाँ पर खराबी आई वहाँ या उससे नीचे के अंगों में न तो कोई गति हो सकेगा और न उसमें पीड़ा इत्यादि का संवेदनात्मक बोध हो सकेगा। यह कहा जायगा कि उन अंगों पर पक्षाघात (paralysis) गिर गया। अगर रीढ़-रज्जु के उस भाग में खराबी हुई है, जो गर्दन से नीचे है तो पक्षाघात (paralysis) गिर जायगा, पर जीवन का नाश न होगा। पर यदि गर्दन के अन्दर वाले रीढ़-रज्जु के भाग में खराबी आयेगी तो शीघ्र ही मृत्यु हो जायेगी। बात यह है कि इस भाग से तन्त्रिका-सूत्र निकलकर मध्यपट पेशी में जाते और उसका संचालन और नियन्त्रण करते हैं। मध्यपट का सम्बन्ध साँस लेने से है। यदि रीढ़-रज्जु के गर्दन वाले भाग में खराबी आ गई तो साँस लेना असम्भव हो जायगा और मत्यु अवश्य होगी।

यह तो हुई रीढ़-रज्जु के श्वेत द्रव्य के सम्बन्ध की बात। धूसर द्रव्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। धूसर द्रव्य के बनाने वाली तन्त्रिका कोशिकाओं का

सम्बन्ध उन पेशियों की गति से है जिन (पेशियों) में रीढ़-तन्त्रिका के प्रति-पृष्ठीय मूल वाले या चालक तार से पहुँचते हैं। अब यहाँ पर मस्तिष्क के घूसर द्रव्य और रीढ़-रज्जु के घूसर द्रव्य में जो मुख्य भेद है उसे समझना चाहिए। मस्तिष्क से घूसर द्रव्य की तन्त्रिका कोशिकाओं (neurons) इच्छानुसार गतियाँ उत्पन्न कर सकते हैं। यह रीढ़-रज्जु के घूसर द्रव्य के तन्त्रिका कोशिकाओं (neurons) में नहीं है। यदि रीढ़-रज्जु में चोट लगे या खराबी आ जाय तो खराबी के स्थान से नीचे के अंगों की पेशियाँ, जिनका संचालन रीढ़-तन्त्रिका अधरमूल (ventral root) के सूत्रों से होता है, मनुष्य की इच्छानुसार संचालित न होंगी और वे अंग इच्छानुसार घुमाये-चलाये न जा सकेंगे। जब उनका मस्तिष्क से सम्बन्ध ही न रह गया तो इच्छानुसार उनका संचालन कैसे हो सकता है। फिर भी यदि किसी ऐसे अंग में चिकोटी काटी जाय या खुजलाया जाय तो उस प्रेरणा के उत्तर में (प्रतिक्रिया-स्वरूप) उस अंग में किसी न किसी तरह की गति हो सकेगी, पर इस गति में मस्तिष्क का हाथ न होगा। ऐसी स्थिति में यह होता है कि संवेदी तन्त्रिका-सूत्र में प्रेरणा रीढ़-रज्जु से पहुँचती है उसका प्रत्युत्तर रीढ़-रज्जु (मस्तिष्क नहीं) चालक तन्त्रिका-सूत्र के सहारे उस अंग की पेशी में भेज देती है और तब उस अंग में बिना मस्तिष्क की प्रेरणा के ही कुछ गति हो जाती है। ऐसी गति या इसी तरह की और क्रियाओं को प्रतिवर्ती क्रिया (reflex-action) कहते हैं।

प्रतिवर्ती क्रिया—ऊपर बताई बातों से यह समझ में आ गया होगा कि प्रतिवर्ती क्रिया (reflex-action) क्या है, पर इसे और भी समझाया जायगा। प्रतिवर्ती क्रिया उस क्रिया या गति को कहते हैं, जो बिना मस्तिष्क के जाने हुए, बिना हमारी इच्छा के या बिना हमारे जाने हुए केवल संवेदी तन्त्रिका की उत्तेजना से होती है। परवर्ती क्रियाओं में मस्तिष्क का कोई हाथ नहीं होता है। रीढ़-रज्जु में जो केन्द्र हैं वे नीचे दर्जे के केन्द्र कहलाते हैं, क्योंकि ये मस्तिष्क के ऊँचे दर्जे के केन्द्रों से नियंत्रित होते हैं और इनमें इच्छानुसार गति पैदा कराने की शक्ति नहीं होती। ये मशीन की तरह काम करते हैं।

प्रतिवर्ती क्रिया के कई उदाहरण दैनिक जीवन के कामों में मिलते हैं। यदि कोई अंधेरे से उजाले में जाय तो आंख की पुतली सिकुड़कर छोटी हो जाती है। इसी तरह अगर कोई उजाले से अंधेरे में जाय तो पुतली फैलकर चौड़ी हो जाती हैं। इसी तरह पुतली के आकार में जो परिवर्तन होता

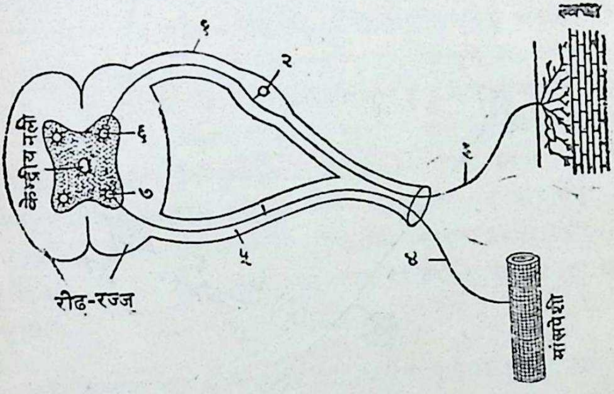

चित्र ८६—परावर्तित चक्र

१—पृष्ठीय शाखा, २—पृष्ठीय मूल गुच्छिका, ३—संवेदी नाड़ी, ४—चालक नाड़ी, ५—अधर शाखा, ६—पृष्ठीय शृङ्ग, ७—अधर शृङ्ग, ।

है, उसका ज्ञान आदमी को बिल्कुल नहीं होता। यदि हमारी आंख पर कोई छोटी-सी चीज अचानक गिरती है तो पलक तुरन्त ही झपक जाती है। पलक के झपकने में हमारी इच्छा का कुछ भी हाथ नहीं रहता। पलक इतनी जल्दी झपकती है कि हमें सोचने विचारने या इच्छा करने का समय ही नहीं मिलता। यदि मैं सोया रहूँ और कोई मेरा तलवा खुजलाये तो उस स्थिति में भी अंगूठे से अंगुलियों में या तलवे में किसी न किसी तरह की गति हो जाती है। इसी तरह अच्छे भोजन को देखकर अपने आप मुंह में लार निकल पड़ती है और आमाशय में भी आमाशय रस बनने लगता है। इन सब उदाहरणों से यह

साफ समझ में आता है कि जो क्रिया किसी दूसरी क्रिया के उत्तर में बिना हमारे जाने या बिना हमारी इच्छा के होती है वह प्रतिवर्ती क्रिया है।

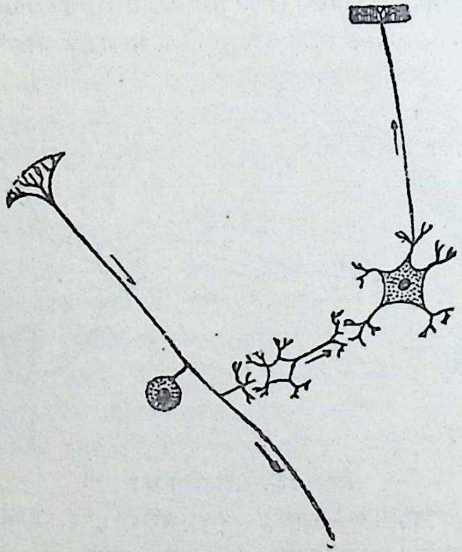

चित्र ८७—परावर्तित क्रिया—ऊपर मस्तिष्क को जाने वाली स्नायु

प्रतिवर्ती क्रिया रीढ़-रज्जु के आदेश से ही सम्पादित हो जाती है। उसमें मस्तिष्क का हाथ नहीं रहता। किन्तु यदि रीढ़-रज्जु का सम्बन्ध मस्तिष्क से बना हुआ है (चोट इत्यदि के कारण नष्ट नहीं हुआ है) तो केन्द्रगामी तार, जो अंगों से संवेदन के समाचार को रीढ़-रज्जु तक लाता है, उस समाचार को मस्तिष्क तक भेज देता है, परन्तु मस्तिष्क के आदेश के लिए क्या होना चाहिए या क्या न होना चाहिए रुका नहीं रहता। रीढ़-रज्जु ही आवश्यक क्रिया के लिए आज्ञा दे देती है और वह क्रिया हो भी जाती है। पर यदि मस्तिष्क चाहे तो वह रीढ़-रज्जु की आज्ञा को रद्द कर सकता है या उस

सम्वन्ध में अन्य त्रियाओं के लिए जाने की आज्ञा दे सकता है। मान लो, किसी लड़के ने जलते कोयले पर अँगुली रखी और उसे कष्ट हुआ। अँगुली की त्वचा को संवेदी तन्त्रिकाओं ने, जो केन्द्रगामी तन्त्रिकाएं हैं, इस कष्ट की सूचना रीढ़-रज्जु में पहुँचाई।। अब रीढ-रज्जु का सम्बन्ध मस्तिष्क से बना हुआ है (जो विना चोट-चपेट या खराबी के साधारणतः बना ही रहता है) तो यह सूचना मस्तिष्क को चली जाती है। ऊपर कहे कष्ट की सूचना रीढ़-रज्जु में प्रवेश करने में इसे केन्द्रगामी तन्त्रिका के कई भाग हो जाते हैं। एक छोटे भाग का रीढ़-रज्जु में ही अन्त हो जाता है। बड़ा भाग मस्तिष्क तक चला जाता है। मस्तिष्क तक सूचना पहुँचने में कुछ देर लगती हैं। उससे पहले ही रीढ़-रज्जु अधरमूल (ventral root) वाली चालक सूत्रों द्वारा उचित आज्ञा भेज देती है जिससे पेशियों का संकुचन होता है और अँगुली या हाथ आग के पास से हट जाता है। यदि मस्तिष्क तक सूचना पहुंचने और उसकी आज्ञा आने तक अँगुली उसी स्थान पर रुकी रहती तो हाथ अधिक जल जाता।

ऊपर बतलाया गया हैं कि अधर शृंग चालक है और पृष्ठीय शृंग संवेदी है। अतः इस कष्ट की सूचना पृष्ठीय शृंग द्वारा रीढ़-रज्जु को पहुँचती है। पृष्ठीय शृंग से घूमकर यह अधर शृंग में आ जाती है और चालक सूत्रों द्वारा पेशियों को आज्ञा पहुँच जाती है। पृष्ठीय शृंग से अधर तक सूचना पहुँचने के लिए (चित्र ८५ में ६ से ७ तक जाने के लिए) इनके मध्य में संयोजक तन्त्रिका कोशिकाएँ होती हैं। इस प्रकार रीढ़-रज्जु तक अनुभव पहुँचने तथा वहां से आज्ञा के रूप में मांस-पेशियों तक लौटने के लिए एक पूरा चक्र बन जाता है जिसे प्रतिवर्ती चाप (reflex-arc) कहते हैं।

इन प्रतिवर्ती क्रिया में रीढ़-रज्जु उसी तरह काम करती है जिस तरह किसी आवश्यक अवसर पर एक छोटा-सा अफसर बड़े के रहने पर या दूर होने के कारण आवश्यक आज्ञा दे देता है। अब आग छूने के कारण जो कष्ट हुआ है, उस पर मस्तिष्क भी विचार करता है। यदि वह आवश्यक

समझता है तो और क्रियाओं को आज्ञा देता हैं, जिससे लड़का चिल्ला उठता है या वहाँ से भाग जाता है। हो सकता है कि मस्तिष्क रीढ़-रज्जु की आज्ञा रद्द कर दे और लड़का प्रयोग की दृष्टि से (यह जानने के लिए कि जलने का कष्ट ठीक कैसा होता है) अपनी अँगुली को अंगारे के पास ले जाय। प्रतिवर्ती क्रिया का मुख्य उद्देश्य प्रायः शरीर की रक्षा होती है। कदाचित् इस प्रतिवर्ती क्रिया के कारण कई बार तुम्हारा जीवन बच गया होगा।

जीवन की कई क्रियाएँ जैसे टहलना इत्यादि, जो छुटपन में सीखते समय इच्छा के बल से होती है, आगे चल कर प्रतिवर्ती क्रियाएँ हो जाती हैं। उनमें मस्तिष्क लगाना नहीं पड़ता। । साइकिल चलाना सीखते समय की क्रिया इच्छा के वश की क्रिया है, पर सीख लेने पर वह भी प्रतिवर्ती क्रिया हो जाती है।

स्वाधीन तन्त्रिका-तन्त्र

जैसा कि ऊपर बताया गया है, मेरुदण्ड के दोनों तरफ दो डोरियाँ पड़ी होती हैं। प्रत्येक डोरी में थोड़ी-थोड़ी दूर पर गाँठों जैसा उभार होते हैं। इन गाँठों के कारण डोरी एक माला (या जंजीर) की तरह दिखाई देती है जिसमें गाँठें दाने की तरह मालूम होती हैं। गाँठें (गुच्छिकाएँ, ganglion) कुछ-कुछ पिंगल वर्णन की होती हैं, इसी से तन्त्रिका-तन्त्र के इस भाग को पिंगल तन्त्रिका तन्त्र भी कहते हैं।

गुच्छिकाओं से शाखाएँ निकलती हैं, जिसमें से कुछ रीढ़-रज्जु के निकली तन्त्रिकाओं की शाखाओं से मिलती हैं और कुछ भीतरी अंगों (हृदय, आमाशय, इत्यादि) को और रुधिरवाहिनी में जाती हैं। हृदय, फुप्फुस, आमाशय, आंत्र, मूत्र की थैली, पेट के अन्दर के दूसरे अंगों की अनैच्छिक गतियाँ इसी तंत्र की प्रेरणा से होती हैं। । मेडूला ऑबलांगेटा में जो साँस लेने और रुधिर परिसंचरण इत्यादि के केन्द्र हैं उनसे भी यह स्वाधीन तन्त्रिका-तन्त्र वेगस तन्त्रिका (vagus nerves) से सम्बन्धित है। कारण यह है कि श्वसन और पाचन तंत्र के अंगों को स्वाधीन तन्त्रिका-तन्त्र से भी तन्त्रिकाएं गई हुई

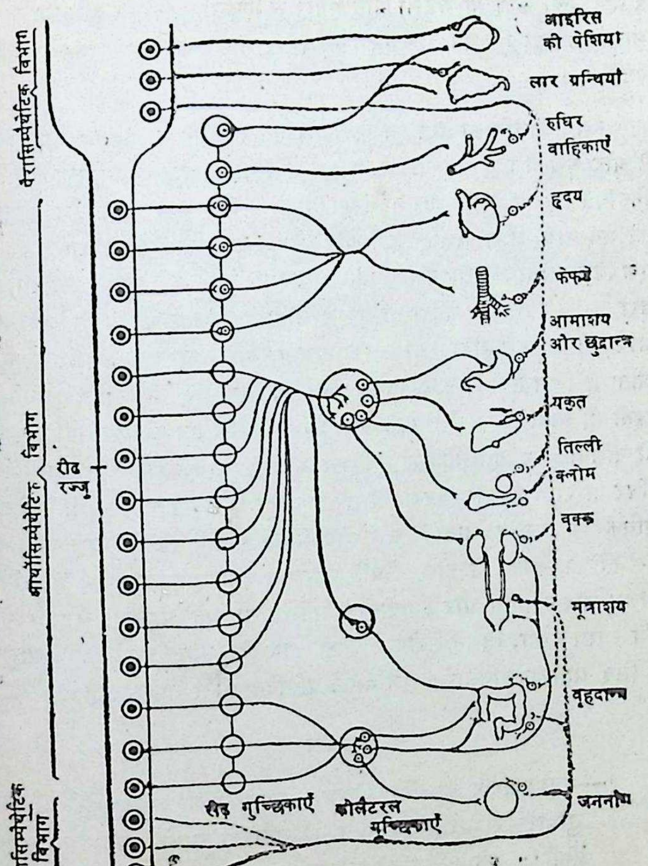

चित्र ८८—अनुकंपी तन्त्रिका-तन्त्र
(Sympathetic Nervous System)

हैं और इन्हीं अंगों को मेडूला ऑवलांगेटा से निकली हुई वैगस तन्त्रिका की भी शाखाएँ गई हुई हैं। अंगों पर इन दोनों प्रकार की तन्त्रिकाओं के विपरीत प्रभाव पड़ते हैं।

स्वाधीन तन्त्रिका-तन्त्र का शरीर से भीतरी अंगों पर बहुत प्रभाव पड़ता है और कुछ अंश में यह पाचन, रुधिर-परिसंचरण और श्वसन-क्रिया को भी नियंत्रित करता है। कुछ परिस्थितियों में, जैसे; डर, खुशी, शोक इत्यादि की अवस्थाओं में आमाशय, हृदय और फुप्फुस पर स्वाधीन-तन्त्रिका-तन्त्र द्वारा एक विशेष प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए किसी ऐसे आदमी को लो, जो डरा हुआ है। डर से चेहरा पीला पड़ जाता है। होता यह है कि जब कोई भाव मन से उदय होता है तो उसका प्रभाव स्वाधीन तन्त्रिका-तन्त्र तक पहुँच जाता है। इस तन्त्र से सूत्र (तार) चेहरे की दीवार में, जहाँ रुधिर की नलियाँ रहती हैं, चारों तरफ फैले रहते हैं। जब (जैसे कि डर की अवस्था में) रुधिर की नलियों पर इन तन्त्रिका-सूत्रों का अधिक प्रभाव पड़ता है तो उनमें कम रुधिर आ पाता है और चेहरा पीला पड़ जाता है। इसी तरह खुशी से चेहरा अधिक चमकीला हो जाता है और शोक में डूबे आदमी की भूख मारी जाती है।

तन्त्रिका-तन्त्र को ठीक स्थिति में रखना हमारा परम कर्तव्य है। उचित भोजन और व्यायाम और इन दोनों से अधिक, समुचित आराम से तन्त्रिका-तन्त्र स्वस्थ रहता, जिससे शरीर के सभी काम ठीक-ठीक चलते हैं। आराम के लिए आवश्यकतानुसार ६ से ८ घंटे प्रतिदिन सोना आवश्यक है।

प्रश्न

१——मनुष्य शरीर के तन्त्रिका-तन्त्र की बनावट का वर्णन करो। यदि तुम्हारे पैर के तलुवे में काँटा गड़ जाय तो तुमको तुरन्त पीड़ा मालूम होगी। इस पीड़ा की संवेदना तुम्हारे मस्तिष्क तक किस प्रकार पहुँचती है? उसका मार्ग चित्र द्वारा स्पष्ट करो।

(ब० हि० यू० १९४२)

२—मध्यस्थ तन्त्रिका की बनावट का वर्णन करो। उत्तर चित्र द्वारा स्पष्ट करो (उ० प्र० १९५२)

३—मस्तिष्कीय नाड़ियों (cranial nerves) के नाम लिखो तथा उनका वर्णन करो। (राज० १९४४)

४—सांवेदनिक नाड़ियों का वर्णन करो। (उ० प्र० १९५०)

५—मस्तिष्क की बनावट क्या है ? तन्त्रिका-सूत्र के विशेष भेद क्या हैं ? उनका वर्णन करो। (उ० प्र० १९४२)

६—निम्नलिखित कार्यों में नाड़ी-तन्त्र का कौन-सा भाग काम करता है? संक्षेप में वर्णन करो :—

(क) गरम वस्तु पर हाथ रखने पर हटाने का कार्य।

(ख) किसी के बुलाने पर सुनने का कार्य।

(ग) आनन्द का समाचार सुनने पर प्रसन्नता का कार्य।

अध्याय ९

ज्ञानेन्द्रियाँ तथा ग्रंथियाँ

संवेदन
(SENSATION)

संवेदन या किसी-किसी अर्थ में चेतना तन्त्रिका-तन्त्र के ही कारण होता है। तन्त्रिका-तन्त्र के द्वारा हम वाहरी दुनिया का ज्ञान संवेदन के रूप में प्राप्त करते हैं। संवेदी तन्त्रिकाओं (sensory nerves) की क्रिया या प्रतिक्रिया से जिस ज्ञान का बोध होता है, उसे चेतना या संवेदना कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई धड़ाके का शब्द होता है तो कानों के द्वारा एकाएक एक विशेष भाव उत्पन्न होता है। थोड़ी देर के लिए हम एक भीषण शब्द सुनने का अनुभव करते हैं। इसी तरह और संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। यदि हमारे शरीर के किसी भाग में सुई छुआई जाय तो हमें उसी समय उस स्थान पर किए गए इस विशेष कार्य का ज्ञान होता है और बिना इच्छा किए ही हमारा हाथ उस स्थान पर पहुँच जाता है। इस तरह सुई के स्पर्श का यह ज्ञान हमें संवेदन (sensation) द्वारा हुआ। जिस ज्ञानेन्द्रिय के कारण संवेदन उत्पन्न होता है, उसका नामकरण उसी इंद्रिय के आधार पर होता है। इस तरह संवेदन (sensation) उत्पन्न करने वाली इंद्रियों की संख्या परिमित है। इन इंद्रियों द्वारा हमें किस प्रकार का ज्ञान होता ? यह ज्ञान हमें स्पर्श का, देखने का, सुनने का, सूंघने का या स्वाद का हो सकता है। जिन इंद्रियों द्वारा इनका ज्ञान होता है उन्हें ज्ञानेन्द्रियाँ (sense organs) कहते हैं। इस प्रकार मनुष्य के शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रिया (sense organs) हुइं—(१) स्पर्शेन्द्रिय (sense of touch,) (२) स्वादेन्द्रिय (sense of taste), (३) घ्राणेन्द्रिय (sense of smell), (४) दृश्येन्द्रिय (sense of sight), (५) श्रवणेन्द्रिय (sense of hearing) पीड़ा और तापमान (pain and temperature)

का अनुभव करने वाली इंद्रियाँ भी इन्हीं पाँचों के अन्तर्गत हैं, पर कुछ लोग इन्हें अलग मानते हैं। इनके अतिरिक्त भी कई और साधारण संवेदनायें होती हैं। सारे शरीर में फैले हुए तन्त्रिका-जाल पर जब किसी भीतरी अंग या रुधिर का प्रभाव पड़ता है तब और भी कई अनुभव होते हैं। भूख, थकावट कमजोरी और मांस-पेशियों का ज्ञान इसी तरह के अनुभव हैं। ऐसा अनुभव किसी विशेष अंग में हो सकता है; जैसे भूख पेट में मालूम होती है, पर उसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि संवेदी तन्त्रिकाओं के उत्तेजित होने से जो अनुभव मस्तिष्क में होता है उसे संवेदन (sensation) कहते हैं। जो विशेष अंग इस उत्तेजना से प्रभावित होकर उसे एक तन्त्रिका-सम्बन्धी प्रेरणा में बदल देता है ज्ञानेन्द्रिय (sense organ) कहते हैं। ये इन्द्रियाँ, जैसा कि ऊपर बताया गया है, पाँच हैं और शरीर के भीतर भिन्न-भिन्न भागों में स्थित हैं। ये विशेष प्रकार की शक्तियों द्वारा उत्तेजित होती हैं, जैसे, कान शब्द लहरों से प्रभावित होता है और आँख प्रकाश की किरणों से।

सांवेदनिक तन्त्रिका का प्रभाव, चाहे वह जिस कारण से उत्तेजित हो, उस इन्द्रिय पर अवश्य पड़ता है, जिससे वह सम्बन्धित है।

(१) स्पर्शेन्द्रिय (स्पर्श सम्बन्धी ज्ञान)
(SENSE OF TOUCH)

स्पर्शेन्द्रिय मानो सारे शरीर में फैली हुई है। त्वचा में और मुंह, नासिका इत्यादि की श्लेष्मा-झिल्ली में संवेदी तन्त्रिका के जो ऊतक फैले हुए हैं उन्हीं की उत्तेजना से स्पर्श-ज्ञान होता है। जिह्वा, अँगुलियों और नासिका की नोकों पर और निचले होठ में स्पर्श का ज्ञान बड़ा तीव्र होता है। बात यह है कि स्पर्श-ज्ञान स्पर्श कणिका (touch corpuscles) से होता है। ये स्पर्श कणिका कोशिका से बने होते हैं। इनमें सांवेदनिक तन्त्रिकाओं की शाखाएँ समाप्त होती हैं। जिह्वा, अँगुली, नासिका इत्यादि की नोकों में ये स्पर्श कणिकाएँ बहुतायत से होती हैं।

तापमान श्रौर पीड़ा (Temperature and Pain)--तापमान के अनुभव के लिए त्वचा में दूसरी तरह के कण हैं। इन्हीं की उत्तेजना से गर्मी श्रौर पीड़ा का बोध होता है। ये कण बाह्यत्वचा या अधिचर्म (epidermis) के नीचे स्थित हैं श्रौर स्पर्श कणिका से भिन्न हैं। तापमान में सबसे अधिक प्रभावित होने वाले अंग जिह्वा की नोक, पलकें, गाल, होठ श्रौर हथेलियां हैं। त्वचा से तापमान का सही ज्ञान नहीं होता, क्योंकि अगर हम थोड़ी देर के लिए अपना एक हाथ ठंडे पानी में रखें श्रौर दूसरा हाथ गर्म पानी में फिर दोनों हाथ को साधारण गर्म पानी में रखें तो ठंडे पानी वाले हाथ को पानी गर्म मालूम होगा श्रौर गर्म पानी वाले हाथ को पानी ठंडा मालूम होगा। इसलिए त्वचा तापमान का ठीक अनुभव नहीं कर सकती। तापमान का बोध होना त्वचा के अन्दर की रुधिरवाहिका पर निर्भर है। यदि वाहिका रुधिर से भरी है तो गर्मी मालूम होगी श्रौर अगर उनमें रुधिर नहीं है तो ठंडी मालूम होगी।

(२) स्वादेन्द्रिय (जिह्वा श्रौर स्वाद
(SENSE OF TASTE)

जिह्वा मांस की बनी होती है। यह मुंह में रहती है श्रौर अपनी जड़ के पास श्लेष्मा-झिल्ली की एक तह के सहारे कंठ से जुड़ी रहती है। इस पर श्लेष्मा-झिल्ली चढी होती है। यह झिल्ली जिह्वा के नीचे के भाग में चिकनी है, पर ऊपर रुखड़ी है, क्योंकि ऊपर के स्तर में बहुत से छोटे-छोटे दाने होते हैं। इन दानों को पैपिला (papillae) कहते हैं। प्रत्येक दाने में एक छोटा कोशिका-समह या स्वादकोशिकाएँ (taste cells) रहती हैं। इन कोशिका-समूहों को स्वाद-कलिकाएँ (taste bud) कहते हैं। इन्हीं स्वाद-कलिकाश्रों में स्वाद की समस्त तन्त्रिकायें होती हैं। जिह्वा के समस्त तल पर ये पैपिला होते हैं। अगले भाग में ये बहुत छोटे होते हैं श्रौर जिह्वा चिकनी मालूम होती है। पिछले भाग में ये पैपिला बड़े होते हैं श्रौर खातवेष्ठित पैपिला कहलाते हैं। ये संख्या में ७ से १२ तक होते हैं श्रौर जिह्वा पर अंग्रेजी के V के उलटे आकार के पाए जाते हैं, चौड़ा मुंह बाहर की श्रोर श्रौर कोण कंठ की श्रोर रहता है।

प्रत्येक पैंपिला के चारों ओर खाई-सी होती है। जिह्वा के बगल में ये पैंपिला छोटे कुकुरमुत्ता के आकार के होते हैं और छत्रिक पैंपिला कहलाते हैं। अगले भाव पर छोटे लम्बोतरे होते हैं ये सूत्र-पैंपिला कहलाते हैं।

जिह्वा में तीन तरह की तन्त्रिकाओं का प्रवन्ध है। ये तन्त्रिकाएँ, जैसा कि तन्त्रिका-तन्त्र के वर्णन में बताया गया है, कपाल-तन्त्रिकाओं में से पांचवीं

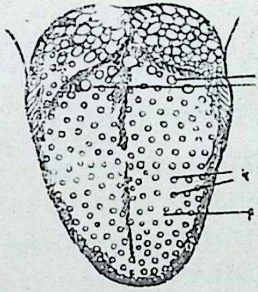

चित्र ८९—जिह्वा का भाग जो पैंपिला के कारण खड़ा है।
किनारे के निकले भाग तन्त्रिकाएँ हैं।

नवीं और बारहवीं हैं। पांचवीं और नवीं सांवेदनिक तन्त्रिकाएँ हैं। पांचवीं संवेदी और प्रेरक या चालक (sensory and motor) दोनों रूप रखती हैं। बारहवीं तन्त्रिका प्रेरक या चालक है और भोजन करने और बोलने में जिह्वा की गति को नियंत्रित करती है।

स्वाद तभी जाना जा सकता है जब खाई जाने वाली वस्तु घुली हुई दशा में हो। ये वस्तुएँ स्वाद-कलिकाओं को उत्तेजित करती हैं और उत्तेजना प्रेरणा में बदल कर तन्त्रिकासूत्रों द्वारा मस्तिष्क में पहुँचाती हैं। इस प्रकार मस्तिष्क के स्वाद केन्द्रों (taste centres) द्वारा स्वाद का पता चलता है। स्वाद के लिए यह आवश्यक है कि खाई जाने वाली चीज या तो घुली हो या लार

में घुल जाय। यदि जिह्वा को अच्छी तरह पोंछकर उस पर नमक रखा जाय तो तब तक कोई स्वाद न मालूम होगा जब तक कि नमक घुल न जाय।

स्वाद चार प्रकार के होते हैं—कड़वा, मीठा, नमकीन और खट्टा। जिह्वा की नोक मीठी चीज के और जिह्वा का पिछला भाग कड़वी चीजों के स्वाद का शीघ्र अनुभव करते हैं। बगल के पैपिला खट्टे और नमकीन स्वाद का अनुभव शीघ्र करते हैं। जिह्वा के बीच में स्वाद का अनुभव करीब-करीब नहीं होता है। स्वाद के साथ गन्ध का भी सम्बन्ध है। खाते समय वस्तु की सुगन्ध भी मिलती रहती है, जिससे हम उस वस्तु को बड़ी रुचि से खाते हैं। इसी से जब हम कोई बुरी गन्ध वाली दवा पीते हैं तो अँगुलियों से नाक बन्द कर लेते हैं और इसी से जब सर्दी-जुकाम होता है तो स्वाद का पता नहीं चलता।

(३) घ्राणेन्द्रिय (नासिका और गन्ध)

(SENSE OF SMELL)

नासिका से गन्ध मालूम होती है। नासिका के नासाद्वार में श्लेष्मा-झिल्ली रहती है। इनमें तन्त्रिका-सूत्र और रुधिर की अनेक पतली-पतली वाहिनियाँ

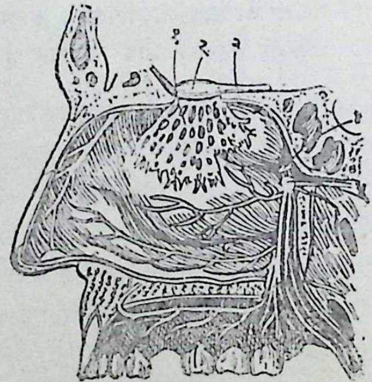

चित्र ९०—नासिका का भीतरी दृश्य

बहुतायत से रहती हैं। नासाद्वार के ऊपरी भाग में सूंघने की तन्त्रिका (पतली मस्तिष्क-तन्त्रिका) होती है और नासिका के निचले भाग से श्वसन-क्रिया होती है। इस भाग से सूंघने की क्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं है। साधारणतः साँस लेते समय हमें किसी प्रकार की गन्ध नहीं मिलती। यदि हमें गन्ध मालूम करनी होती है तो हम जोर-जोर से हवा खींचते हैं, जिससे नासिका में सूंघने की तन्त्रिका पर प्रभाव पड़ता है और हमें गन्ध मिलती है।

घ्राण-तन्त्रिका (nerves of smell) पर माप के कण पहुँच कर घ्राण-कोशिकाओं पर एक प्रकार का विशेष प्रभाव डालते हैं। घ्राण-तन्त्रिकाओं द्वारा यह प्रभाव मस्तिष्क के घ्राण केन्द्रों (smell centres) में पहुँचता है और तब हमें गन्ध का ज्ञान होता है।

जुकाम हो जाने पर हमें गन्ध का कोई ज्ञान नहीं रहता; क्योंकि श्लेष्मा झिल्ली फूल जाती है और हवा को नासिका के ऊपरी भाग तक पहुँचने नहीं देती है। इसलिए हमें जुकाम में गन्ध का अनुभव नहीं होता।

(४) दृश्येन्द्रिय (नेत्र और देखना)
(SENSE OF SIGHT)

नेत्र-गोलक (Eyeballs) की रक्षा—आँखें देखने की इन्द्रियाँ हैं, जो नासिका की दाहिनी ओर बाईं ओर के दो गड्ढों में रहती हैं। प्रत्येक आँख एक छोटी गेंद की तरह गोल है और दृक्-तन्त्रिका (optic nerves) द्वारा उसका सम्बन्ध मस्तिष्क से रहता है। नेत्र-गोलकों की रक्षा पलकों (eye-lids) द्वारा होती है। पलकें चमड़े और माँसपेशियों से मिलकर इस प्रकार बनी हैं कि वे घूम-फिर सकती हैं। पलक का भीतरी भाग एक पतली झिल्ली द्वारा ढँका रहता है उसको नेत्र-श्लेष्मला (conjunctiva कहते हैं। इनकी छाया नेत्र-गोलकों पर पड़ती है। पलकों के किनारों में बाल होते हैं। इन्हें पक्ष्म (eye-lashes) कहते हैं। मांस-पेशियों के सिकुड़ने से पलकें बन्द

होती हैं और खुलती हैं। पलकों को ऊपर उठाने के लिए ऊपरी पलक में मांस-पेशी रहती है।

नेत्र-श्लेष्मला (conjunctiva) खारे पानी में सदा भीगी रहती है। यह पानी अश्रुग्रंथि (lachrymal glands) से निकला करता है। ग्रंथियाँ आँख के गड्ढों के ऊपरी और बाहरी भाग में होती हैं। आँसू नेत्र-श्लेष्मला और आँखों को धोकर आँख के कोने में से होकर भीतर ही भीतर नासिका में चला जाता है। जब कभी आँसू अधिक मात्रा में बहता है, जैसे आँख में धुआँ लगने के कारण या किसी उद्वेग से, तो वह नासिका को नलियों में न जाकर बाहर बहने लगता है।

नेत्र-गोलक की गति—नेत्र-गोलक मांस-पेशियों के सहारे घूम सकते हैं। ये मांस-पेशियाँ नेत्र-गोलक के ऊपरी स्तर में होती हैं। इनकी संख्या छः है—

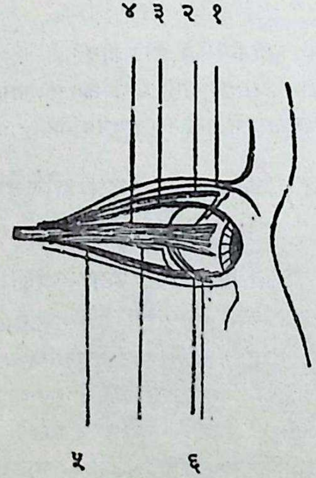

चित्र ९१—नेत्र-गोलक मांस-पेशियों के द्वारा घूमते हैं।
१, २, ३, ४, ५—भिन्न-भिन्न तिरछी और सीधी पेशियाँ हैं, ६—दृक् तन्त्रिका है।

चार सीधी-सीधी और दो तिरछी। सीधी पेशियां इस तरह हैं—एक ऊपर, एक नीचे, एक अन्दर के कोने की ओर, एक बाहर के कोने की ओर। इनके सिकुड़ने से नेत्र-गोलक ऊपर, नीचे, भीतर और बाहर की ओर घूमते हैं। तिरछी मांस-पेशियों की सहायता से आंख तिरछी घूमती है। तिरछी पेशियों में एक ऊपर है और एक नीचे। ये मांस-पेशियाँ कभी एक साथ मिलकर और कभी अलग-अलग नेत्र-गोलक को हर दिशा में घूमने में सहायता देती है। साधारणतः दोनों आँखें साथ-साथ घूमती हैं। इस प्रकार नेत्र-गोलकों की गति में असमानता नहीं पाई जाती। जब कोई निकट की वस्तु देखते हैं तब दोनों आंखें भीतर की ओर होती हैं। यदि मांस-पेशियों में कोई दोष आ जाता है तो आंखें ऐंची हो जाती हैं। तब यह पता नहीं चलता कि आंख दाहिनी ओर देख रही है या बाईं ओर। ऐसी दशा में कभी-कभी वस्तुएँ दो दिखाई पड़ती हैं।

नेत्र-गोलक (eye-ball)—नेत्र-गोलक ठीक गेंद की तरह गोल नहीं होते। इनकी लम्बाई एक कोने से दूसरे कोने तक ढाई-ढाई सेमी होती है। नेत्र गोलक का अगला भाग कुछ उभरा हुआ होता है। इसको कॉर्निया (cornea) कहते हैं।

नेत्र-गोलक की दीवार में तीन तहें होती हैं। बाहर से भीतर की ओर इन तहों के नाम इस प्रकार हैं :—

(१) दृढ़पटल और कॉर्निया (sclerotic and cornea),

(२) रक्तकपटल और परितारिका-आइरिस (choroid and iris),

(३) दृष्टिपटल या रेटीना (retina)।

(१) दृढ़पटल—एक रेशेदार मोटी तह है। नेत्र-गोलक का पिछला ५/६ भाग इस आवरण का बना है। अगला १/६ भाग भी इसी का बना है, परन्तु इसको कॉर्निया कहते हैं अपारदर्शी दृढ़पटल पारदर्शी (इस पार से उस पार दिखाने वाली) कॉर्निया से मिला होता है। जब हम किसी मनुष्य की आंख

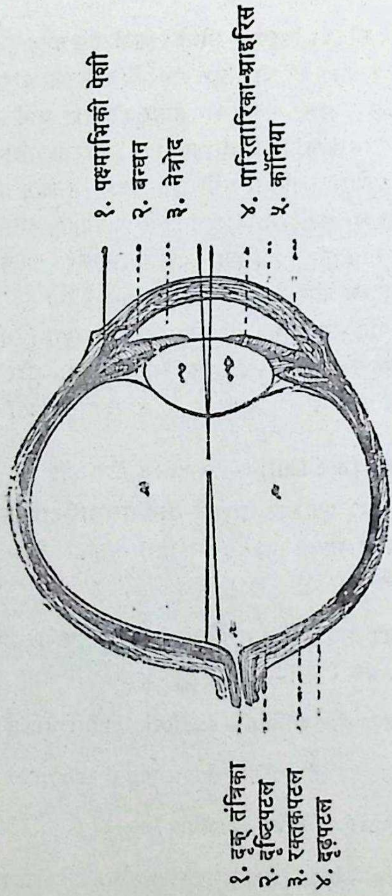

चित्र ६२—नेत्र के अन्दर का दृश्य, १—अभिनेत्र लेन्स, २—काचाभद्रव, ३—दृक् तन्त्रिका, मिलने का स्थान, यहीं पर काला धब्बा होता है। इनकी दूसरी तरफ दोनों लाइनों के बीच पीतबिन्दु रहता है।

को निकट से देखते हैं तो दृढ़पटल अपारदर्शी देख पड़ता हैं । हम दृढ़पटल को कॉर्निया के चारों ओर देखते है । कॉर्निया का रंग भूरा या काला दिखाई पड़ता है । पर वास्तव में कॉर्निया पारदर्शी है । इसका काला या भूरा रंग परितारिका आइरिस (iris) कॉर्निया के पारदर्शी होने के कारण दिखाई पड़ता है, दृढ़पटल के पीछे दृक्-तन्त्रिका (optic nerve) लगी होती है । दृढ़पटल के बाहरी भाग में कई छोटी मांस-पेशियाँ लगी रहती हैं, जो नेत्र-गोलक की गति में सहायता देती हैं ।

(२) रक्तकपटल (choroid) काली-भूरी झिल्ली है, जो दृढ़पटल के नीचे और उससे बिल्कुल मिली होती है । इसमें जोड़ने वाले ऊतक रहते हैं, जिनके अन्दर रुधिर की पतली नलियाँ और काला रंग रखने वाली कोशिकायें होती हैं । यह एक काले पर्दे का-सा काम करता है। रक्तकपटल का काम है आँख की कोठरी को अन्धकारमय बनाये रखना जिससे अन्दर आने वाले प्रकाश द्वारा चमक पैदा न हो। दृढ़पटल की तरह इसमें भी दृक्-तन्त्रिका पीछे से मिलती है । सामने की ओर यह पटल अन्दर रहने वाले परितारिका-आइरिस (iris) नामक परदे से मिल जाता है । परितारिका-आइरिस एक गोलाकार परदा है जो कॉर्निया के कुछ पीछे होता है । लेकिन पारितारिका-आइरिस से मिलने के कुछ पहले रक्तकपटल के भीतरी भाग में कई उभरी तहें होती हैं और रक्तक-पटल की बाहरी सतह पर घेराकार शक्ल की मांस-पेशी होती है, जिसे पक्ष्माभिकी पेशी (ciliary muscle) कहते हैं । यह दृढ़पटल और कॉर्निया के मिलने के स्थान पर भीतरी भाग से निकल कर पीछे की ओर जाती है और रक्तकपटल और परितारिका-आइरिस के मिलने के स्थान की ऊपरी सतह में मिल जाती है । इस प्रकार जब यह सिकुड़ती है तो रक्तकपटल आगे की ओर बढ़ता है । इसी से ऊपर बताई उभरी तहें, जो कि आँख के अभिनेत्र लेन्स[१] (lens) के ऊपरी खोल (सम्पुटिका, capsule) में मिली होती हैं, प्रभावित हो उठती हैं।

---

१. परितारिका आइरिस के पीछे आँख का ताल रहता है । इसका वही काम है, जो फोटोग्राफी के केमरा लेन्स (lens) का काम होता है । साधारणतः

इसका फल यह होता है कि अभिनेत्र लेन्स बाहर की ओर उत्तल (convex) हो जाता है।

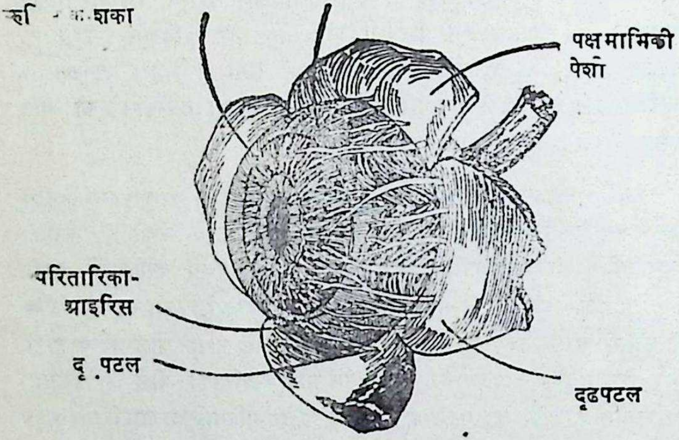

चित्र ९३

परितारिका-आइरिस (iris) एक घेरेदार परदा है, रक्तकपटल का अगला भाग है और जो, जैसा कि ऊपर बताया गया है, पारदर्शी कॉनिया में से दिखाई पड़ता है। इसके बीच में एक गोलाकार छेद रहता है जिसे **पुतली या तारा**

लेन्स साफ होता है, पर बुढ़ापे में या बीमारी से धुंधला हो जाता है और तब या तो कम दिखाई देता है या बिलकुल ही नहीं दिखाई देता। लेन्स मसूर के दाने की तरह गोल होता है। इसकी दोनों पीठें उभरी, (उत्तल, convex) रहती हैं। अभिनेत्र लेन्स के ऊपर एक पतला खोल चढ़ा रहता है, जिसे सम्पुटिका (capsule) कहते हैं। अभिनेत्र लेन्स एक बन्धन द्वारा परितारिका-आइरिस के पीछे के भाग में बँधा रहता है (चित्र नं० ९२ देखो)।

(pupil) कहते हैं। परितारिका-ग्राइरिस में रेशेदार मांस-पेशियाँ होतीं हैं। इनमें से कुछ पुतली के चारों ग्रोर गोलाई में ग्रौर कुछ बीच से निकल कर पहिये के ग्रारे की तरह फैली होती हैं। जो मांस-पेशियाँ गोलाई में होती हैं वे सिकुड़ने पर पुतली को छोटी कर देती है ग्रौर जो ग्रारे की तरह होती हैं वे सिकुड़ कर पुतली को फला देती हैं। परितारिका-ग्राइरिस इस प्रकार ग्राँख में ग्राने वाले प्रकाश की मात्रा को नियंत्रित करता है। दोनों तरह की पेशियाँ स्वाधीन हैं ग्रौर उनकी क्रिया प्रतिवर्ती क्रिया (reflex action) है। जब ग्राँखें बन्द रहती हैं या प्रकाश से हटी रहती हैं तो पुतली फैलती हैं ग्रौर जब ग्राँखें खुली या प्रकाश की तरफ रहती हैं तों पुतली सिकुड़ती दीख पड़ती हैं। ग्राँखों का रंग परितारिका-ग्राइरिस ही के कारण होता है। भिन्न-भिन्न जाति ग्रौर मनुष्यों की ग्राँखें भिन्न-भिन्न रंग की होती हैं। यह भिन्नता परितारिका-ग्राइरिस के कारण होती है। परितारिका-ग्राइरिस के ऊतकों में भूरे-काले रंग की कोषिकाएँ होती हैं। परितारिका-ग्राइरिस के पीछे का भाग रक्तकपटल की भाँति प्रकाश-हीन होता है।

(३) दृष्टिपटल या रेटीना (retina) रक्तकपटल के नीचे ग्रौर उससे हटकर लगा होता है। दृष्टिपटल दृक्-तन्त्रिका के ग्रागे का बढ़ा हुग्रा भाग है। यह नेत्र-गोलक के भीतरी भाग के $\frac{2}{3}$ हिस्से में फैला हुग्रा है। देखने का काम इसी भाग का है। यह नाड़ी कोशिकाग्रों का बना हुग्रा है। इन कोशिकाग्रों का ग्राकार मस्तिष्क की कोशिकाग्रों से मिलता-जुलता है। जहाँ पर दृक्-तन्त्रिका प्रवेश करती है उस स्थान को ग्रन्ध बिन्दु (blind spot)) कहते हैं। क्योंकि प्रकाश का वहाँ कोई प्रभाव नहीं होता। दृष्टिपटल के ठीक बीच में एक गोलाकार पीला धब्बा होता है, जिसे पीत-बिन्दु (yellow spot) कहते हैं। पीत-बिन्दु पर प्रकाश का प्रभाव सबसे ग्रधिक होता है। इसीलिए इस भाग में दृष्टि का सबसे ग्रधिक ग्रनुभव होता है।

यदि दृष्टिपटल की बनावट की परीक्षा सूक्ष्मदर्शी से की जाय तो उसमें कई परत या स्तर दिखाई पड़ेंगे। इन स्तरों में से शलाकाग्रों की परत या शलाका स्तर

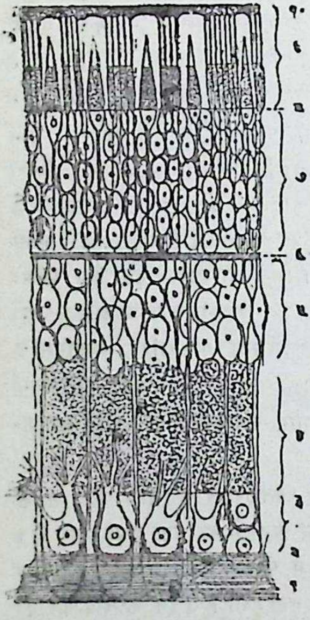

चित्र ९४—दृष्टिपटल की सूक्ष्म रचना

(layer of rods) और शंकुओं की परत (layer of cones) विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके दस स्तर होते हैं। पहला स्तर अभिनेत्र लेन्स की ओर रहता है और अन्तिम स्तर दूसरी ओर रहता है। ये प्रकाश से बहुत प्रभावित होती हैं और जब बाहर की वस्तु का बिम्ब इस स्तर पर बनता है तो शलाका और शंकु उसकी सूचना ग्रहण करते हैं और उस उत्तेजना को दृक्-तन्त्रिका-सूत्रों में पहुँचाते हैं। दृष्टिपटल के भागों की दृष्टि-शक्ति इस पर निर्भर है कि किस भाग में कितने शलाका और शंकु है। अन्ध विन्दु पर ये शलाका और शंकु नहीं पाए जाते, लेकिन पीत-विन्दु पर इनकी अधिकता होती है और इसी से वहाँ देखने की शक्ति भी अधिक होती है। दृक्-तंत्रिका के सूत्र ही दृष्टि का प्रभाव मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं।

आँख के भीतरी कोष्ठ—परितारिका-आइरिस (iris) एक पर्दे की तरह आँख के भीतरी भाग को दो कोष्ठों में बाँटता है—एक तो परितारिका-आइरिस और कॉर्निया (Cornea) के बीच का भाग, जिसे आगे का कोष्ठ (अग्र-कोष्ठ, anteior chamber) कहते हैं और दूसरा आइरिस-परितारिका के पीछे और दृष्टिपटल से घिरा हुआ भाग जिसे पीछे का कोष्ठ (पश्च-कोष्ठ, posteior chamber) कहते हैं। आगे के कोष्ठ में स्वच्छ और निर्मल पानी

की तरह एक पारदर्शी पदार्थ होता है, जिसे नेत्रोद (aqueous humor) कहते हैं। पीछे के कोष्ठ में एक गाढ़ा और कुछ लसदार स्वच्छ अर्द्ध तरल द्रव भरा रहता है, जिसे काचाभ द्रव (vitreous humor) कहते हैं। परितारिका-आइरिस पीछे लगे हुए लेन्स (lens) को अपने ऊपर धारण करता है। नेत्रोद, लेन्स और काचाभ द्रव्य मिलकर आँख के भीतर एक ऐसा माध्यम बनाते हैं, जिससे कि बाहर से आता हुआ प्रकाश तिरछा होकर दृष्टिपटल (retina) पर फोकस (focus) होता है, स्वच्छ रूप से अंकित होता है और हम अच्छी तरह से देख सकते हैं।

देखना (दृष्टि)—किसी भी वस्तु को देखने से पहले यह आवश्यक है कि प्रकाश की किरणें दृष्टिपटल पर फोकस हों। जब हमारी दृष्टि किसी वस्तु पर पड़ती है तो उस वस्तु से प्रकाश की किरणें आकर हमारी आंख के लेन्स को पाकर दृष्टिपटल पर फोकस होती हैं और हम देख सकते हैं। इसमें आँख के लेन्स का बहुत महत्त्व है। हमारी आंख का लेन्स उत्तल होता है। अर्थात् बीच में यह दोनों ओर कुछ उभरा और किनारों पर पतला होता है। ऐसा लेन्स बाहर वस्तु का चित्र किसी परदे पर प्रतिबिम्बित कर सकता है। उसके समझने के लिए नीचे लिखा प्रयोग करो :—

एक मामूली आवर्धक लेन्स (magnifying lens) लो। यह कुछ उत्तल होता है। एक अंधेर कमरे में दीवाल से कुछ दूरी पर उसे लेकर दूसरी ओर एक जलती मोमबत्ती लाओ। शीशे को इस प्रकार इधर-उधर करो कि मोमबत्ती का प्रतिबिम्ब दीवाल पर स्पष्ट आ जाय। दीवाल के जिस स्थान पर प्रतिबिम्ब आ गया है उसे शीशा का फोकस (focus) कहते हैं। अब यदि मोमबत्ती शीशे के निकट लाई जाय तो दीवाल पर का प्रतिबिम्ब (image) उठ कर अरूप और धुंधला हो जायगा। इसी प्रकार यदि मोमबत्ती को शीशे से दूर ले जायें तो भी वही दशा होगी। इससे हम यह देखेंगे कि उत्तल लेन्स का स्पष्ट प्रतिबिम्ब प्रकाश के दूसरी ओर फोकस पर पड़ता है और यह फोकस के समीप होगा। अगर वस्तु दूर होगी तो यह और दूर होगा, यदि वस्तु निकट

है तो यह निकट होगा। कभी कदाचित् तुमने आवर्धक लेन्स से सूर्य का विम्ब अपने हाथ पर लिया हो। तुमने देखा होगा कि हाथ का केन्द्र कितना गर्म हो जाता है। तुम्हें जलने का अनुभव हुआ होगा। तुम उससे कागज जला सकते हो।

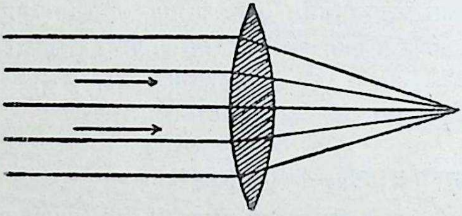

चित्र ६५

यदि साधारण शीशे के स्थान पर एक लेन्स लिया जाय तो तुम देखोगे कि मोमबत्ती को दीवार के और अधिक निकट ले जाने पर स्पष्ट बिम्ब आ सकेगा। परन्तु यदि उस लेन्स की मोटाई शीशे से भी कम है तो लेन्स को दीवार से अधिक दूर ले जाने पर उसका प्रतिबिम्ब स्पष्ट आयेगा। अर्थात् लेन्स में जितना अधिक बीच का उभार होगा उतना ही निकट फोकस होगा और जितना कम उभार होगा उतना ही दूर होगा।

एक दूसरा नियम भी तुम्हें प्रयोग से ज्ञात होगा। एक कटोरे में अपनी कलम या लकड़ी खड़ी करो और धीरे धीरे कटोरे में पानी भर दो। तुम देखोगे कि जहाँ तक पानी आ गया है उस स्थान पर लकड़ी टेढ़ी मालूम होगी अथवा कटोरे में एक पैसा डाल दो और ऐसे बैठो कि वह पैसा तुम्हें लगभग बिल्कुल ही न दिखलाई दे या आधा दिखलाई दे। परन्तु जब कटोरे में पानी डाल दोगे तो वह पैसा दिखलाई पड़ने लगेगा। इससे यह नियम ज्ञात हुआ कि लकड़ी या पैसा से जो प्रकाश की किरण पहले सीधी आती थी अब पानी में होने से तिरछी होकर आती है और तुम वस्तु को देख सकते हो। नियम है कि प्रकाश की किरण जब एक वस्तु से दूसरी वस्तु

में जाती है तो तिरछी हो जाती है। हमारे देखने में इन्हीं दोनों नियमों से काम होता है।

जब आँख में प्रकाश की किरणें आती हैं तो वे तिरछा करने वाले माध्यम (कॉर्निया, नेत्रोद, लेन्स और काचाम द्रव) से होकर दृष्टिपटल (retina) पर एक स्थान में फोकस करती हैं। जिस आँख में कोई दोष नहीं है उस आँख में ऊपर वाली क्रिया होने पर दृष्टिपटल पर प्रकाश की किरणें जाकर इकट्ठी होती हैं

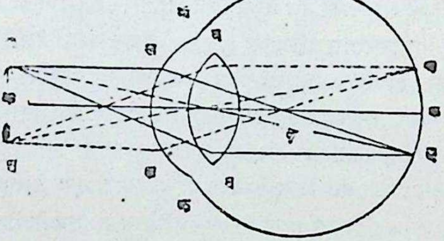

चित्र ६६--नेत्र के भीतर प्रकाश-किरणों का मार्ग

और इसका प्रभाव दृक्-तन्त्रिका (optic nerve) द्वारा मस्तिष्क को पहुँचता है। तभी हमें वस्तुओं के रंग, आकार इत्यादि का ज्ञान होता है। अगर वह वस्तु इतने निकट है या इतनी दूर है कि हमारे दृष्टिपटल पर किरण-केन्द्र नहीं बन सकता तो वह वस्तु स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ती। अपनी पुस्तक बहुत निकट से नहीं पढ़ सकोगे और न बहुत दूर से, इसका यही कारण है।

यह तो हम पढ़ चुके हैं कि माध्यमों द्वारा दृष्टिपटल पर किसी वस्तु का आकार (मूर्ति या सूरत) उल्टा पड़ता है। (देखो चित्र ६६)। परन्तु इस उल्टे आकार का अनुभव मस्तिष्क सीधा करता है। इसका सम्बन्ध मस्तिष्क की क्रिया है।

भिन्न-भिन्न दूरी पर वस्तुओं की देखने की शक्ति--संसार की वस्तुएँ आँख से भिन्न-भिन्न दूरी पर रहती हैं, कोई निकट और कोई दूर, किन्तु लेन्स और दृष्टिपटल के बीच की दूरी प्रत्येक अवस्था में एक ही रहती है। फिर भी लेन्स के उत्तल होने के कारण सब वस्तुओं का, चाहे वे दूर हों या निकट, ठीक-ठीक फोकस दृष्टिपटल पर पड़ता है। इससे जान पड़ता है कि लेन्स में ही कोई सिकुड़ने-फैलने की ऐसी शक्ति है जिससे वस्तुओं के भिन्न-भिन्न दूरी पर रहते हुए भी दृष्टिपटल के चित्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेन्स के इस ठीक करने की शक्ति को नेत्र की समंजन-क्षमता (accommodation of eye) कहते हैं। जो साधारणतः अच्छी आँख है, उसको दूर की चीजें देखने के लिए नेत्र की समंजन-क्षमता (accommodation of eye) की विशेष आवश्यकता नहीं होती है। किन्तु ७ मीटर से कम दूरी पर की वस्तुओं को देखने के लिए नेत्र की समंजन-क्षमता (accommodation of eye) की आवश्यकता पड़ती है। यह तो हम जानते हैं कि दृष्टिपटल और लेन्स के बीच की दूरी सदा एक ही रहती है इसलिए जब हम कोई निकट की वस्तु को देखते हैं तो लेन्स की उभरी पीठ उभर जाती है या यों कहिए कि लेन्स की उत्तलता (convexity) बढ़ जाती है। इस काम में ऊपर बताई पक्ष्माभिकी पेशी सहायक होती है। वे रक्तकपटल (choroid) को आगे की ओर खींचती हैं जिससे रक्तकपटल (choroid) के नीचे की उभरी तहों से लगा हुआ लेन्स का बन्धन ढीला पड़ जाता है और लेन्स आगे की ओर और भी उभर आता है। देखने की चीज जितनी समीप होगी उतनी ही पक्ष्माभिकी पेशी अधिक सिकुड़ेगी और लेन्स का पीछे का बन्धन ढीला पड़ेगा जिससे वह (लेन्स) आवश्यकतानुसार आगे को उभर आयेगा। यही कारण है कि पढ़ने या लिखने के समय बहुत समीप से देखने के कारण पक्ष्माभिकी पेशी पर बहुत जोर पड़ता है, जिससे वे कमजोर पड़ जाती हैं और दूर दृष्टि नामक रोग हो जाता है।

दोनों आँखों की समान दृष्टि--जब हम किसी वस्तु को देखते हैं तो दोनों आँखों से देखते हैं, फिर भी वस्तु एक ही दीखती है। इसका

कारण यह है कि उसका प्रतिबिम्ब दोनों आँखों से दृष्टिपटल पर एक-सा बनता है। यह आवश्यक है कि दृष्टिपटल में एक ही तरह, एक प्रमुख भाग पर ही प्रतिबिम्ब पड़े और साथ ही पीत-बिन्दु पर पड़े, जिससे वस्तु साफ-साफ और एक ही दीख पड़े। यह तभी हो सकता है जब दोनों आँखों की पेशियाँ एक साथ काम करें। यही होता भी है। पेशियों की सहयोगिता और नेत्र की **समंजन क्षमता** (accommodation of eye) से दो आँखों से देखी गई एक चीज एक-सी दीखती है और दो आँखों से देखे जाने के कारण उनका आकार-प्रकार बिल्कुल साफ मालूम होता है।

किसी वस्तु को चित्र में और प्रत्यक्ष देखने में कुछ अन्तर मालूम होता है। चित्र में केवल लम्बाई-चौड़ाई का ज्ञान होता है। परन्तु प्रत्यक्ष देखने में लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई तीनों का ज्ञान होता है। इसका कारण यह है कि एक आँख का चित्र कुछ दाहिने रुख का होता है और दूसरा बाएँ रुख का। जब वह दृष्टिपटल पर एक साथ पड़ते हैं और एक रूप हो जाते हैं तो मोटाई का ज्ञान पैदा करते हैं।

दृष्टि और प्रकाश सम्बन्धी कुछ बातें—एक ही ओर देर तक देखते रहने से दृष्टिपटल में थकावट आ जाती है। यदि हम किसी चमकीली वस्तु को थोड़ी देर तक देखते रहें और फिर आँख घुमाकर श्वेत दीवार को देखें तो उस पर एक काला धब्बा दीख पड़ेगा। इसका कारण है दृष्टिपटल का थक जाना। दृष्टिपटल की यह विशेषता है कि वह देखी हुई चीज का प्रतिबिम्ब उस चीज के हट जाने के बाद $\frac{1}{8}$ सेकंड तक अपने में रखती है। यदि चलती तसवीरें इस तेजी से आँखों के सामने से निकाली जायँ कि एक का प्रतिबिम्ब मिटने के पहले दूसरी का प्रतिबिम्ब पड़ जाय तो जीवन की सच्ची घटना की तरह तस्वीरों का क्रम दीख पड़ेगा। यही सिद्धान्त सिनेमा की तस्वीरों को बनाने में लागू होता है। सिनेमा में चित्र इतनी तेजी से पर्दे पर आते हैं कि दृष्टिपटल में उनका लगातार प्रतिबिम्ब पड़ता जाता है।

प्रकाश में सात रंग होते हैं--बैंगनी (violet), जामुनी (indigo), नीला (blue), हरा (green), पीला (yellow), नारंगी (orange) और लाल (red)। यदि हम किसी प्रिज्म (prism) में से प्रकाश को देखें तो रंग बिल्कुल साफ-साफ दिखाई पड़ते हैं।

कुछ लोग रंग की पहचान नहीं कर पाते। इन्हें रंग का अंधा (वर्णान्ध, colour blind) कहते हैं। यदि दृष्टिपटल में कोई दोष आ जाता है तो मनुष्य रंग का अंधा (वर्णान्ध,colour blind) हो जाता है।

दृष्टि-दोष--हमारी आँखों की बनावट इस प्रकार होती है कि जितनी वस्तुएँ दूरी पर होती हैं उनका प्रतिबिम्ब दृष्टिपटल पर ठीक-ठीक पडता है। किन्तु जितनी वस्तुएँ आँख के अधिक निकट होती हैं उनका प्रतिबिम्ब लेन्स (lens) का आकार स्थिर रहने पर दृष्टिपटल पर नहीं पड़ता।

जब आँखें दूर की चीजें न देख सकें तब यह बीमारी निकट-दृष्टि (short-sight) कहलाती है। ऐसे लोग निकट की चीजों को अच्छी तरह देख सकते हैं। कुछ विद्यार्थी कक्षा में पीछे से श्यामपट्ट पर की लिखावट नहीं पढ़ सकते, क्योंकि उनकी निकट-दृष्टि होती है।

कुछ लोगों की आँखों की बनावट इस प्रकार की होती है कि उनकी दूर की चीजें देखने में कोई कठिनाई नहीं होती किन्तु वे निकट की चीजों को साफ-साफ नहीं देख पाते। वे अच्छी तरह लिख-पढ़ नहीं सकते। उनकी आँखों में थकावट आ जाती है और उनकी आँखें दुखने लगती हैं। इस रोग का नाम दीर्घ-दृष्टि (long-sight) है। यह रोग कभी-कभी जन्म ही से होता है। इन रोगों के लिए विशेषज्ञ की सलाह लेनी चाहिए।

यह देखा गया है कि चालीस-पैंतालीस वर्ष की अवस्था में आँखें धीरे-धीरे दीर्घ-दृष्टि या निकट-दृष्टि वाली हो जाती हैं। छोटे बच्चे की अधिकतर 'दीर्घ-दृष्टि' का रोग होता है। कभी-कभी आँख की थकान का और यकृत की खराबी का सम्बन्ध पाया जाता है। जिनको असम दृष्टि (अबिन्दुक दृष्टि, astigmatic) का रोग होता है, उन्हें ऐसा बहुधा हो जाता है। इस रोग में

लेन्स पर पड़ने वाली किरण दृष्टिपटल पर एक ही स्थान पर फोकस नहीं होतीं। इस कारण कोई वस्तु अपने विभिन्न दिशाओं में समान रूप से दिखाई नहीं देती। वस्तुतः इसका कारण लेन्स या कॉर्निया का दोष है। लेन्स या कॉर्निया का आकार जब एक-सा नहीं होता तो प्रकाश की किरणें भिन्न-भिन्न स्थान से दृष्टिपटल पर कुछ इधर-उधर पड़ती हैं और वस्तु समान रूप से नहीं दिखाई पड़ती है। इसे असम दृष्टि (अबिन्दुक-दृष्टि, astigmatism) कहते हैं। ऐसी आँख के लिए चश्मे विशेष रूप से तैयार किए जाते हैं।

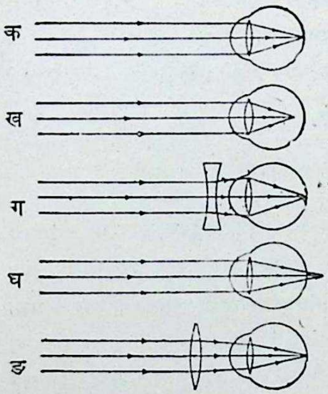

क—स्वस्थ नेत्र
ख—निकट दृष्टि-दोष
ग—निकट-दोष का उपचार
घ—दीर्घ-दृष्टि दोष
ङ—दीर्घ दृष्टि-दोष का उपचार

चित्र ६७—नेत्र के दृष्टि-दोष

दृष्टि-रोग से बचने के लिए आँख से लगभग २३ सेमी से कम दूरी पर अपनी पुस्तक न रखो। ऐसा न करने से पेशियों पर जोर पड़ेगा और निकट-दृष्टि का रोग हो जायगा। कम रोशनी में पढ़ने से भी आँख पर जोर पड़ता है। आँख दबाकर या आँख निकाल कर देखने से भी हानि होती है।

दीर्घ-दृष्टि का कारण यह है कि जब आँख के बीच का गोला कुछ चपटा हो जाता है अर्थात् लेन्स और दृष्टिपटल के बीच का अन्तर कम हो जाता है तब बाहर की वस्तु का चित्र दृष्टिपटल पर नहीं पड़ता क्योंकि दृष्टिपटल अपनी

वास्तविक स्थिति से आगे हट आया है। तब मनुष्य वस्तु को दूर करके देखता है कि चित्र ठीक स्थान पर आ जाय। इसके लिए उत्तल लेन्स की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु निकट-दृष्टि में वह अन्तर बढ़ जाता है और मनुष्य को वस्तु को निकट करके देखना पड़ता है जिससे प्रतिबिम्ब दृष्टिपटल पर आ जाय। इसके लिए अवतल लेन्स (concave lens) (जो बीच में दबा और किनारे पर उभरा रहता है) की आवश्यकता पड़ती है। दृष्टि-दोष होने से बहुधा पढ़ने से सर में दर्द हो जाता है। कभी-कभी बच्चों को भी यह रोग हो जाता है। जिस विद्यार्थी के श्यामपट्ट देखने या पढ़ने-लिखने से सर में दर्द होता है उसे तुरन्त आँख दिखलानी चाहिये।

(५) श्रवणेन्द्रिय, (कर्ण और सुनना)

कर्ण या कान--कान ही आवाज की लहरों (ध्वनि तरंग, sound waves) को इकट्ठा करता है और उनको एक स्नायविक प्रेरणा में बदल कर मस्तिष्क तक पहुँचाता है। ध्वनि तरंगे (sound waves) कान के बाहरी भाग में से होकर कान की नली (श्रवण नली, (auditory canal) में आती हैं। श्रवण नली पर एक पतली झिल्ली लगी होती है, जिसे ढोल (कर्णपटह, drum) कहते हैं। यह झिल्ली बाहरी कान को मध्य कान से अलग करती है।

कान के तीन भाग होतें हैं :--

(१) बाह्य कर्ण या बाहरी कान (external ear),
(२) मध्यकर्ण या मध्य कान (middle ear),
(३) आभ्यंतर कर्ण या भीतरी कान (inner ear),

(१) बाह्य कर्ण या बाहरी कान (External ear) बाहरी कान के दो भाग होते हैं--(१) यह भाग कर्ण पल्लव (auditory pinna) जो सीपी की तरह रहता है और जिसमें छेद करा कर औरतें बालियाँ पहनती हैं। नीचे की ओर को छोड़कर यह उपास्थि का बना होता है। (२) यह भाग जिसे श्रवण नली (auditory canal) कहते हैं। यह नली लगभग ३ सेमी लम्बी होती है।

यह नली टेढ़ी-मेढ़ी घूम कर ढोल (कर्णपटह, drum) तक पहुँचती है। इस नली में पतली त्वचा का एक स्तर लगा रहता है जिसमें छोटी-छोटी ग्रंथियाँ रहती हैं, इन्हें **मोम ग्रंथियाँ** (wax glands) कहते हैं। इससे कान का मैल निकलता है। इस नली की त्वचा में छोटे-छोटे बाल भी होते हैं। कान की मैल और बालों का काम है, भीतरी भाग में धूल-कणों को न जाने देना।

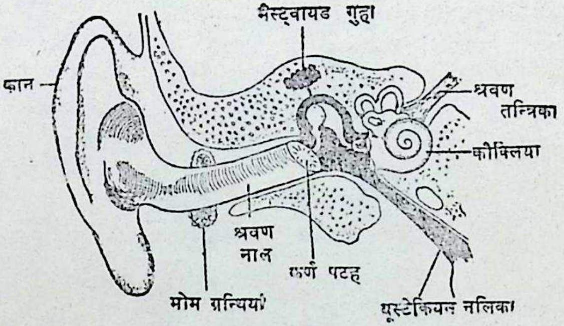

चित्र ९८--कर्णपटह, मध्य कर्ण तथा आभ्यंतर कर्ण

(२) **मध्य कान या मध्य कर्ण** (Middle ear)--यह एक छोटी-सी कोठरी है जो कर्णपटह के पीछे कुछ ऊपर की ओर होती है। इसमें सब जगह एक पतली श्लेष्मा-झिल्ली लगी रहती है और यह हवा से भरी होती है। इसरी बाहरी दीवार कर्णपटह से बनती है और इसकी भीतरी दीवार से आभ्यंतर कर्ण का आरम्भ होता है। इस दीवार में दो छेद होते है; एक अंडाकार, दूसरा गोल।

वाकी दीवारें छत और फर्श कनपटी की हड्डियों से बनते हैं। उसके सामने की दीवार में एक नली का मुंह होता है। इस नली द्वारा मध्य कर्ण का कंठ से सम्बन्ध रहता है। इस नली को यूस्टेकी नलिका (eustachian tube) कहते हैं। नाक और मुंह के छेदों को बन्द करने पर सांस इस नली से होकर कान में जाने लगती है जिसके शब्द को उस समय सुगमता से सुना जा सकता है।

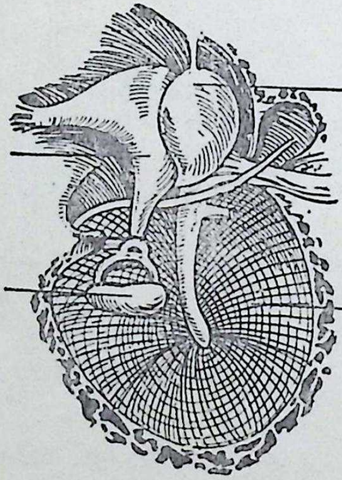

चित्र ९९--कर्णपटह और मध्य कर्ण की हड्डियाँ

मध्य कर्ण में तीन छोटी-छोटी हड्डियाँ होती हैं, जो कर्णपटह से लेकर भीतरी दीवार तक फैली होती हैं,। ये आपस में बन्धनों द्वारा बँधी होती है और इनके बीच में हिलने-घूमने वाले जोड़ होते हैं। कर्णपटह के पास की हड्डी को मुगदर या मैलियस (hammer or malleus) कहते हैं। बीच

की हड्डी को निहाई या इन्कस (anvil of incus) कहते हैं। तीसरी हड्डी भीतरी कान के पास होती है। इसका नाम रकाब या स्टेपीज (stirrup or stapes) है। इन हड्डियों के पास इनकी शकलों के अनुसार हैं। इन हड्डियों के सहारे कर्णपटह पर पहुँचती हुई ध्वनि-तरंग आभ्यंतर कर्ण तक पहुँचाती हैं।

(३) भीतरी कान या आभ्यंतर कर्ण (Inner ear) आभ्यंतर कर्ण की बनावट बहुत ही जटिल और विचित्र है। यह कर्ण की हड्डी के भीतरी

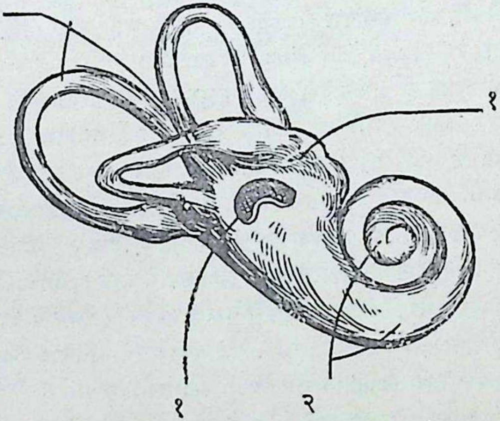

चित्र १००—आभ्यंतर कर्ण के तीन भाग—(१) तीन अर्द्ध-वृत्ताकार नलिका (semi-circular canals)। इन्हीं में स्टेपीज को हड्डी लगी रहती है। (२) प्रघाण (vestibuls), (३) कर्णावर्त्त (cochlea) अर्थात् आभ्यंतर कर्ण का शंख जैसा लेबरिंथ।

भाग से सुरक्षित रहता है। इसकी बनावट की जटिलता के कारण इसे घूम-घुमैया (लेबरिंथ, labyrinth) भी कहते हैं। यह आभ्यंतर कर्ण की हड्डियों का बना है, पर विशेषता यह है कि हड्डियों के बने घूम-घुमैया के अन्दर झिल्ली

का लेवरिंथ रहता है। इसके भीतर एक द्रव पदार्थ भरा होता है। जिस समय ध्वनि-तरंगों से स्टेपीज नामक हड्डी की जड़ में कंपन होता है उसके साथ ही वह झिल्ली भी हिलती है, जिसमें यह हड्डी लगी होती है। इसलिए झिल्ली के दूसरे ओर आभ्यंतर कर्ण का द्रव पदार्थ (अंतर्लसीका, (endolymph) बराबर थपथपाया जाता है और इस प्रकार उत्पन्न हुई ध्वनि-तरंगे भीतरी कान के कर्णवर्त्त भाग को घूमकर आती हैं। कान का सबसे अधिक आवश्यक यही भाग है।

प्रघाण (vestibule) नामक कोठरी मध्य कर्ण के समाने होती है। इसके सामने की ओर कर्णावर्त्त (cochlea) नामक भाग और पीछे की ओर अर्द्ध-वृत्ताकार नलिका, (semi-circular canals) होती हैं। इसी की दीवार में अंडाकार छेद होता है। इस छेद पर एक पर्दा लगा हुआ है जिसे अंडाकार पट कहते हैं जिसमें स्टेपीज लगी होती है कर्णावर्त्त (cochlea) प्रघाण के सामने घड़ी की कमानी के समान मुड़ा हुआ भाग होता है। इसकी आकृति शंख या घोंघा से बहुत मिलती-जुलती है। अर्द्ध-वृत्ताकार नलिका (semi-circular canals) प्रघाण (vestibule) के पिछले भाग से जुड़ी हुई होती हैं। इनकी संख्या तीन है और एक दूसरे से लम्ब (perpendicular) बनाती है। इनके और प्रघाण के बीच में सूराख होते हैं। इनमें से दो प्रघाण से मिलने के पहले ही बन्द हो जाते हैं। अर्द्ध-वृत्ताकार नलिकायें केवल एक सिरे पर श्रवण-तंत्रिका (auditory nerve) शाखाओं से मिली होती हैं। अर्द्ध-वृत्ताकार नलिकाओं का कार्य है कि ये मस्तिष्क को शरीर की गति से सूचित रक्खें।

ध्वनि तरंगों का कर्ण पर प्रभाव—जब कोई ध्वनि (आवाज) होती है तो ध्वनि तरंगें वायुमंडल की प्रत्येक दिशा में फैल जाती हैं। ध्वनि तरंगों की चाल ३६७ मीटर प्रति सेकेण्ड है। इस प्रकार तेजी से ध्वनि-तरंगें कर्ण के भीतरी अंगों को प्रभाविता करती हैं और मैलियस नामक हड्डी के हिलने से बाकी दोनों हड्डियाँ भी हिलती हैं। इन्हीं ध्वनि-तरंगों के कारण

कान के भीतरी भाग में जो द्रव पदार्थ होता है उसमें कंपन उत्पन्न हो जाता है। इस कंपन से **श्रवण-तन्त्रिका** (auditory nerve) की नाड़ियाँ उत्तेजित होती हैं, जिससे मस्तिष्क तक प्रेरणाएँ पहुंचाती हैं। इन्हीं से ध्वनि (sound) का बोध होता है।

बहरापन--बहरेपन के कई कारण हैं। कभी तो कान में अधिक मैल होने से, कभी कान का पर्दा फट जाने से और कभी कर्ण-रोग से लोग बहरे हो जाते हैं। कभी-कभी **यूस्टेकी नलिका** (eustachian tube) में दोष आ जाने से लोग कम सुनने लगते हैं। श्रवण-तन्त्रिका की खराबी और मस्तिष्क में जो श्रवणकेन्द्र है उसकी खराबी से भी बहरापन होता है।

कंठ और ध्वनि

कंठ (Larynx)--कंठ का नाम पहले कई बार आ चुका है। यही श्रवणेन्द्रिय और श्वासनली (trachea) का ऊपरी भाग है। कंठ नौ उपास्थियों से बना एक कोष्ठ है, जिनमें मुख्य चार के नाम ये हैं--(१) थाइरॉयड उपास्थि या **अवटु उपास्थि** (thyroid) (२) **मुद्रिका-उपास्थि** (crioid) और (३) **दो दर्विकाभ उपास्थि** (arytenoid) कोष्ठ के नीचे के भाग से श्वासनली आरम्भ होती है। इन चार उपास्थियों के अतिरिक्त एक उपास्थि पीपल के पत्ते की तरह का होता है। वही **घाँटी ढक्कन** (epiglottis) है, जो ढक्कन का काम करता है और भोजन को कंठ में गिरने से बचाता है। (देखो चित्र १०१) कंठ के उपास्थि आपस में पेशियों और बन्धनों से बँधे रहते हैं। अब मुख्य चार उपास्थियों का कुछ वर्णन दिया जाता है :—

(१) **थाइरॉयड उपास्थि या अवटु उपास्थि** (thyroid)--कंठ के सामने और दोनों तरफ यही उपस्थित होता है। सामने ठीक उभरा हुआ भाग होता है जो **आदम के सेव** (Adams apple) के नाम से प्रसिद्ध है। यह पीछे जुड़ा रहता है। इसके पिछले भाग में एक पतली झिल्ली लगी होती है। ऊपर की

ओर यह कंठिका (hyoid) नामक हड्डी से मिला होता है और नीचे की ओर मुद्रिका उपास्थि (cricoid) से।

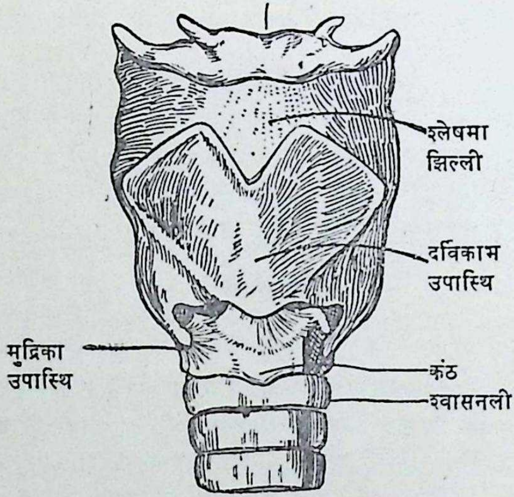

चित्र १०१—कंठ

(२) मुद्रिका उपास्थि (Cricoid)––यह उपास्थि थाइरॉयड उपास्थि के नीचे होती है। श्वसनी में केवल यही उपास्थि पूर्ण है। इसकी आकृति अँगूठी की तरह है, इसी से इसे उपास्थि कहते हैं। इसके पीछे का भाग चौड़ा और सामने का भाग सँकरा होता है। थाइरॉयड और इसके बीच का स्थान झिल्ली से मिला होता है। ऊपर दोनों ओर दो दर्विकाभ उपास्थि होती हैं।

(३) दर्विकाभ उपास्थि (Arytenoids)––ये ठोस त्रिकोण की शक्ल के दो छोटी उपास्थि होती हैं जो मुद्रिका के ऊपर पीछे की तरफ इस प्रकार लगी

होती हैं कि सुगमता से हिल-डुल सकें। इस दर्विकाभ उपास्थि और थाइरॉयड उपास्थि की पिछली सतह में दो योजी ऊतक के बन्धन रहते हैं, जो पतली झिल्ली में ढँके होते हैं। इन्हें वाक्तंतु (vocal cords) कहते हैं। ये बन्धन इस प्रकार मिले होते हैं कि जब ये फैलते हैं तो इनके किनारों के पास-पास और समान्तर आ जाने से केवल एक बहुत ही पतला-सा छिद्र रह जाता है, जिससे होकर हवा जाती है।

यह समझना चाहिए कि वाक्-तन्तु के एक-दूसरे के पास-पास आने या एक दूसरे से दूर रहने में माँस-पेशियाँ ही सहायक होती हैं। उन्हीं के संकुचन (contraction) और प्रसार (expansion) से ऐसा हो सकता है। जब आदमी चुपचाप साँस लेता है तब स्वर तारों के बीच में मामूली अन्तर रहता है, पर गहरी साँस लेते समय यह अन्तर बढ़ जाता है। बोलते समय अन्तर कम हो जाता है और गाते और चिल्लाते समय यह अन्तर बहुत कम हो जाता है।

घाँटी ढक्कन (Epiglottis)—जैसे ऊपर कहा गया है, यह एक पत्ती की आकृति का उपास्थि का टुकड़ा है, जिसका नीचे का पतला भाग थाइरॉयड उपास्थि या अवटु उपास्थि से मिला होता है। इसका काम है कंठ को खाने-पीने के समय बन्द रखना। वैसे साधारणतः साँस लेते समय यह सीधा रहता है। (देखो चित्र १०१)

कंठिका (Hyoiod)—यह हड्डी अंग्रेजी अक्षर यू (U) की तरह होती है और जीभ की जड़ में थाइरॉयड उपास्थि ऊपर होती है। यह किसी हड्डी से मिल नहीं होती, बल्कि खोपड़ी में लगे बन्धनों से लटकटी रहती है। इसका सम्बन्ध जिह्वा और कंठ की कई मांस-पेशियों से रहता है।

स्वर—स्वर वाक्-तन्तु (Vocal cords) के प्रकंपन से स्वर उत्पन्न होता है। साधारणतः साँस लेने के समय वाक्-तन्तु ढीले रहते हैं। जब हम बोलते या गाते हैं तब वाक्-तन्तु तन जाते हैं और उस समय जो वायु बाहर निकलती है वाक्-तन्तु में कंपन उत्पन्न करती है। यही स्वर है।

ओर यह कंठिका (hyoid) नामक हड्डी से मिला होता है और नीचे की ओर मुद्रिका उपास्थि (cricoid) से।

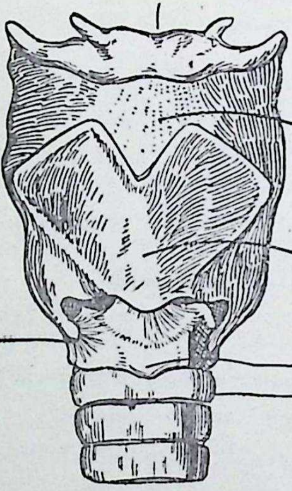

चित्र १०१—कंठ

(२) मुद्रिका उपास्थि (Cricoid)--यह उपास्थि थाइरॉयड उपास्थि के नीचे होती है। श्वसनी में केवल यही उपास्थि पूर्ण है। इसकी आकृति अँगूठी की तरह है, इसी से इसे उपास्थि कहते हैं। इसके पीछे का भाग चौड़ा और सामने का भाग सँकरा होता है। थाइरॉयड और इसके बीच का स्थान झिली से मिला होता है। ऊपर दोनों ओर दो दर्विकाभ उपास्थि होती हैं।

(३) दर्विकाभ उपास्थि (Arytenoids)--ये ठोस त्रिकोण की शक्ल के दो छोटी उपास्थि होती हैं जो मुद्रिका के ऊपर पीछे की तरफ इस प्रकार लगी

होती हैं कि सुगमता से हिल-डुल सकें। इस दर्विकाभ उपास्थि और थाइरॉयड उपास्थि की पिछली सतह में दो योजी ऊतक के बन्धन रहते हैं, जो पतली झिल्ली में ढँके होते हैं। इन्हें वाक्तंतु (vocal cords) कहते हैं। ये बन्धन इस प्रकार मिले होते हैं कि जब ये फैलते हैं तो इनके किनारों के पास-पास और समान्तर आ जाने से केवल एक बहुत ही पतला-सा छिद्र रह जाता है, जिससे होकर हवा जाती है।

यह समझना चाहिए कि वाक्-तन्तु के एक-दूसरे के पास-पास आने या एक दूसरे से दूर रहने में माँस-पेशियाँ ही सहायक होती हैं। उन्हीं के संकुचन (contraction) और प्रसार (expansion) से ऐसा हो सकता है। जब आदमी चुपचाप साँस लेता है तब स्वर तारों के बीच में मामूली अन्तर रहता है, पर गहरी साँस लेते समय यह अन्तर बढ़ जाता है। बोलते समय अन्तर कम हो जाता है और गाते और चिल्लाते समय यह अन्तर बहुत कम हो जाता है।

घांटी ढक्कन (Epiglottis)—जैसे ऊपर कहा गया है, यह एक पत्ती की आकृति का उपास्थि का टुकड़ा है, जिसका नीचे का पतला भाग थाइरॉयड उपास्थि या अवटु उपास्थि से मिला होता है। इसका काम है कंठ को खाने-पीने के समय बन्द रखना। वैसे साधारणतः साँस लेते समय यह सीधा रहता है। (देखो चित्र १०१)

कंठिका (Hyoiod)—यह हड्डी अंग्रेजी अक्षर यू (U) की तरह होती है और जीभ की जड़ में थाइरॉयड उपास्थि ऊपर होती है। यह किसी हड्डी से मिल नहीं होती, बल्कि खोपड़ी में लगे बन्धनों से लटकती रहती है। इसका सम्बन्ध जिह्वा और कंठ की कई मांस-पेशियों से रहता है।

स्वर—स्वर वाक्-तन्तु (Vocal cords) के प्रकंपन से स्वर उत्पन्न होता है। साधारणतः साँस लेने के समय वाक्-तन्तु ढीले रहते हैं। जब हम बोलते या गाते हैं तब वाक्-तन्तु तन जाते हैं और उस समय जो वायु बाहर निकलती है वाक्-तन्तु में कंपन उत्पन्न करती है। यही स्वर है।

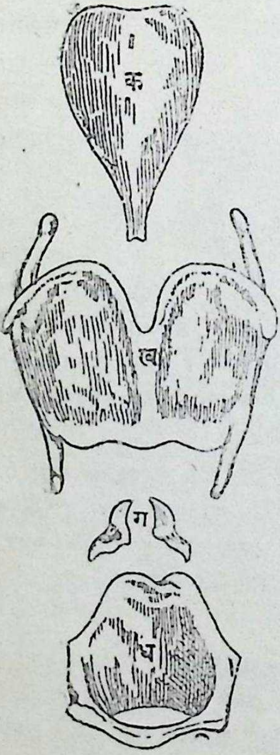

चित्र १०२—क—घांटी ढक्कन-;
ख—थाइरॉयड उपास्थि;
ग—दर्विकाभ उपास्थि
घ—मुद्रिका उपास्थि।

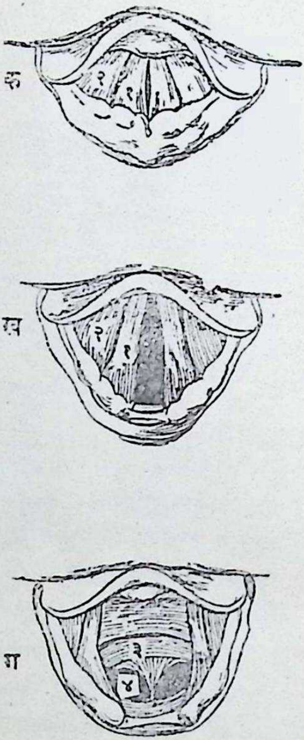

चित्र १०३—कंठ के तीन दृश्य
क—गाने के समय;
ख—साधारण सांस लेने के समय;
ग—गहरी सांस लेने के समय।

स्वर का मन्द और तीव्र होना कंपन-गति पर निर्भर है और कंपन-गति वाक्-तन्तु के तनाव पर निर्भर है। जितना ही छोटा तना वाक्-तन्तु होगा उतना ही कंपन अधिक होगा और साथ ही स्वर तीव्र होगा।

स्वर का मीठा या कर्कश होना कई बातों पर निर्भर है, जैसे मुंह, नासिका और गला की आकृति, बनावट और जीभ का स्थान इत्यादि। ये अंग भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होते हैं, इसलिए एक व्यक्ति का स्वर दूसरे व्यक्ति के स्वर से भिन्न होता है। लड़के और लड़कियों का कंठ एक-सा होता है; किन्तु लड़के जब बढ़ते हैं तो उनका कंठ बढ़ जाता है और कंपन में विभिन्नता आ जाने के कारण स्वर में अन्तर होता है।

भाषण (बोली)--वह स्वर है जो जिह्वा के गाल, होठ और दांत से टकराने से टूट-टूट कर शब्द बन जाता है। जब बोलते हैं तो हमारी जिह्वा कभी होठ, कभी दांत और कभी गाल की ओर आती-जाती है। इसी से स्वर टूट कर शब्दों में परिणत हो जाता है। फुसफुसाना बिना स्वर का भाषण है। इसमें सांस से ही बोलते हैं, क्योंकि वाक्-तन्तु में कम्पन नहीं होता है। फुसफुसाने की आवाज जीभ और होठ की सहायता से होती है।

अन्तः स्रावी तथा वाहिनीहीन ग्रंथियाँ

(ENDOCRINE GLANDS OR DUCTLESS GLANDS)

अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ—यह हम जानते हैं कि हमारे शरीर में बहुत-सी ग्रंथियाँ (glands) हैं। अँगुली से टटोल कर देखने से गर्दन में ग्रंथियाँ मालूम होती हैं। दोनों जांघों में भीतर की ओर ग्रंथियाँ रहती हैं और बगल में भी टटोलने से ग्रंथियों का पता चलता है।

पहले बताया जा चुका है कि जिह्वा के आस-पास की ग्रंथियों से लार निकलती है, जिससे भोजन के पचने में सहायता मिलती है। फिर आमाशय और आंत्र में भी ग्रंथियाँ हैं जिनसे पचने वाले रस निकलते हैं। यकृत और अग्न्याशय (pancreas) नाम की दो ग्रंथियों के सम्बन्ध में भी हम पढ़ चुके हैं। इस तरह

हम ग्रंथियों से अच्छी तरह परिचित हैं और हम यह भी समझते हैं कि ये ग्रंथियाँ बड़े काम की हैं।

ग्रंथियों का मुख्य काम रस बनाने का है। स्राव (secretion) कई तरह के बनते हैं और शरीर की अलग-अलग आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। यदि किसी ग्रंथि के स्राव की आवश्यकता उसके समीप न होकर कुछ दूर पर होती है तो उस ग्रंथि से नली निकल कर उस अंग या जगह तक जाती है जहाँ रस की आवश्यकता होती है। यह नली उस विशेष रस की प्रणाली वाहिनी (duct) कहलाती है। यकृत के विषय में पढ़ते हुए हमने देखा है कि यकृत से एक नली निकल कर क्षुद्रांत्र के ग्रहणी नामक भाग में आती है। इसी तरह अग्न्याशय से भी एक नली निकल कर ग्रहणी में पहुँचती है।

इन वाहिनीयुक्त ग्रंथियों के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी ग्रंथियाँ है जिसके स्राव शरीर के किसी विशेष भाग के लिए न बन कर सारे शरीर के लिए बनते हैं। इसलिए इन ग्रंथियों से नली न निकल कर शरीर के दूसरे भाग में नहीं पहुँचती हैं। इनके स्राव ग्रंथियों के लसीका या रुधिर में मिल जाते हैं और रुधिर-परिसंचरण में पड़ कर सभी अंगों में पहुँचते हैं। जसा कि ऊपर कहा गया है, इन ग्रंथियों से नली नहीं निकलती और इनका स्राव शरीर के भीतर-भीतर ही रुधिर-परिसंचरण द्वारा चक्कर खाता है इसलिए ये वाहिनीहीन या अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ (ductless or endocrine glands) कही जाती हैं।

अन्तःस्रावी ग्रंथियों का पता बहुत दिनों तक नहीं चला। अब जो बातें इनके सम्बन्ध में मालूम हुई हैं उनसे पता चलता है कि ये ग्रंथियाँ भी बड़े काम की हैं और कई तरह से शरीर को लाभ पहुँचाती हैं।

अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ निम्न प्रकार की होती हैं :—

१. थाइरॉयड (Thyroid)

२. पैरा-थाइरॉयड (Para-thyroid)

३. लैंगरहैंस के द्वीप पुंज (Islets of Langerhans) ये अग्न्याशय (pancreas) में स्थित हैं।

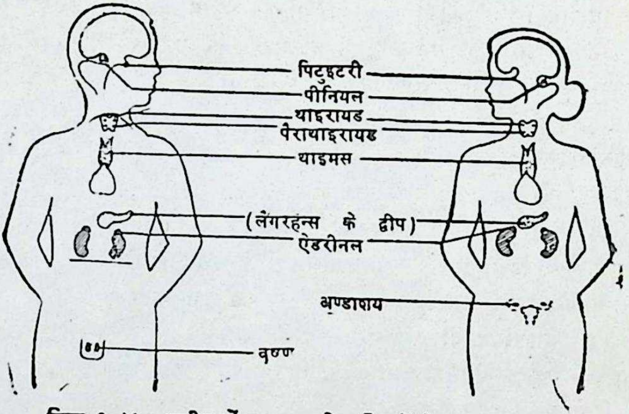

चित्र १०४—शरीर में अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्थान

४. अधिवृक्क (Adrenal)

५. थाइमस (Thymus)

६. पीनियल (Pineal)

७. पीयूष (Pituitiary)

८. जननग्रंथि (Gonads) वृषण (Testis) तथा अण्डाशय (ovary)।

उपर्युक्त ग्रंथियों के अन्तःस्राव (internal secretion) से शरीर पर निम्न प्रकार के प्रभाव होते हैं :—

(१) रासायनिक प्रभाव—थाइरॉयड, पैराथाइरॉयड और लैंगरहैंस के द्वीपपुंज के अन्तःस्राव का रासायनिक प्रभाव होता है।

(२) संवेगात्मक प्रभाव—अधिवृक्क तथा जननग्रंथि के अन्तःस्राव के कारण संवेगात्मक प्रभाव होता है।

(३) वृद्धि—पीयूष तथा थाइरॉयड ग्रंथि के अन्तःस्राव शरीर की वृद्धि में प्रभाव डालती है।

इन ग्रंथियों की क्रियाओं का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। जब उनकी क्रिया साधारण रूप से कार्य करती है तब मनुष्य का शरीर स्वस्थ रहता है। परन्तु जब उनमें से कोई एक अधिक उत्तेजित अथवा मन्द पड़ जाती है तो शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है, जैसे—(१) वृद्धि रुक जाती है, (२) लैंगिक विकास अवरुद्ध हो जाता है, (३) अनैच्छिक क्रियाएँ विकृत हो जाती हैं और रुधिर सम्बन्धी अनेक प्रकार की बाधाएं उत्पन्न हो जाती हैं।

इन ग्रंथियों से जो रस निकलता है उसे हार्मोन (Harmone) कहते हैं। यह एक रासायनिक पदार्थ है। अतः आजकल यह वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया जाता है और इसके रोगियों को इसका इन्जेक्शन दिया जाता है।

(१) थाइरॉयड या अवटु ग्रंथि—इस ग्रंथि का रंग भूरापन लिए लाल होता है। यह हलक के ठीक सामने रहती है। इसके दो छोटे-छोटे भाग होते हैं, जो श्वासनली के इधर-उधर रहते हैं और एक सँकरे भाग से जुड़े रहते हैं। इसका आकार देशी चूल्हे से मिलता-जुलता है। इसी से इसे थाइरॉयड कहते हैं।

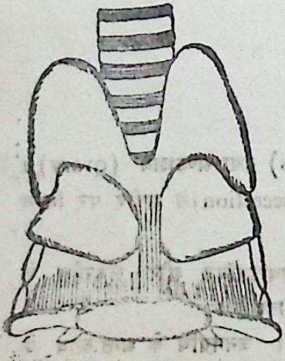

चित्र १०५—श्वास नली के दोनों ओर थाइरॉयड (अवटु) ग्रन्थि स्थित है

यह ग्रंथि बड़े महत्त्व की है। इसके रस का प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है। इससे शरीर की रासायनिक क्रिया अच्छी होती है और शरीर पूरा-पूरा बढ़ पाता और पुष्ट होता है। यदि लड़कपन से ही इस ग्रंथि का रस रुधिर में अच्छी तरह न पहुँचे तो शरीर और मस्तिष्क का पूरा विकास नहीं होता और लड़का कमजोर शरीर वाला और मन्दबुद्धि का हो जाता है। ऐसा १२ वर्ष का लड़का ४-५ वर्ष से अधिक का नहीं मालूम होगा। मुख की आकृति उसकी मन्दबुद्धि का परिचय देगी। भारी मुंह, मोटे होठ, मोटा गन्दा चमड़ा, मुंह से लार

बहती हुई, चेहरे पर निर्जीवता ऐसी मालूम होती है, मानो उसे परिस्थिति का कोई ज्ञान नहीं उसमें कोई रुचि नहीं। प्राय: बौने, ठिगने, भद्दे लोग बचपन से इसी ग्रन्थि के पूर्णरूप से कार्यशील न होने से ऐसे हो जाते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रतिदिन इस ग्रन्थि का रस रुधिर-परिसंचरण में पहुँचा करे।

युवावस्था के प्रारम्भ हो जाने के बाद इस रोग के हो जाने से जहाँ तक उसका शारीरिक विकास हो चुका है उसमें तो बाधा नहीं पड़ती, परन्तु उसकी त्वचा मोटी हो जाती है, आकृति भद्दी हो जाती है, चेहरे पर शिथिलता आ जाती है और आँखें दबी मालूम होती हैं। ऐसे लोगों को काम करने का उत्साह भी नहीं रहता है।

यदि यह ग्रन्थि अधिक उत्तेजित हो जाती है तब हार्मोन अधिक बनता है। ऐसी दशा में नेत्र बाहर निकल आते हैं, चेहरे पर तनाव आ जाता है, हृदय की गति में वृद्धि हो जाती है और धड़कने लगता है, हाथों में कँप-कँपी होने लगती है और मूत्र से शक्कर आने लगती है। दुर्बल स्त्री जो बात-बात में उत्तेजित हो जाती है, छोटे-छोटे कामों में परेशान दौड़ा करती है और घर भर को परेशान रखती है, इसी रोग से पीड़ित होती है। इसके कारण उसके रुधिर में आयोडीन अधिक हो जाता है।

थाइरॉयड का रस आयोडीन-प्रधान होता है। जिनके आहार में आयोडीन का अभाव होता है उनको घेघा रोग हो जाता है। इस रोग में थाइरॉयड ग्रन्थि बहुत बढ़ जाती है, जिससे गले का अगला भाग सूख जाता है। समुद्र से दूर स्थित स्थान जैसे हिमालय पहाड़ की तराई आदि स्थानों की भूमि में आयोडीन बहुत कम पाया जाता है, क्योंकि इन स्थानों का आयोडीन वर्षा के जल के साथ समुद्र में पहुँच जाता है। इसीलिए यहाँ के खाद्य-पदार्थों में इसका अभाव हो जाता है। अत: यहाँ के निवासियों में यह रोग बहुत देखा जाता है।

थाइरॉयड के रस की कमी की अवस्था में बाहर से थाइरॉयड के रस का प्रयोग किया जाता है, जो बाजार में Thyroid extract के नाम से बिकता है। यथेष्ट मात्रा में दूध पीने से भी थाइरॉयड अपना काम अच्छी तरह करती है।

(२) **पैराथाइरॉयड ग्रंथियाँ**—ये ग्रंथियाँ मटर के बराबर और उसी के आकार की होती हैं। दो ग्रंथियाँ थाइरॉयड के दाहिने और दो बायें खंड के पिछले किनारे से लगी रहती हैं (देखो चित्र १०५)। इनके निकाल देने से रुधिर में कैल्सियम की मात्रा घट जाती है शरीर में ऐंठन के दौरे होने लगते हैं और टेटनी (tetany) रोग हो जाता है, जिससे रोगी की मृत्यु हो जाती है। बच्चों में यह रोग अधिक हो जाता है। कभी-कभी कैल्सियम मूत्र द्वारा इतना निकलने लगता है कि हड्डियाँ गल कर निकलने लगती हैं। यदि इन ग्रंथियों की क्रिया मन्द हो गई तो रुधिर में कैल्सियम का अनुपात घट जाता है। इससे ज्ञात होता है कि इन ग्रन्थियों का काम रुधिर और हड्डी में कैल्सियम के अनुपात की रक्षा करना है। कैल्सियम के घट जाने से हृदय की गति बढ़ जाती है और रुधिर स्राव (haemorrhage) होने लगता है।

(३) **थाइमस ग्रंथि**—इसका कुछ भाग छाती में उरोस्थि (sternum) के पीछे और कुछ गर्दन के निचले भाग में रहता है। इसका रंग गुलाबीपन लिए हुए धूसर रहता है। यह लगभग ४ सेमी लम्बी और २·५ सेमी चौड़ी होती है। यह जन्म के बाद धीरे-धीरे छोटी होने लगती है। इसके काम का ठीक-ठीक पता अभी नहीं चला है, पर ऐसा समझा जाता है कि इसके निकाल देने या इसके विकार-युक्त होने से आदमी छोटा और दुर्बल हो जाता है। इसके विकार से मनुष्य बौना रह जाता है, बचपन में वह देर में बोलता और चलता है, सुस्त निर्जीव-सा रहता है और बढ़ने पर भी स्वभाव का बचपना नहीं जाता। उसे कभी-कभी एक प्रकार का श्वास-रोग भी हो जाता है।

(४) **पिनियल ग्रंथि**—यह ग्रंथि बादाम जितनी बड़ी होती है और मस्तिष्क की नली में रहती है। ऐसा समझा जाता है कि इस ग्रंथि का असल काम है स्त्री या पुरुष के लिंगीय विकास के चिह्नों को समय के पहले प्रकट होने से रोकना।

(५) **पीयूष (पिट्यूटरी) ग्रंथि**—यह एक छोटी-सी लाल रंग लिए हुए भूरी ग्रंथि है जो मस्तिष्क के नीचे की नली से लटकती रहती है। इसके दो अलग-अलग भाग हैं और दोनों से दो तरह के रस निकलते हैं। सामने के

भाग से कई प्रकार के हार्मोन निकलते हैं। प्रत्येक क्रिया के लिए एक हार्मोन होता है। एक हार्मोन से शरीर यथोचित बढ़ता और पुष्ट होता है और यदि उसका प्रभाव आवश्यकता से अधिक पड़ा तो शरीर बहुत लम्बा होता है या हाथ-पैर बहुत बड़े और खोपड़ी छोटी-सी हो जाती है। यदि इस भाग से यथेष्ट मात्रा में रस नहीं निकलता तो बच्चे पूरा-पूरा बढ़ नहीं पाते और बौने हो जाते हैं। एक प्रकार के बौने वे होते हैं जिनका सर बड़ा और शरीर छोटा रह जाता है। उनकी बुद्धि में कमी नहीं होती। दूसरों में सारा शरीर और सिर सब छोटा रह जाता है। उनकी बुद्धि इतनी मन्द होती है कि वे बात समझते नहीं। यही अन्य हार्मोन जननांग (reproductive organs) की वृद्धि के लिए, थाइरॉयड, पैराथाइरॉयड तथा अधिवृक्क के पोषण के लिए बनते हैं। प्रोलेक्टीन (prolactin) नाम का हार्मोन, जिससे माता के स्तनों में दूध बढ़ता है, यहीं बनता है। इस ग्रंथि के पिछले भाग के रस का प्रभाव आंत्र, रुधिर ले जाने वाली नलियों और वृक्क पर पड़ता है, जिससे रुधिरदाब (Blood pressure) बढ़ जाता है और मूत्र भी अधिक नहीं बनता, वरन् वह जल शरीर के काम आता है। यदि यह ग्रंथि रुग्ण हो गई और यथेष्ट हार्मोन न बना तो मूत्र की अधिकता हो जाती है और शरीर क्षीण होने लगता है।

इसका प्रभाव गर्भाशय पर भी पड़ता है। जब जनन के समय पीड़ा रुक जाती है तो इसी हार्मोन के इन्जेक्शन से पीड़ा करायी जाती है।

यदि यह रस यथेष्ट मात्रा में नहीं बनता तो भोजन के श्वेतसार पदार्थ गर्मी और फुर्ती न उत्पन्न कर चिकनाई में बदल जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि ऐसा आदमी मोटा और चिन्तारहित होता है। उसे भूख बहुत लगती है। वह मीठी चीजें बहुत पसन्द करता है पर काम करना नहीं चाहता है।

पीयूस ग्रंथि एक प्रकार से अन्य सभी अन्तःस्रावी ग्रंथियों को प्रभावित करती है। इसकी खराबी से अन्य ग्रंथियों में खराबी आ सकती है इसलिए इसे मास्टर ग्रंथि भी कहते हैं।

(६) अग्न्याशयी में स्थित लेंगरहैंस के द्वीप-पुंज—अग्न्याशय का स्राव अग्न्याशयी नली (pancreatic duct) द्वारा ग्रहणी (duodenum) में पहुँचता है, पर अग्न्याशय का एक अन्तःस्राव भी है, जो कि लेंगरहैंस के द्वीप-पुंज का अन्तःस्राव है जो सीधा रुधिर में पहुँचता है। इससे अग्न्याशय की गिनती भी एक प्रकार से वाहिनीहीन ग्रंथियों में की जा सकती है। अग्न्याशय के अन्तःस्राव के सहारे ऊतक (tissues) श्वेतसार के अंश को जलाकर शरीर में आत्मसात् हो जाने योग्य बना लेते हैं। यदि अग्न्याशय का अन्तःस्राव रुधिर में नहीं पहुँचता या थोड़ी मात्रा में पहुँचता है तो श्वेतसार नहीं जलता, बल्कि रुधिर में इकट्ठा होता है इससे मूत्र में शक्कर आने लगती है। इस अवस्था को मधुमेह (diabetes) रोग कहते हैं।

(७) अधिवृक्क ग्रंथियाँ—ये दो छोटी-छोटी पीली ग्रंथियाँ हैं, जो उदर में दोनों वृक्क के ऊपरी सिरे पर पाई जाती हैं। इन ग्रंथियों के दो मुख्य भाग होते हैं एक ऊपरी भाग जो वल्कुट (कार्टेक्स, cortex) कहलाता हैं और दूसरा मध्यांश (मेडुला, medulla) कहलाता है। वल्कुट भाग से निकलने वाले हार्मोन को कार्टिन (cortin) और माध्यांश भाग से निकलने वाले हार्मोन को एड्रीनलिन (Adrenelin) कहते हैं। एड्रीनलिन का काम है खतरे या किसी आवश्यकता के अवसर पर शरीर को चौकन्ना बनाना। जब भी खतरा सामने आता है तंत्रिका-तन्त्र की प्रेरणा से ये ग्रंथियाँ अपने रस को रुधिर-परिसंचरण में डाल देती हैं। जैसे-जैसे रुधिर के साथ रस शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में पहुँचता है वे विशेष रूप से प्रभावित होते हैं। हृदय तेजी से धड़कने लगता है, रुधिर ले जाने वाली बारीक नलियाँ सिकुड़ जाती हैं, रुधिर-दाब बढ़ जाता है, पसीना निकालने वाली ग्रंथियाँ अपना काम तेजी से करने लगती हैं, जिससे कि शरीर ठंडा बना रहे, पचाने वाले अंग की क्रिया मन्द पड़ जाती है, यकृत में इकट्ठी शक्कर बाहर निकल कर रुधिर के साथ पेशियों में पहुँचने लगती है, जिससे पेशियों में गर्मी और फुर्ती का संचार होता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं आँखें बड़ी-सी दीखती हैं और पुतलियाँ फैल जाती हैं, जिससे आदमी डरावना मालूम होने